



राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रंथमाला

# नंददास

## प्रथम भाग

संपादक

उमाशंकर शुक्ल, एम० ए०

राजा पन्नालाल स्कॉलर

...न्य अभी तक कही ठीक से  
... ज्ञात हो जायगा कि श्री उमाशंकर  
गदन में कितना

प्रकाशक

प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

प्रकाशक  
प्रयाग विश्वविद्यालय  
प्रयाग

प्रथम संस्करण, अक्टूबर सन् १९४२  
मूल्य ६)

मुद्रक  
जे० के० शर्मा  
इलाहाबाद लाँ जर्नल प्रेस  
इलाहाबाद

## वक्तव्य

सन् १९४० ई० के अक्टोबर में हैदराबाद (दक्खन) जाने का मुझे अवसर मिला। वहाँ श्रीमती सरोजिनी नायडू की कृपा से राजा पन्नालाल जी से मिला। आप का हिन्दी के प्रति प्रेम और उत्साह सराहनीय है। हैदराबाद राज्य में आप की सहायता से हिन्दी प्रचार का काम बहुत अच्छा हो रहा है। यह आप की हिन्दी श्रद्धा का ही फल है कि आप ने हिन्दी में अन्वेषण और प्रकाशन के लिये प्रयाग विश्वविद्यालय को १२००) रु० का वार्षिक दान देना स्वीकार किया है। विश्वविद्यालय ने इस दान को सहर्ष स्वीकार किया, और जनवरी, सन् १९४१ में श्री उमाशंकर गुक्ल, एम० ए० अन्वेषण और सम्पादन के काम के लिये नियुक्त किये गये। हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा, एम० ए०, डी० लिट्० के निरीक्षण में ये काम करते रहे हैं। राजा पन्नालाल की उदारता, दानशीलता और साहित्यानुराग से हम बहुत अनुगृहीत हैं।

नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थ अभी तक कहीं ठीक से प्रकाशित नहीं हुए हैं। भूमिका के पढ़ने से ज्ञात हो जायगा कि श्री उमाशङ्कर जी ने पुस्तकों के सङ्कलन और सम्पादन में कितना परिश्रम किया है। जिन संस्थाओं और सज्जनों की सहायता से शुक्ल जी को सामग्री मिली है उन की यूनि-वर्सिटी कृतज्ञ है।

“राजा पन्नालाल गोवर्द्धनलाल ग्रन्थमाला” में हिन्दी के सभी प्रमुख कवियों के ग्रन्थों को प्रकाशित करने का विचार है। हिन्दी-विभाग के अध्यापकों और “रिसर्च स्कॉलरो” के सहयोग से, पुस्तकालयों और हिन्दी की अमुद्रित पुस्तकों के संग्रहों की सहायता से, आयोजन सफल होगा, ऐसा हमारा विश्वास है। हमें सन्तोष है कि यह महत्त्व का



काम प्रयाग विश्वविद्यालय से सम्पन्न हो रहा है। हिन्दी और उर्दू का उच्चतम कक्षा का अध्ययन और अध्यापन यहाँ बहुत वर्षों से हो रहा है। डाक्टर श्री धीरेन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में यहाँ अन्वेषण का भी बहुत अच्छा काम हुआ है और हो रहा है। इस विभाग से कई बहुमूल्य पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और तीन चार विद्वानों को डाक्टर की उपाधि मिल चुकी है। यह उचित ही है कि ऐसे योग्य अध्यक्ष के निरीक्षण में यह ग्रन्थमाला प्रकाशित हो रही है। मुझे पूरा भरोसा है कि ग्रन्थों के पाठ में, कवि के जीवन-वृत्तान्त में, काव्य की समालोचना में हमें वह निर्भीकता, औचित्य और योग्यता मिलेगी जिस की एक विद्यापीठ से आशा की जा सकती है।

२६. ७. ४२.

अमरनाथ झा

---

# विषय-सूची

## प्रथम भाग

	पृष्ठ
वचनव्य	३
भूमिका	
जीवनी	७
कवि कृत प्रसिद्ध ग्रंथ	१८
संपादित ग्रंथों का आचार	४०
संपादित-विधि	८७
काव्य-समीक्षा	९२
निवेदन	११६
नंददास कृत ग्रंथ	
रूपमंजरी	१
विरहमंजरी	२८
रत्नमंजरी	३६
मानमंजरी नाममाला	६१
अनेकार्थमंजरी	९८
✓ त्यामसगाई	११५
भैरवगीत	१२३
✓ रुक्मिणी मंगल	१४२
रासपंचाध्यायी	१५५

## द्वितीय भाग

सिद्धांत पंचाध्यायी	..	..	..	१८३
दशम स्कंध	..	..	.	१८६
पदावली	..	..	..	३२८

### परिशिष्ट

१ संदिग्ध तथा असंपादित सामग्री				
(क) 'मानमंजरी नाममाला' के संदिग्ध दोहे	..	..	..	३४५
(ख) 'रासपंचाध्यायी' के संदिग्ध छंद	..	..	..	३४६
(ग) पदावली	..	..	..	३५६
(घ) सुदामा चरित	..	..	..	४५१
(ङ) नासिकेत पुराण (उद्धरण)	..	..	..	४५५
२ प्रक्षिप्त सामग्री				
(क) 'मानमंजरी' के प्रक्षिप्त दोहे	..	..	..	४६२
(ख) 'अनेकार्यमंजरी' के प्रक्षिप्त दोहे	..	..	..	४६४
३ पाठांतर	..	..	..	४७०
४ पदों की प्रथम पक्ति की अकारादि-क्रम-सूची	..	..	..	५६२
५ शब्दार्थ-कोष	..	..	..	५७४



# भूमिका

## जीवनी

नंददास की निश्चित जन्म-तिथि का हमें कोई ज्ञान नहीं है। श्री दीनदयालु गुप्त ने अनुमान से सं० १५६४ में इन का जन्म माना है<sup>१</sup>। काँक-रोली के श्री द्वारिकादास जी ने इस के चार वर्ष पूर्व नंददास के जन्म-संवत् की कल्पना की है<sup>२</sup>। महाप्रभु बल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र गोसाईं विठ्ठलनाथ जी द्वारा नंददास पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए इस में संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वयं कवि द्वारा विरचित ऐसे कई पद प्राप्त होते हैं<sup>३</sup> जिन से यह सूचित होता है कि वे गोसाईं जी के शिष्य थे। गो० गोपीनाथ की असामयिक मृत्यु के बाद सं० १५६१ में विठ्ठलनाथ जी गद्दी पर बैठे अतएव इस तिथि के बाद ही नंददास संप्रदाय में दीक्षित हुए होंगे और विक्रम की १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उन का रचना-काल रहा होगा।

अंतर्माक्षि के आधार पर नंददास के एक “परम रसिक” मित्र के हंगने की भी सूचना मिलती है। ‘विरहमंजरी’, ‘रसमंजरी’, ‘रासपंचाध्यायी’ तथा ‘दशम स्कंध’ के प्रारंभ में कवि ने इस मित्र का उल्लेख किया है जिस से यह ज्ञात होता है कि उन के यह मित्र संस्कृत से अनभिज्ञ थे किंतु वे साहित्यिक अभिरुचि रखते थे और उन्हीं के आग्रह से कवि ने कई ग्रंथों

---

<sup>१</sup> ‘प्राचीन वार्ता-रहस्य’ (काँकरोली), द्वितीय भाग, “अष्टद्वाप का ऐतिहासिक विवरण”, पृ० १८

<sup>२</sup> वही

<sup>३</sup> ‘पदावली’, पृ० ३४१-३४२, पंक्ति २७६-२६६

की रचना की थी। इस मित्र के नाम का कवि ने कोई निर्देश नहीं किया है। कवि की 'नासिकेत पुराण' नामक एक संदिग्ध कृति से यह भी विदित होता है कि यह मित्र नंददास के शिष्य भी थे—

“और जननेजय या कथा (नासिकेत पुराण) सुणी परम गति कौं प्रापति भयौ है। और सर्व पाप कटे है। और स्वामी नंददास जी आपण मित्र नै भाषा करि कहतु है। सिष्य पूछत है गुसाइ जी मेरै अभिलाषा नासिकेत पुराण सुणिवा की ईछा वहीत है मो नै भाषा वारता कहौ।”

श्री दीनदयालु गुप्त ने यह कल्पना की है<sup>१</sup> कि रूपमंजरी ही कदाचित् कवि की वह मित्र थी जिस का कवि ने उल्लेख किया है। ‘श्री गोवर्द्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता’ से इस कल्पना की विशेष पुष्टि भी होती है। उक्त वार्ता के पृष्ठ ३६ पर यह विवरण दिया हुआ है—

“एकदिनां श्रीनाथजी ग्वालियर की बेटी रूपमंजरी हती ताके संग चोंपड खेलवे पधारे चार प्रहर चोंपड खेले और वीन सुने वह वीन आछी वजावत हती चार प्रहर रात्रि वहां हीं विराजे नंददासजी को वाको संग हतो गुणगान आछी करत हती ताके लिये नंददास जी रूपमंजरी ग्रंथ कियो है ताम (तामै) चौपाई धरी है—रूपमंजरी त्रिया को हीयो। सो गिरिवर अपनो आलय कीयो<sup>२</sup>।”

नंददास के जीवन-वृत्त पर प्रकाश डालने वाले वहिसाक्षियों में नाभा-दास कृत ‘भक्तमाल’ की प्रामाणिकता निर्विवाद मानी जाती है। नाभा जी ने नंददास की रस-रीति-संबंधी रचना तथा सरस काव्योक्तियों की प्रशंसा करने के अतिरिक्त उन का निवासस्थान रामपुर ग्राम बतलाया है। वे उच्च कुल अथवा सुकुल वंश के थे। “चंद्रहास अग्रज सुहृद”,

<sup>१</sup> “महाकवि नंददास का जीवन-चरित्र”, हिंदुस्तानी, जुलाई १९४०

<sup>२</sup> श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, १९०५ ई०, पृ० २७३

<sup>३</sup> ‘रूपमंजरी’, पंक्ति २६५

नामा जी के इस कथन का अर्थ तीन प्रकार से किया गया है—(१) उत्तम हृदय वाले नंददास चंद्रहास के बड़े भाई थे, (२) उत्तम हृदय वाले चंद्रहास नंददास के बड़े भाई थे अथवा (३) नंददास चंद्रहास के बड़े भाई के मित्र थे। इन तीनों अर्थों में सर्वप्रथम अधिक स्वाभाविक जान पड़ता है अतएव हम कह सकते हैं कि नंददास के छोटे भाई का नाम चंद्रहास था।

‘दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता’ के आधार पर नंददास के जीवन के संबंध में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। इस वार्ता का एक रूप डाकोर ने प्रकाशित सं० १९६० का संस्करण है। सं० १९९८ में काँकरोली के विद्या-विभाग द्वारा प्रकाशित ‘प्राचीन वार्ता-रहस्य’, द्वितीय भाग, में भी अष्ट सखाओं के विवरण दिए गए हैं। डाकोर के संस्करण से कवियों के संबंध में अधिक विस्तृत सामग्री देने के अतिरिक्त इस संस्करण की एक विशेषता यह भी है कि इस में गो० हरिराय कृत ‘भावप्रकाश’ की टिप्पणियों के साथ कवियों के वृत्त पाए जाते हैं। हरिराय जी गोकुलनाथ जी के समकालीन माने जाते हैं अतएव यह आशा की जाती है कि उन के उल्लेखों से अष्टसखाओं की जीवनियों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। ‘प्राचीन वार्ता-रहस्य’ में जो वृत्त नंददास का दिया हुआ है उस में विदित होता है कि वे रामपुर निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे और उन की गणना ‘अष्टछाप’ में की जाती थी। वे गो० तुलसीदास के छोटे भाई थे और उन के समान ही पहले रामानंदी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। आमोद-प्रिय स्वभाव के होने के कारण वे एक बार हठपूर्वक एक यात्रियों के संघ के साथ काशी से रणछोड़ जी के दर्गाने के लिए रवाना हुए। मथुरा से उन्होंने ने संघ का साथ छोड़ दिया और श्री द्वारिका जी के लिए अकेले ही चल पड़े। मार्ग भूल जाने के कारण वे “सिंहनंद” नामक ग्राम पहुँचे जहाँ एक “क्षत्री” की स्त्री के रूप पर इतने आसक्त हो गए कि वे अपना लक्ष्य ही भूल गए। बाद में गो० विठ्ठलनाथ जी ने उन्हें बुला कर संप्रदाय में दीक्षित किया और उन का

मोह छूटा । गोसाईं जी के साथ एक बार वे श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए गए और तत्पश्चात् छः मास तक परासोली में सूरदास जी के साथ रहे । तुलसीदास जी ने नंददास को अपने पास बुलाने के लिए एक बार काशी से पत्र लिखा और बाद में वे स्वयं व्रज गए भी । उक्त परासोली स्थान पर दोनों व्यक्तियों की भेंट हुई । बहुत समझाने पर भी नंददास जी व्रज छोड़ने के लिए उद्यत नहीं हुए । एक दिन दोनों भाई गिरिराज पर श्रीनाथ जी के दर्शनों के लिए गए । नंददास के आग्रह पर श्रीनाथ जी ने धनुर्धारी राम के स्वरूप में तुलसीदास को दर्शन दिए । गोकुल जाने पर गोसाईं जी से साक्षात्कार के समय भी इसी प्रकार की घटना हुई । नंददास की अटल कृष्ण-भक्ति देख कर उन के अग्रज को यह निश्चय हो गया कि उन का काशी लौट जाना असंभव था । विवश हो कर वे स्वयं वापस चले गए । तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के अनुकरण में नंददास ने भी अपने इष्टदेव की श्रीमद्भागवत दशम स्कंध में दी हुई कथा का भाषानुवाद किया जिस पर मथुरा के कथावाचक ब्राह्मणों ने गोसाईं जी से आपत्ति की क्योंकि नंददास के ग्रंथ की लोकप्रियता के कारण उन की आजीविका की हानि होती थी । फलस्वरूप गोसाईं जी की आज्ञा से नंददास ने रास-लीला के अंश तक तो रख लिया और अवशिष्ट ग्रंथ यमुना जी को समर्पित कर दिया । उपर्युक्त 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' के छठे प्रसंग में नंददास की मृत्यु का वर्णन है । एक बार मानसी गंगा के समीप बादशाह अकबर ठहरे हुए थे । तानसेन ने उन के सामने नंददास का प्रसिद्ध पद—'देखो री देखो नागर नट नृत्यत कालिंदी के तट . . . . नंददास गावत तहां निपट निकट'<sup>१</sup> गाया । अकबर ने बीरबल द्वारा नंददास को बुलवाया और उन से इस पद का अभिप्राय बतलाने को कहा । अकबर के डेरे पर एक वैष्णव सेविका भी थी जिस से नंददास का विशेष स्नेह था । नंददास ने अकबर से

<sup>१</sup> 'पदावली', पृ० ३३३

कहा कि आप अपने डेरे की अमुक लौंडी से इस पंक्ति का अर्थ समझ सकते हैं। जब अकबर वहाँ से उठ कर उक्त सेविका के पास गए और उस से अपना प्रश्न पूछा तो वह पछाड़ खा कर गिर पड़ी और इधर नंददास जी भी अपने धर्म के रहस्य को गोप्य रखने के अभिप्राय से शरीर छोड़ कर लीला को प्राप्त हुए। इस विवरण के अतिरिक्त गो० हरिराय जी के 'भावप्रकाश' से यह ज्ञात होता है कि नंददास श्रीनाथ जी की दिवस की लीला में 'भोज' सखा के अवतार थे और "रात्रि की लीला में श्रीचंद्रावलीजी की सखी 'चंद्ररेखा' इनको नाम है"<sup>१</sup>।

सोरो, जिला एटा, में पाई जाने वाली कुछ अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ प्रकाश में आई हैं<sup>२</sup> जिन से एक ओर तो वात्स्यायों के कुछ विवरणों की पुष्टि होती है, दूसरी ओर वल्लभ-संप्रदाय में प्रविष्ट होने के पहले कवि के प्रारंभिक पारिवारिक जीवन की बातों का ज्ञान होता है। इन पोथियों में 'रामचरितमानस' की 'अरण्यकांड' तथा 'बालकांड' की सं० १६४३ की दो प्रतियाँ हैं जिन की पुष्पिकाओं से तुलसीदास तथा नंददास के भ्रातृ-भाव और नंददास तथा कृष्णदास के पिता-पुत्र होने का समर्थन होता है। कृष्णदास कृत 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' की प्रति का रचना-काल सं० १६७० तथा लिपि-काल सं० १८७० है। इस ग्रंथ के अंत में कृष्णदास ने अपनी वंशावली दी है जिस से ज्ञात होता है कि आधुनिक सोरो के समीप ही रामपुर ग्राम में सनाढ्य शुक्लो का एक परिवार रहता था। इस परिवार के पूर्वज नारायण पंडित थे। उन के चार पुत्र थे—श्रीधर, शेषधर, रामक तथा सनातन। सनातन के पुत्र परमानंद तथा प्रपौत्र आत्माराम तथा जीवाराम थे। इन में आत्माराम के पुत्र तुलसीदास तथा जीवाराम के नंददास थे। नंददास के एक छोटा भाई चंद्रहास भी था। उन के पुत्र

<sup>१</sup> 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' पृ० ३२६

<sup>२</sup> डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास', पृ० ८०



कहा जाता है कि हरिराय जी ने ही औरंगजेब के राजत्व-काल के अत्याचारों के उल्लेख बढ़ा दिए होंगे क्योंकि वे उक्त घटना के बहुत समय बाद तक जीवित रहे थे। इन तीनों प्रकार की वार्ताओं तथा कुछ अन्य बहिर्गंग प्रमाणों के आधार पर श्री दीनदयालु गुप्त ने यह मत स्थिर किया है कि यद्यपि २५२ तथा ८४ वार्ताएँ गोकुलनाथ जी द्वारा लिखित नहीं हैं फिर भी वे उन के द्वारा कथित अवश्य हैं और वे उन के जीवन-काल में ही लिपिबद्ध कर ली गई थी। काँकरौली के विद्या-विभाग की सं० १६६७ की ८४ तथा 'गोसाईं जी के चार सेवक की वार्ता' की प्रति के लिपि-काल के समय गोकुलनाथ जी विद्यमान थे।

उपर्युक्त वार्ता साहित्य पर स्वतंत्र रूप से विचार करते समय सब से बड़ी कठिनाई यह है कि १३५ वर्ष के अंतर्गत लिखे हुए तीनों 'संस्करणों' का पाठ हमारे सामने नहीं है। 'प्राचीन वार्ता-रहस्य' में दिया हुआ पाठ सं० १७५२ की भावना वाली प्रति का है। इस के पहले की पोथियों में कवियों के वृत्तो में कौन कौन उल्लेख छूटे हुए हैं अथवा अधिक हैं यह जानना आवश्यक है। सं० १६६७ की प्रति का जो ब्लॉक इस पुस्तक में दिया हुआ है उस में नंददास की वार्ता का प्रारंभिक अंश इस प्रकार है<sup>१</sup>—

“अब श्री गुसाईं जी के सेवक नंददास सनोडिया ब्राह्मण तिनके पद गाइयत हे सो वे पूर्व में रहते तिन की वार्ता।”

सं० १७५२ की भावना वाली प्रति में उक्त अंश यों दिया है<sup>२</sup>—

“अब श्रीगुसाईंजी के सेवक नंददासजी सनाढ्य ब्राह्मण, रामपुर में रहते, जिन के पद अष्टछाप में गाइयत है तिनकी वार्ता।”

‘रामपुर’ तथा ‘अष्टछाप में’ ये शब्द सं० १६६७ की प्रति में नहीं हैं। इसी प्रकार अन्य अंतरों का होना भी संभव है। इन अंतरों से अपरिचित

<sup>१</sup> ‘प्राचीन वार्ता-रहस्य’, वक्तव्य, पृ० ११ के सामने

<sup>२</sup> वही, पृ० ३२६

होने पर हमारा वार्ता साहित्य का अध्ययन अबूरा ही कहा जायगा। 'संस्करण' शब्द किन्निचित् अर्थ में लिखा गया है इसे भी हम भली प्रकार नहीं जानते। उन तीनों संस्करणों का जो समय दिया गया है वह जिस आधार पर अवलंबित है वह भी ज्ञातव्य विषय है। सं० १६६७ की वार्ता से प्रार्थान किसी भी प्रति का उल्लेख नहीं किया गया है। इस से यह विदित होता है कि सं० १६४५ से सं० १६६० तक के प्रथम 'संस्करण काल' के स्थिर करने का कोई दूसरा ही आधार होगा। जो हो, जहाँ तक नंददास जी की वार्ता का संबंध है हम उतना दृढतापूर्वक कह सकते हैं कि सं० १६६७ में उन का मनाढ्य ब्राह्मण तथा तुलसीदास जी का छोटा भाई होना प्रसिद्ध था। इस वार्ता का रचयिता अथवा लिपि-कार चाहे जो रहा हो, गोस्वामी तुलसीदास जी की मृत्यु (सं० १६८०) के १७ वर्ष बाद इस उल्लेख का मिलना एक महत्त्वपूर्ण बात है।

सोरों में पाए जाने वाले ग्रंथों की बहिरंग तथा अंतरंग परीक्षा डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है<sup>१</sup>। गुप्त जी के अनुसार बालकांड की पुष्पिका की अंतिम पंक्ति "वामी नंददास पुत्र कृष्णदास हेत लिखी रघुनाथदास ने कानीपुरी में" के ऊपर एक आड़ी रेखा खींची हुई है। इस पंक्ति के नीचे पुन तीन रेखाएँ खींची गई हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इन तीन रेखाओं को यह सूचित करने के लिए खींचा गया है कि ग्रंथ की समाप्ति इस पंक्ति के पहले न हो कर इस के बाद में हुई है। इस पंक्ति का हस्तलेख ऊपर की पंक्तियों के लेख से मेल नहीं खाता है। अरण्यकांड की पुष्पिका में सं० १६४६ के '१६४' अंको पर दुबारा स्याही फेरी गई है। ऐसा अनुमान होता है कि पहले इन अंकों के स्थान पर कुछ और अंक थे जिन्हें मिटा कर '१६४' लिख दिया गया है। 'सूकरक्षेत्रमाहात्म्य' के विषय में डा० गुप्त ने यह बतलाया है कि इस के शब्दों की शिरोरेखाएँ पृथक् कर के लिखी

<sup>१</sup> 'तुलसीदास', पृ० ८६-८५

जिन्हो ने ग्रन्थ सखाओ की वार्ताओ पर 'भावप्रकाश' लिखते हुए नंददास के संबंध में लिखा है कि "जिन के पद ग्रन्थछाप मे गाडयत है"<sup>१</sup>।

## कवि कृत प्रसिद्ध ग्रंथ

फ्रांसीसी विद्वान् तासी ने अपने इतिहास (१८७० ई०) में नंददास के निम्नलिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है—

- १ पचाव्यायी
- २ नाममजरी
- ३ अनेकार्थमंजरी
- ४ रुक्मिणी मंगल
- ५ भँवरगीत
- ६ सुदामा चरित्र
- ७ विरह मंजरी
- ८ प्रबोधचंद्रोदय नाटक\*
- ९ गोवर्द्धन लीला\*
- १० दशमस्कंध
- ११ रासमजरी\*
- १२ रसमजरी
- १३ रूपमंजरी
- १४ मानमजरी

'शिवसिंहसरोज' (१८८३ ई०) में दो नए ग्रंथों के नाम हैं—

- १५ दानलीला\*

<sup>१</sup> 'प्राचीन वार्ता-रहस्य', पृ० ३२६

<sup>२</sup> 'इस्त्वार दा ला लितेरेत्यूर एँद्वई ए एँदुस्तानी', भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५

## १६ मानलीला\*

डा० ग्रियर्सन कृत 'मॉडर्न वर्निक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदोस्तान' (१८८६ ई०) में उल्लिखित सात ग्रंथ दी हुई सूची के अंतर्गत ही हैं। 'मिश्रवंधु-विनोद' के द्वितीय संस्करण (१९२६ ई०) में ६ नए नाम दिए गए हैं—

१७ हितोपदेश\*

१८ जानमंजरी\*

१९ नामचिंतामणिमाला

२० नासिकेत पुराण

२१ श्यामसगाई

२२ विज्ञानार्थप्रकाशिका\*

स्वर्गीय प० रामचंद्र शुक्ल के इतिहास के परिवर्द्धित संस्करण (१९४० ई०) में एक नया नाम दिया है—

२३ सिद्धांतपंचाध्यायी

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टों में चार नए ग्रंथों का उल्लेख है—

२४ जोगलीला\*<sup>१</sup>२५ फूलमंजरी\*<sup>२</sup>२६ रानी मंगी\*<sup>३</sup>२७ कृष्णमंगल\*<sup>४</sup>

श्री द्वारकेय पुस्तकालय, कांकरली, द्वारा निम्नलिखित एक अन्य हस्त-लिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ है—

\* खो० रि० सन् १९०६-०८, संख्या २०० (डी)

<sup>१</sup> खो० रि० सन् १९२६-३१

<sup>२</sup> वही

<sup>४</sup> खो० रि० सन् १९३५-३७

## २८ रासलीला\*

डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा दो मुद्रित ग्रंथों की सूचना मिली है—

२९ वाँसुरीलीला\*<sup>१</sup>३० अर्थचंद्रोदय\*<sup>२</sup> (पद्यवद्ध शब्दकोष)

उपर्युक्त सूची में दिए हुए ग्रंथों में \* चिह्न वाले ग्रंथों के नंददास कृत होने में अनेक कठिनाइयाँ हैं, उन का संक्षिप्त विवेचन नीचे दिया जा रहा है।

‘नाममंजरी’ (२), ‘मानमजरी’ (१४) तथा ‘नामचितामणिमाला’ (१९) एक ही ग्रंथ के तीन नाम हैं। ‘प्रबोधचंद्रोदय नाटक’ (८), ‘रास-मंजरी’ (११), ‘मानलीला’ (१६), ‘ज्ञानमजरी’ (१८), ‘विज्ञानार्थ-प्रकाशिका’ (२२), ‘वाँसुरीलीला’ (२९) तथा ‘अर्थचंद्रोदय’ (३०), के नाम ही नाम सुने गए हैं। ‘रासमंजरी’ कदाचित् ‘रसमंजरी’ का ही परिवर्तित नाम है। ‘विज्ञानार्थप्रकाशिका’ को मिश्रबंधुओं ने छतरपुर में कही देखा था। उन के अनुसार यह ग्रंथ किसी संस्कृत ग्रंथ की भाषाटीका है। ‘अर्थचंद्रोदय’ संभवतः ‘अनेकार्थ’ अथवा ‘मानमंजरी’ का ही दूसरा नाम होगा क्योंकि यह भी ‘पद्यवद्ध शब्दकोष’ बतलाया गया है।

‘सुदामा चरित्र’ (६) की एक आधुनिक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी के हस्तलेख में लिखी हुई काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों से प्राप्त हुई है। खोज में अभी तक इस ग्रंथ की कोई भी प्रति प्रकाश में नहीं आई है। सभा की प्रति की परीक्षा करने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह छोटा सा ग्रंथ कवि की प्रारंभिक कृति है क्योंकि नंददास की काव्य-

<sup>१</sup> प्रकाशक तथा मुद्रक अब्दुर्रहमान खाँ, कानपुर, २६. १०. ८०, प्रथम संस्करण, पृ० १८, मूल्य ॥

<sup>२</sup> प्रकाशक होतीलाल, फ़तेहपुर सीकरी, मुद्रक श्रेष्ठ प्रेस, आगरा, १४. ५. १७, मूल्य ॥

गंली से साम्य होने के साथ ही इस ग्रंथ में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। इस की यदि कुछ पोथियाँ प्राप्त हो सकें तो इस के कवि कृत होने अथवा न होने के संबंध में निश्चय किया जा सकता है। परिशिष्ट १ (घ) में सगा से प्राप्त 'मुदामा चरित' की प्रति की प्रतिलिपि दी गई है।

'नासिकेत पुराण' (२०) नामक गद्य ग्रंथ के भी कवि कृत होने के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। सभा की खो० रि० सन् १६०६-११, संख्या २०८ (ए), में नीमराना के 'माधव स्कूल' के हिंदी अध्यापक पं० प्यारेलाल के नाम से इस ग्रंथ की सं० १८१३ की एक प्रति का उल्लेख मिलता है। इस की दो खंडित प्रतियाँ डा० भवानी शंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं जिन में एक का लिपि-काल अज्ञात है तथा दूसरी सं० १८५५ की लिखी है। एक अन्य प्रति लेखक को भरतपुर राज्य पुस्तकालय में मिली है जिस की पुस्तकालय संख्या '१०ग' है और जो सं० १७६५ की लिखी है। इन तीनों पोथियों में ऐसे उल्लेख विद्यमान हैं जिन से यह प्रकट होता है कि नासिकेत की कथा नंददास अपने मित्र अथवा शिष्य से कह रहे हैं। कवि की प्रामाणिक कृतियों में भी इस मित्र के वर्णन होते हैं जिस से यह धारणा होती है कि इस ग्रंथ के रचयिता भी नंददास होंगे। प्राप्त तीनों प्रतियों की भाषा में बहुत अधिक भिन्नता है। एक ही बात को तीनों ने बहुधा इतने अंतर से लिखा है कि साधारणतया इन के पाठ को स्थिर करना बहुत कठिन हो जाता है। परिशिष्ट १ (ङ) में इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए गए हैं। इन में से (१) व (२) डा० याज्ञिक की उस प्रति से उद्धृत हैं जिस का लिपि-काल अज्ञात है। उद्धरण (३) भरतपुर राज्य पुस्तकालय की सं० १७६५ की प्रति से लिया गया है।

'गोवर्द्धनलीला' (१) की एक प्रति पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी से लेखक को मिली है जो उन्हीं के हस्तलेख में लिखी है। जैसा कि ग्रंथ के नाम से प्रकट है इस में कृष्ण के गोवर्द्धन-धारण की कथा वर्णित है। यह

कथा कवि कृत 'दशम स्कंध', अध्याय २४ व २५ में भी है। 'दशम स्कंध' की कथा और इस ग्रंथ के वर्णन को मिलाने से यह प्रायः निश्चित सा हो जाता है कि ये दोनों कथाएँ एक ही हैं। अध्याय २४ व २५ की लगभग ४० पंक्तियाँ साधारण अंतर के साथ इस ग्रंथ में भी हैं। संभवतः 'दशम स्कंध' की इस लीला को कभी पृथक् रूप से लिखा गया था और पीछे से किसी ने आदि और अंत में कुछ चौपाइयाँ जोड़ कर इसे ग्रंथ का रूप दे दिया था। नीचे इस ग्रंथ के तीन उद्धरण दिए जाते हैं जो क्रमशः आदि, मध्य और अंत से लिए गए हैं—

श्री गुर चरन मनाओं, गिरि गोबरधन लीला गाओं ।  
 कल मल हरनीं मंगल करनी, मन हरनी श्री सुक मुन वरनी ।  
 जग करन जब गोप कलोले, तिन प्रत सांसल नुन्दर बोले ।  
 तात कहौ ये बात कहा है, भुमन माँहि आनंद महा है ।  
 सैन कबड कर मकरै ठूकी, सो असाइ कर मकरै लूकी ।  
 मंद मंद हंस नंद कहौ तब, बात तात सौं कहौ अपुन सब ।  
 मधवा है मेघन कौ राजा, ये उद्यम सब उनके काजा ।  
 बरखें जल तृन उपजै भारी, गाँइन के गन होइँ सुखारी ।  
 तब बोले निज नाम उमाहें, मुरलीधर गिरधर भयीं चाहें ।  
 जहँ ये गिरि गोबरधन सोहैं, इन्द्र वराक या आगें को है ।

×

×

×

कान्ह कहौ तुम देखौ काजा, प्रगट भयी है गिर कौ राजा ।  
 जितनों भोजन ब्रज ते आयौ, गिर रूपी हरि सबरौ खायौ ।  
 भई परतीत आनंद उर भारी, करै प्रदिच्छन नर औ नारी ।  
 इक मूरत हरि भोजन करई, इक लोगन संग फेरी फिरई ।  
 फिरत जु छवि बाढ़ी तिहँ काला, गोबरधन मनु पैहैरी माला ।  
 गिरि वर कह्यौ कछु भय नाही, फूले गोप न अंग समाहीं ।  
 सुन्यो इन्द्र मेरौ जग मेंटा, ये मद मत्त नंद कौ बेटा ।

ताके बल मो सों करखाती, हरि है कहा ? गोप का वाती ।  
 जो कोऊ उन पच्छ करचारे, तो रन चैंहें सुख सीई अपारै ।  
 भूँठहि की जो नाउ बनावै, भूँठ माँठ की कुँटम चढ़ावै ।  
 ऐनेई गोप श्री कृष्ण भरोलैं, महा वैर कीनों है मो सैं ।  
 अब देखी कैसी सिखराऊँ, गोकुल गौमहि खोद बहाऊँ ।  
 बोले मेघन के गन सोई, जिनके जल जग परलें होई ।

×

×

×

निकले सब जब गिरधर भौख्यो, गोवरधन फिर तहँ ही राख्यो ।  
 प्रेम भरों वनता जुरि आई, वारें अभरन लेत बलाई ।  
 घुर रही जसुमत लेत बलाई, इत घुर रह्यो बड़ी बल भाई ।  
 ऊपर ठाड़ी नंद अनंदै, चूमत अपनों आनंद कंदै ।  
 यै नागर नगधर की लीला, सुधा सीअ सम सुन्दर सीला ।  
 मन क्रम बचन याहि अनुरागै, ताहि मुक्त अति फीकी लागै ।  
 अरय धरम श्री कामजीत सुख, निपट कटुक ते कौन धरै सुख ।  
 केवल अधिकारी रस जानें, अल बिन कमलन को पैचौन ।  
 नवल किसोर सुन्दर गिरधारी, लखन नैन मन अमृत भारी ।  
 नंददास की इतनों कीलैं, पावन गुन गावन रत दीजैं ।

‘दानलीला’ (१५) तथा ‘रासलीला’ (२८) नाम की दो पोथियाँ देखने में आई हैं। इन में से पहले ग्रंथ की प्रति काशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के विद्यार्थी श्री महावीर सिंह गहलीत से प्राप्त हुई है। इन ग्रंथों की भाषा-शैली तथा काव्योक्तियाँ कवि की प्रामाणिक कृतियों से इतनी भिन्न हैं कि इन्हें नंददास कृत मानने में विशेष अडचन पड़ती है। इन के रचयिता ‘नंददास’ ‘रामपंचाध्यायी’ अथवा पंचमंजरियों आदि के नंददास से सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं। रास आदि के वर्णन में कवि ने अपने ग्रंथों में जिस चुनी हुई शब्दावली तथा जिन वैधी हुई उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया है वे इन ग्रंथिल रचनाओं में



वैकुण्ठ तजि ब्रज में बसे हरी गोपिन कुं दीयो दान ॥ सकल अंग सहित  
 प्रगटित सखी कृष्णस्व ये भगवान् ॥३॥ चकवा चाहत चंद कुं कमल मधुप  
 गुंजार ॥ चातुक जलधर मीन जल त्यों हरि प्रांत आधार ॥४॥ कोल  
 चौरासी ब्रज्य भलो कमल बिकसीत बहु जात ॥ कुंज निकुंज द्रुम बेलि  
 बिच बिच क्रीडत सांवल गात ॥५॥ जाई जुई चंपक मोगरो केवरो अनेक  
 सुगंध्य प्रफुल्लित बन वीराजही त्रिविध पवन बहे मंद ॥६॥ हंस मोर चकोर  
 शुक चातुक कोकि गान ॥ खग मृग पंखी राजही अति प्रफुलित भगवान्  
 ॥७॥ नटवर वेद धरयो हरी मस्तक मुगट विशाल ॥ पीत वसन भकराकृति  
 कुंडल उर सोहें वनमाल ॥८॥ ढाल ॥ उर सोहे वन माला ॥ प्रभु  
 चंचल नैन विशाला ॥ भृगुटी धनुष सो भांय लोचन शर मन बेधाय ॥  
 भाल तिलक अति शोभे ॥ अलक मधुप चित चोभे ॥ कुंडल रवि शशि  
 व्योती (जोती) ॥ नकवेसरी लटकतु मोती शर दशांश मुख राजे ॥  
 छवि देखी मन्मथ लाजे ॥ चाल्य ॥ लाजें मन्मथ निरखि शोभा कोटि  
 काम उद्योतही ॥ अरुन अधर ही दंत दाडिम चिबुक ही राज्यो तिही ॥१॥  
 कंठ कौस्तुभ मनी जल हल गुंज मुक्ता माल ही ॥ वनमाल अरु वेंज  
 यंति माला रत्न हार विशाल ही ॥२॥ स्याम पीत श्रे मानुं जलधर पीत  
 पट घन दामिनी ॥ अजान भुज कर पोहोंची × द्रु मोरली सोहामनी ॥३॥  
 किंकिनी कटि मधुर वाजे रत्न कंचन सों जरे ॥ रत्नभुन नूपुर घुघरु घमके ।  
 रहे हरी वन मध्य खरे ॥४॥ सुंदर चरन सरोज कोमल चंद्रमा नव  
 अंगुरी ॥ नंददास दयाल ब्रजपति वेनु वजावें श्रीहरि ॥५॥”

×

×

×

“आंओ बेठो स्कंध उपर जब नंद नंदन हसी कही ॥ सावधान होय  
 जब चढन लागी ॥ नैननी देखें नही ॥ विरह दुख अति सिंधु माना (?)  
 हरी बिनां एक पल क्यों रहू ॥ एह घोर बन मे अकेली तजी गए कहो  
 बिरहोनी काहा कहू ॥ तारी दें दें हसी भाम्यनी तुम हम सब एकत भई ॥  
 सकल बन में ढुढती सब मिलि यमुनां ब्रट गई ॥ लोचन जल मुख गुन

गाँवें ॥ उच्चैः स्वरन् पुकारही ॥ मंडली रच वंठी अबला कृष्ण कृष्ण  
उच्चारही ॥ दीनदयालु दया मनु जानि ॥ बोहोत दुष पाईं सबें ॥  
विरह दुष्य अति सह्यो न जाई ॥ प्रिया दरस दीजे अबें ॥ मंडली मध्य  
प्रभु प्रगटे ॥ व्याम तन शोभा घनी ॥ कोटि काम उद्योत नष गिप  
विराजित त्रिभुवन घनी । देष दोरच सबें पलटाई ॥ गोपिन मन भायो  
कियो ॥ अलि घन देय के नीरखें ॥ गीतल भईं सब दुष गयो ॥  
परमारय एह भक्त जानु धन्य गोपिन तूम घरी ॥ एसी प्रीत्य कहु नही  
देयो ॥ प्रमन्न मुख हसि कैं कही ॥ रास मंडल फिरी रच्यो हरी यमुना  
पुलिन विराजही ॥ कंठ बाहु देत चूँवन कोटि कंदर्प लाजही ॥१०॥  
मधुरे स्वर आलापति गांवति मिलवति तांनही ॥ हस्तक भेद देखावनी  
मध्य निरतत श्री भगवानं ही ॥ धरनि नभ शशि पशु पंखी जीव स  
शीतल भये दई आजा स्यामसुंदर सुंदरी सब भुवन गये ॥ सुरि नर मुनि  
पावें नही निगम नेति नेति नेति कहें ॥ नंददास दयाल हरि कों अगाध्य  
यश कवि काहा कहे ॥ इति श्री नंददास जी कृत रासलीला संपूर्ण ॥”

‘राजनीति हिनोपदेन’ (१७) की तीन हस्तलिखित प्रतियों का पता  
चला है—दो प्रतापगढ़ राज्य के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, तीसरी छतरपुर  
के किन्हीं बाबू जगन्नाथप्रसाद के पास बतलाई जाती है। लेखक ने पहली  
दो प्रतियों की परीक्षा की है। इन में एक प्रति अंत से खंडित है, दूसरी  
नं० १६३३ की लिखी है। इसकी पृष्ठ-संख्या २८० है और इस के आदि  
अथवा अंत में किसी कवि के नाम का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में लिपि-कार  
ने ग्रंथ को नंददास कृत बतलाया है—

“जो लौ सुर घर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चंद ।

तो लौ नाराएन क्या नुनौ सुजान अनंद ॥

<sup>१</sup> खो० रि० १६२६-२८ ई० (अप्रकाशित)

<sup>२</sup> खो० रि० १६०५ ई०, संख्या ३६

इति श्री हितोपदेशे (स्वा)मी नंददास कृते चतुर्थं कथा समाप्त . . .”

छतरपुर की प्रति का जो उद्धरण सभा की रिपोर्ट में दिया है उस के अंतिम दोहे में 'अनंद' के स्थान पर 'नंद' पाठ है—

जौ लौ सुर घर कनक गिरि फिरि सूरज श्री चंद ।

तौ लौ नारायन कथा सुनी सुजन जन नंद ॥

तुकात के विचार से 'नंद' पाठ अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। यह ग्रंथ दोहा-चौपाई में लिखा गया है और नारायण पंडित कृत 'हितोपदेश' नामक संस्कृत ग्रंथ का उल्था है। इस के मंगलाचरण से ही इस के प्रसिद्ध नंददास कृत होने में संदेह होता है—

सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल ।

गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥

वल्लभ संप्रदाय में शिव का स्थान भगवान् के प्रमुख भक्तों में है, उन्हें उपास्य-देव के रूप में नहीं ग्रहण किया गया है। नंददास के किसी ग्रंथ के मंगलाचरण में शिव की स्तुति नहीं है। नीतिपरक रचनाओं की ओर भी कवि का कोई अनुराग लक्षित नहीं होता है। मुरली के मादक आह्वान तथा गोपियों की अगाध विरह-व्यथा में डूबे हुए कवि-हृदय का ध्यान कभी चूहे और बिल्ली द्वारा कही हुई इन कथाओं की ओर भी गया होगा इस की कल्पना अत्यंत दुरुह है। इस ग्रंथ की भाषा-शैली प्रौढ़ अवश्य है किंतु वह नंददास की शैली से नितांत भिन्न है। अतएव यह ग्रंथ किसी दूसरे नंददास का ही कहा जायगा। नीचे इस ग्रंथ के दो उद्धरण दिए जाते हैं जो प्रतापगढ़ राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित तियों से लिए गए हैं—

“श्री गणेशायनमः । दोहा ॥ सिद्धि साधु के काज मो सो हर करै कृपाल । गंग फेन की लीक सी सिर ससि कला विशाल ॥१॥ सुनु हित हित उपदेश यह देत वचन रचनानि । देवन की वानी लहै राजनीति पहि-चानि ॥२॥ अजर अमर की भांति सो विद्या धनहि वढाउ । मीचु मनो

भोटी गह्वे देत न वार लगाउ ॥३॥ विद्या धन सब धनन मे संत कहत सरदार ॥ मोल चढो नहि घटत घर किये न पैए मार ॥४॥ विद्या देत विनीत करि विनौ बडाई देत । बडे भये धनु पाइए दान भोग धन हेत ॥५॥ शस्त्र शास्त्र विद्या दुविष धनु औ धर्म न जाइ । विरधाई पहिले हंसी दूजी सदा सोहाइ ॥६॥ दारुन विपति समुद्र सो विद्या नही समान । न पटुचावै नीचहूं लाभ भाग परिमान ॥७॥ विद्या नदी नदी त्र पु नी च हि मिलवै हाल । दारुन दानि दया करै होइ जु भागु कृपाल ॥८॥ प्रथमहि वाको नाउ जो धरो नए घट डारि । बाल कथा छल कहत हौं राजनीति सब भारि ॥९॥ मित्र लाभ फिरि सुहृद को भेटे विग्रह संधि । पंच तंत्र से ग्रंथ पढि चारि कया में बंधि ॥१०॥ चौपाई ॥ भागीरथी तीर एक ग्राम । पटना कहत ताहि को नाम ॥ नृपति मुदरसन मोहत तामे । स्वामी के गुन वरनो जामे ॥ एक काल काहू द्वै दोहा । पढे सुने राजा मन मोहा ॥ जासो सब संसै मिटै अनदेखो सो देखु ॥ पढिबो पोढी आंघि है अपढ अंध करि लेखु ॥११॥ चौपाई ॥ जोवन धन प्रभुता अविबेक । एको अनरथ करै अनेक । एक ठौर जो उपजै चारि । कछु दिनन में डारै मारि ॥ यह विचारि राजा भो दीन । सुत मेरो विद्या को हीन ॥ केहि विष ए मेरे सुत पढही । राजनीति सो दिन दिन बढही ॥ कौन काज ऐसे सुत कीन्है । जो न पढै नहि धर्महि चीन्है ॥ कानी आंपी केवल पीरा । नित उठि आवै कीचर नीरा ॥ दोहा ॥ एकै साधु पढयो भलो पुत्र सिंह सरदार । कुल उजियारो चंद्र ज्यों करै धरै सिर भार ॥१२॥ गुनी गनत नहि जाहि की लीत मु अगमनि लोनि । पुतरौती सुत ताहिते होति सुबंघ्या कौनि ॥१३॥”

×

×

×

“ताते मेरे मन यह आई । तोसों बात कहों यह भाई ॥ असु मंद गवखो जानी । ती लों कानक तराजू आनी ॥ सतिऐ कहै भेद हजार । नतिहि की दीजै पति भार ॥ ताते सति पथ करि लीजै । कचन संधि इहुन करि दीजै ॥ चक्रवाक सरवंग्यहु कहा । रापी बात गीध की

सही ॥ तब फिर अलंकार उपहार । दे गोघहि मोतिन के हार ॥ विदा  
 करी मंत्री लै चलयौ । चक्रहि संग कियो हलभलयौ ॥ गोघ मोर मों भेट  
 कराई । कहौ चक्रवाक पिधहि राई ॥ चित्र वरन अभरन ह दीन्हो ।  
 चक्रवाक को आदर कीन्हो ॥ कीन्ही विदा गोघ दै साथ । करि सनमान  
 आपने हाथ ॥ कीन्हीं संधि मिटी × × । आयौ राह हंस के कटक ॥  
 दीरघदरसी तब यह कह्यौ । राजइ हान्हि कारज रह्यौ ॥ विध्याचल  
 चलिऐ चढि धाई । जाइ अपने घर सुष पाइ ॥ दुनौ गए अपने राज ।  
 सुष सों करै आपनो काज ॥ विस्नुसर्म कालक सो कहौ । आयसु करी  
 सुनो चही ॥ राजपुत्र बोले जिय जानि । विस्नुसर्म को आदर मानि ॥  
 दुज वरु जो राजा को चही । सोई कथा आप यह कहौ ॥ दूजो भयौ जन्म  
 अवतार । सुनियौ राज रग व्यवहार ॥ गयौ जो ग्यानु फेरि अब भयौ ।  
 विस्नुसर्म तब देत असीस । संधि करो सब धरा धरीस ॥ विपति हरि  
 साधन की जाइ । मुदित न कीरति सदां सोहाइ ॥ नीति नई नारी  
 लगु जगी । चुंवन करै मंत्रि सुष लागी ॥ मंत्री × सदा मन धरै ।  
 महाराज सुष अन × करै । दोहा ॥ जौ लौ गोरि गिरीस को × × ×  
 × × जौ लौ सुरघर कनक गिरि फिरि सूर्य औ चन्द ॥ तौ लौ  
 नाराएन कथा सुनौ सुजान अनंद ॥ इति श्री हितोपदेसे (स्वा)मी  
 नंददास कृते चतुर्थ कथा समाप्त सुभमस्तु । सम्वत् १६३३ ॥ साके ॥  
 १७६॥ मिती पूस कृस्न पक्षे ११॥ सुम्वार लिखितं जो प्रति देष सो  
 लीषं मम दोष न देअते ॥ श्री राम राम × × । श्री रामदूत हनि-  
 वताय नमः ।”

‘जोगलीला’ (२४) के नंददास कृत होने का एकमात्र उल्लेख सभा की  
 सन् १९०६-०८ की रिपोर्ट, संख्या २०० (डी) में हुआ है । सन् १९३८-४०  
 की अप्रकाशित रिपोर्ट में इस ग्रंथ की सूचना संदिग्ध रूप से ‘उदय’ कवि  
 के नाम से भी दी गई है । काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में संख्या २६८  
 पर इस ग्रंथ की एक प्रति सुरक्षित है । इस के अतिरिक्त जिल्द संख्या

७६७/१३ तथा ३०३/१३ की दो पोथियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं। सभा की प्रति का प्रथम तथा अंतिम छंद इस प्रकार है—

एक समं मन मित्र मोहि अज्ञा यह दीनी ।  
याही ते मति उंकति जोगलीला तव कीनी ॥  
शिव सनकादिक सारदा नारद सेत महेश ।  
देहु बुधिवर ऊँदै ऊँर अक्षर ऊंकति विशेष ॥

कपट रूप करि किते भांति कहु भेष बनावै ।  
गोपी गोप गुपाल की नित प्याल पिटावै ॥  
रूप सिरोमणि राधिकां रसिक शिरोमनि स्याम ।

निपट वसों ऊँर मैं सदां करि शंकेत सधाम ॥ स्याम स्यामा सहित ॥

याज्ञिक जी की दोनों प्रतियों में 'निपट वसी ऊँर' के स्थान पर 'वसत उदै उर' पाठ मिलता है। मगलाचरण के छंद में शिव सनकादिक की स्तुति चित्य है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है नंददास आदि वल्लभ संप्रदाय के भक्तों की रचनाओं में इन्हे गौण स्थान दिया गया है। 'देहु बुधिवर ऊँदै ऊँर' में 'उदै' की श्लिष्टता के कारण दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है—(१) उदय के हृदय में श्रेष्ठ बुद्धि दो (२) हृदय में श्रेष्ठ बुद्धि का उदय दो (करो)। अंतिम छंद के 'वसत उदै उर मैं सदा' आदि के अनुरोध से कदाचित् पहला अर्थ लगाना ही समीचीन होगा। 'उदय' कृत अन्य ग्रंथों में भी 'उदै उर' का प्रयोग हुआ है। डा० याज्ञिक से प्राप्त 'रामकरना नाटिक' तथा 'चीरचिन्तामणि' नामक 'उदय' के ग्रंथों से दो उदाहरण दिए जाते हैं—

नुमिरि राम छवि चंद काम पूरन सुखसागर ।

पूरन कला प्रकास उदै उर होत उजागर ॥

करै हेत कर जोरि कै करौ कविन परनाम ।

बरनहु बल हनुमान की लछिमन को संग्राम ॥ रामकरना करै ।

कहति कुमरि की मांत तांत तुम पूरै जोगी ।

देषि कुमरि कौ हांथ कहौ संजोग बियोगी ॥

करी सगाई नंद कौ कुमरि कान्ह कौ जानि ।

ईनै उनै रस होईगौ कहों रेप पहिचानि ॥ सुलछन हाय के ॥

‘फूलमजरी’ (२५) में राधा-कृष्ण का वर्णन दोहो में किया गया है। प्रत्येक दोहे में किसी न किसी पुष्प का नाम होने के कारण इस का नाम ‘फूलमंजरी’ रखा गया है। नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२६-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में मास्टर श्रीराम, ग्राम भीखमपुर, पो० फ़तेहाबाद, ज़िला आगरा, के नाम से इस की एक प्रति की सूचना दी गई है। उक्त स्थान जाने पर लेखक को ज्ञात हुआ कि मास्टर श्रीराम का स्वर्गवास हो गया है अतएव यह प्रति देखी न जा सकी। सभा की रिपोर्ट में जो उद्धरण दिया हुआ है उस के अंतिम दोहे में किसी कवि की छाप नहीं है। पुष्पिका में यह निर्देश अवश्य है—“इति श्री फूल मजरी नंददास किरत संपूर्ण समाप्त”। इस की दूसरी प्रति रामहरी जौहरी की एक पोथी में पाई जाती है और उस का लिपि-काल सं० १७६३ है। सभा की रिपोर्ट की प्रति की भाँति इस में भी ३१ दोहे हैं किंतु मूल ग्रंथ के पाठ में अथवा आदि-अंत में किसी लेखक का नाम नहीं है। रामहरी जौहरी नंददास के ग्रंथों से विशेष रूप से परिचित थे। नंददास की अन्य कृतियों के साथ एक ही जिल्द में इस ग्रंथ को लिखाते हुए भी उन्होंने ने इस के रचयिता के नाम का उल्लेख नहीं कराया है, इस से यही विदित होता है कि या तो वे इसे नंददास कृत नहीं समझते थे अथवा उन्हें इस ग्रंथ के कर्ता का नाम निश्चित रूप से ज्ञात न था। एक तीसरी प्रति (जिल्द संख्या ६७५/५६) डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है। इस प्रति में एक दोहा अधिक है और उस से यह सूचित होता है कि ग्रंथ-कर्ता का नाम पुरुषोत्तम है।

नंददास कृत सभी ग्रंथों में उन की छाप अवश्य पाई जाती है। प्रथम दो प्रतियों में इस 'छाप' के न होने से तथा तृतीय पोथी में निश्चयपूर्वक पुरुषोत्तम नाम मिलने से यही अनुमान होता है कि यह ग्रंथ नंददास का नहीं है। डा० याज्ञिक की प्रति के आधार पर इस के १० दोहे उद्धृत किए जाते हैं—

सीस मुकट कुंडल भलक संग सोहत व्रजवाल ।  
 पहरे माल गुलाब की आवत है नंदलाल ॥१॥  
 चंपक वरन सरीर सुष नैन दपल द्रग मीन ।  
 जब डुलहनि तव रूप लषि लाल भये आधीन ॥२॥  
 फूलि रही जहा विविधि रति वहीत सघन वन बेलि ।  
 कुंज पहीप उर माल धरि करत कुंज मध केलि ॥३॥  
 सेत वरन सोभा अधिक मानौ मधु की धूप ।  
 लमत राधि(का) कुवरि पै कर केवरौ अनूप ॥४॥  
 × × ×  
 नंद नंद वसुदेव कुवर मेरे जीवन मूल ।  
 बेर बेर तो सौ कहौ आव निवारी फूल ॥१६॥  
 फिरतूरी सौघो अगर है चंदन ता पास ।  
 ताकौ अग्र जु रतन कहै पाडल की वास ॥१७॥  
 × × ×  
 तुम जर हाई जाय सही महा दुषत है वाय ।  
 श्रीर प्याल सब छाडि कै इह करनी हित लाय ॥२६॥  
 कहत फिरत सब सपीन मैं सौतिन लोचन सूल ।  
 आज लाल हम है दयी सूरजमुखी कौ फूल ॥३०॥  
 पीतांबर की छवि बनी सोहत स्याम सरीर ।  
 कुसुम केतकी मुकट धरि आवत है बलवीर ॥३१॥  
 पहीपदंघ धरि ग्रंथ है कह्यो पहीपन की नाम ।  
 परसोतम याकी भजै लै लै पहीपन नाम ॥३२॥



‘रानी मंगी’ (२६) नाम की एक पोथी का परिचय नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२९-३१ में नंददास के नाम से हुआ है। यह पोथी ग्राम राटीटी<sup>१</sup>, डाकखाना होलीपुरा, जिला आगरा के निवासी ठा० प्रतापसिंह के पास है। जिस जिल्द में यह प्रति है उस में इस के पहले जयदेव कृत ‘गीतगोविंद’ तथा पीछे गंगवाल कृत ‘दानलीला’ लिखी हुई है। ‘रानी मंगी’ ग्रंथ पत्र २६ से प्रारंभ होता है। इस के बाद पत्रों में संख्याएँ नहीं पड़ी हैं तथा उन में से कुछ जिल्द से अलग भी हो गए हैं। अन्य वस्तु में खोजने पर लेखक को इस प्रकार के कई पत्र प्राप्त हुए। संदर्भ तथा तुकात की सहायता से पत्रों का क्रम निश्चित कर लेने पर यह आश्चर्यजनक बात मालूम हुई कि न तो ग्रंथ के मूल पाठ में और न ‘अथ-इति’ के साथ ही किसी रचयिता का नाम दिया हुआ है। सभा की रिपोर्ट में ‘रानी मंगी’ का अंतिम उद्धरण इस प्रकार है—

“× × × श्री वृषभान गोप को कहा डर मानौ। दानी दान ल्यौ सब जानु। अहो बहौत भांति के दान कहावै। तुम कौन भांति के दानी आयें एक गहन वेद वा ले यो। जल में पीसि लोक सब देखै। एक श्रमावस संकई मंगी अगारसिरी अपने पद रज इनकी प्यारी। रानी मंगी। नंददास।”

इस ग्रंथ की अंतिम ४ पंक्तियाँ तथा पुष्पिका इस प्रकार है—

ये नारी निरमल जग पावन जो इन कौ जस गांनै।

इनहि आसिवे रहसि उपासीक बात महल की जानै ॥

देव असुर रिषि बधु नाग नर बधू जोड़ी जोड़ी हरि कौ प्यारी<sup>२</sup>।

रानी मंगे अगारसिरी अपने पद रज इन की धारी ॥

इति श्री रानी मंगी संपुरन समापता ॥ अथ दानलीला . . . . . ॥

<sup>१</sup> प्रसिद्ध नाम ‘पछोहगाम’।

<sup>२</sup> इस शब्द के स्थान का कागज फटा है। जो कुछ अवशिष्ट है उस से यही अनुमान होता है कि यहाँ पर ‘प्यारी’ पाठ रहा होगा।

दोनों उद्धरणों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि रिपोर्टर महाशय ने पुष्पिका का संक्षिप्त रूप 'रानी मंगौ' दे कर 'नंददास' शब्द बढ़ा दिया है जो कि स्पष्ट ही निराधार है। पुष्पिका के पहले का पद्यांश भी भिन्न है, केवल हृन्के टाइप में दी हुई पंक्ति दोनों में समान है। बात यह है कि 'मंगै' से ले कर 'अथ दान लीला . . .' आदि शब्द पांथी के दाहिने पत्र पर लिखे हुए हैं। यह पत्र जिल्द में जुड़ा है। 'रानी मंगौ' के बाद में लिखी हुई गंगवाल कृत 'दानलीला' का एक पत्र संयोगवश उक्त पत्र के पहले आ गया था। छंद तथा विषय आदि की दृष्टि से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्र उस स्थान का नहीं है। रिपोर्टर महाशय का ध्यान इस ओर नहीं गया। इसी से उन का अंतिम उद्धरण 'दानलीला' का हो गया है यद्यपि 'मंगै' से ले कर 'धारी' तक का वाक्यांश 'रानी मंगौ' का ही है। 'धारी' शब्द के स्थान पर रिपोर्ट में 'प्यारी' शब्द दिया गया है। 'दानलीला' की समाप्ति इस प्रकार होती है—

घोरि सांफरी राधा रानी । दान चुकावत मोहन दांनी ॥  
ता दिन के मिस भेटा भडी । प्रगटी प्रीति परस्पर नडी ॥  
जो यह लीला सुनै सुनावै । नंदकुंवर ताहि निकट पिलावै ॥  
गंगवाल अपनी कर लीनों । अपनी भुठौ मांपन दीनों ॥  
वेर वेर कह्यो तमुभाय । गंगवाल मेरो जसु गाय ॥

नभा की रिपोर्ट के उद्धरण में भी इस काव्यांश के समान 'चौपाई' शब्द 'चौपाई' छंद प्रयुक्त है परंतु प्रति के अशुद्ध होने के कारण उम में अंतिम पंक्तियों के तुक में गड़बड़ी हो गई है।

'रानी मंगौ' लगभग २० पंक्तियों का एक बड़ा पद है। इस का रचयिता कोई बहुत ही उदार हृदय राधावल्लभी जान पड़ता है क्योंकि राधावल्लभी तो राधा की ही उपासना तक सीमित रहते हैं, पर यह व्यक्ति लक्ष्मी, शार्वती, ब्रह्मणी, मची, कांथिल्या, नुमिना तथा सीता आदि सभी देव-वधूओं ने कृपा-पाचना करना है। ऊपर दी हुई अंतिम पंक्तियों के

अतिरिक्त इस ग्रंथ से कुछ और अवतरण दिए जाते हैं—

मैं जुवती जाचन व्रत लीन्हों ।

जहि जहो जौनि जांझं तहि तहि अंक भुजा पर दीन्हो ॥

पुरिप जाति वोही दांन मांन दे तिन तन नैकु न हेरौ ।

वेसरि बलय महावर मंडित इन को अलप न फेरौ ॥

राज सिंघासन है रव हाथी ल्यो नही नर कर बोट ।

अंगिया डडिया लहगा मुदरी इन को मेरै कोट ॥

×

×

×

बरसांनै ब्रषभांन गोप कैं कीरतिदा सुभ नारी ।

जिन कैं उदर मुकटमनि राधा सोयी वंदति चरन बिहारी ॥

×

×

×

जगिपतनी ललितादिक गोपी सब की क्रिपा मनाऊं ।

रास रसिक रिनियां ह्वै इन को भिछिक कहांऊं ॥

×

×

×

रुकमनी आदि सकल पटरांती इहै अनुग्रह कीजै ।

जनम जनम सीता पदपंकज रति मति डिडि करि दीजै ॥

‘कृष्णमंगल’ (२७) नामक ग्रंथ का उल्लेख सभा की सन् १९३५-३७ की अप्रकाशित रिपोर्ट में इटावा के ब्रह्म प्रेस के अध्यक्ष पं० वेदनिधि शास्त्री के नाम से हुआ है । यह वास्तव में ‘ग्रंथ’ न हो कर २० पंक्तियों का एक पद मात्र है जिस का नंददास कृत होना अनिश्चित है । सभा की रिपोर्ट के अनुसार यह पद इस प्रकार है—

जनमें श्री कृष्ण मुरारि भक्ति हित कारने ।

मथुरा लियो अवतार गोकुल भूलै पालने ॥

तिथि अष्टमी बुधवार भादों वदि की करी ।

रोहिणी नक्षत्र आधी रात जनम लियो शुभ घरी ॥

धनि देवकी वसुदेव जहाँ प्रभु अवतरे ।  
 धन्य दशोदा बाबा नन्द महा घर पग धरे ॥  
 धन्य धन्य सुर नर मुनि सब जय जय करे ।  
 दुंदुभि वज्रत प्रकाश सुमन वर्षा करे ॥  
 द्रजवासी गोरस भरि करि ल्यावहीं ।  
 दधिकाँदी बाबा नंद सु कीच मचावहीं ॥  
 बाजत ताल मृदंग वीन अरु बाँसुरी ।  
 निरतत गोपी ग्वाल चरणचित्त चावरी ॥  
 यशुमति चीर पहिराय नीरंग भई ग्वालिनी ।  
 नुन्दर वदन निहारि चकृत भई भामिनी ॥  
 श्री बलभद्र जी के वीर असुर दल खंडना ।  
 भक्तवत्सल महाराज यादव कुल मंडना ॥  
 शंकर धारत है ध्यान सु गोद खिलावही ।  
 सो मुख चूमति माइ सु पलना भुलावहीं ॥  
 श्री नन्ददास सनेह चरण चित ल्यावहीं ।  
 हरि गुण मंगल गाय गोविंद गुण गावहीं ॥

उपर्युक्त विवेचन ने ज्ञात होता है कि नन्ददास कृत प्रसिद्ध ३० ग्रंथों में दो<sup>१</sup> 'मानमंजरी नाममाला' के ही भिन्न नाम हैं, मात<sup>२</sup> अप्राप्य है, दो<sup>३</sup> का कवि कृत होना संदिग्ध है, एक<sup>४</sup> प्रवानतया कवि कृत 'दशम स्कंध'

<sup>१</sup> 'मानमंजरी'

'विज्ञानार्थप्रकाशिका'

'नामचिन्तामणिमाला'

'बाँसुरी लीला'

<sup>२</sup> 'प्रबोधचंद्रोदय नाटक'

'अर्थचंद्रोदय'

'रासमंजरी'

<sup>३</sup> 'मुदामा चरित'

'मानलीला'

'नासिकेत पुराण'

'ज्ञानमंजरी'

<sup>४</sup> 'गोवर्द्धन लीला'

के अध्याय २४ व २५ से लिया गया है अतएव वह कवि की स्वतंत्र कृति नहीं है, तीन<sup>१</sup> किसी अथवा किन्हीं अन्य अप्रसिद्ध नंददास की कृतियाँ हैं, एक<sup>२</sup> उदयनाथ 'कवींद्र' की रचना है, दो<sup>३</sup> के रचयिता अज्ञात हैं तथा एक<sup>४</sup> कोई ग्रंथ न हो कर एक पद मात्र है। इन उन्नीस ग्रंथों को उपर्युक्त सूची से निकाल देने पर ग्यारह ग्रंथ ऐसे रह जाते हैं जिन्हें हम कवि की प्रामाणिक कृतियाँ मान सकते हैं—रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी नाममाला, अनेकार्थमंजरी, स्यामसगाई, भँवरगीत, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी तथा दशम स्कंध। इन ग्रंथों के अतिरिक्त मुद्रित तथा हस्तलिखित प्रतियों से नंददास की छाप वाले २८३ पद भी संगृहीत किए गए हैं। संपादन संबंधी कठिनाइयों के कारण इन में से केवल ३५ पद ही कवि की ११ कृतियों के साथ 'पदावली' शीर्षक के अंतर्गत मूल पाठ में रखे गए हैं। शेष पद परिशिष्ट १ (ग) में संकलित हैं।

## संपादित ग्रंथों का आधार

प्रस्तुत संस्करण में उपर्युक्त प्रामाणिक ग्रंथों को संपादित कर के प्रकाशित किया जा रहा है। नीचे संपादन सामग्री का विवेचन किया गया है।

### रूपमंजरी

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियों का उपयोग हुआ है :—

१ क—यह मुद्रित प्रति ठाकुरदास सूरदास तथा तुलसीदास नरोत्तम-

<sup>१</sup> 'दानलीला'

'हितोपदेश'

'रासलीला'

<sup>२</sup> 'जोगलीला'

<sup>३</sup> 'फूलमंजरी'

'रानी मंगौ'

<sup>४</sup> 'कृष्णमंगल'

दाग दाग युद्ध कर के 'पांचे मंजुरीयो' ग्रंथ मे सं० १६८५ मे प्रकाशित हुई थीं जिन की एक प्रति स्थानीय 'भारती भवन' पुस्तकालय मे सुरक्षित है और जिस की पुस्तकालय संख्या 'उपदेय १३८' है। इस ग्रंथ मे मंजरियों का क्रम इस प्रकार है—'विरहमंजरी', 'रसमंजरी', 'मानमंजरी', 'अनेकार्थ मंजरी' तथा 'रूपमंजरी'। इस क्रम तथा पाठ के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस संस्करण के पाठ प्रायः अनुद्ध है और उन में गुजरातीपन प्रचुर मात्रा में है। हस्तलिखित प्रतियों द्वारा पुष्ट होने पर ही इस के पाठों को मूल पाठ में स्थान दिया गया है।

२ ग—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के कार्यालय मे नन्ददास कृत दस ग्रंथ मथुरा के पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी की हस्तलिपि मे लिखे हुए सुरक्षित है। इन ग्रंथों के नाम इस प्रकार है—रासपंचाध्यायी, स्याम-सगाई, भैरवगीत, रुक्मिणीसंगल, सुदामा चरित तथा पंच-मंजरियाँ। ये ग्रंथ हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि मात्र नहीं है वरन् चतुर्वेदी जी द्वारा संपादित रूप में है। मूल पाठ के नीचे कहीं कहीं पाठांतर भी दिए हैं किन्तु जिन प्रतियों के आधार पर इन का संपादन हुआ है उन का कोई उल्लेख इस संग्रह में नहीं है।

इन संग्रह की अन्य चार मंजरियों के समान 'रूपमंजरी' की इस प्रति का पाठ भी 'क' में दी हुई मंजरी की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। प्राप्त हस्तलिखित पोथियों मे प्रायः मेल न गाने के कारण तथा संपादन की मूलाधार प्रतियों के संबंध में पूर्ण अनभिज्ञता होने के कारण इस के पाठों को मूल पाठ के रूप में नहीं ग्रहण किया जा सका है। पाठांतरों में इन का उल्लेख अवश्य कर दिया गया है।

३ ग—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। इस की पुस्तकालय संख्या '२० क' है। यह ज्येष्ठ वदी ६, भृगुवार, सं० १८२० की लिखी हुई है यद्यपि देखने में आधुनिक प्रतीत होती है। इस पोथी का पाठ प्रायः अनुद्ध है।

४ घ—भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक संख्या '१५ क' है। इस जिल्द में नंददास कृत 'रस', 'रूप', तथा 'विरह' मंजरियों के साथ सेनापति कृत 'कवित्तरत्नाकर' की पहली 'तरंग' दी हुई है जिस की पुष्पिका से विदित होता है कि यह पोथी सं० १८३२ में किसी ठाकुरदास मिश्र द्वारा लिखी गई थी।

'रसमंजरी' की प्रति के प्रारंभ के २५ पृष्ठ खंडित हैं और अवशिष्ट अंश तथा अन्य दोनों मंजरियाँ विशेष रूप से अशुद्ध हैं। अतएव कुछ चुने हुए स्थलों की परीक्षा के बाद इन्हे छोड़ दिया गया है।

५ ड—गत वर्ष इस प्रति की तथा इस के साथ एक ही जिल्द में पाए जाने वाले नंददास के अन्य ग्रंथों की सूचना काशी के बाबू ब्रजरत्नदास जी ने "नंददास-कृत अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" शीर्षक लेख में प्रकाशित की थी<sup>१</sup>। नंददास संबंधी पोथियों में इस जिल्द का एक विशिष्ट स्थान है। इस पुस्तकाकार जिल्द की पत्र-संख्या २४८ है। इस में १६ ग्रंथ हैं—रसपंचाध्यायी, फूलमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रसमंजरी, मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, कृष्णसिद्धांतपंचाध्यायी, मनोरथबल्लरी, नंदलीला, श्रीराधाजू की जन्म लीला, मोतीलीला, दानलीला, विदग्धमाधव, श्री गीतगोविंद सटीक भाषा तथा रविमनीमंगल। इन में से 'नंदलीला', 'श्री राधाजू की जन्म लीला' तथा 'मोतीलीला' गंगवाल कृत, 'दानलीला' खरगसेन कृत तथा 'विदग्धमाधव' रूपसनातन कृत है। 'फूलमंजरी' और 'मनोरथबल्लरी' में रचयिता का नाम नहीं दिया है। अवशिष्ट आठ ग्रंथ नंददास के हैं। इस जिल्द में चार स्थानों पर तिथियाँ दी हैं—'फूलमंजरी' के अंत में सं० १७६३, आसोज बदी ११, 'मानमंजरी' के अंत में सं० १८३५ फाल्गुन सुदी १५, 'नंदलीला' के अंत में सं० १८२६, आषाढ़ बदी ५ तथा 'विदग्धमाधव' के अंत में सं० १८२४, आसोज बदी ७ रविवार लिखा

<sup>१</sup> हिंदुस्तानी (अप्रैल-जून), सन् १९४१

हुआ है। इस में 'जुगन' तथा 'महात्मा हरिचंद सवाई' नामक दो लिपि-कारों का उल्लेख है किंतु हस्तलेखों से यह स्पष्ट है कि किसी तीसरे व्यक्ति ने भी उस के कुछ ग्रंथों को लिखा था। 'विदग्धमाधव' तथा 'रुक्मिणीमंगल' की पुष्पिकाओं से यह भी ज्ञात होता है कि यह जिल्द जयपुर निवासी हरीराम जीहरी नामक किन्हीं सज्जन की थी तथा अंतिम ग्रंथ लिखे जाने के समय वे वृंदावन में थे।

इस जिल्द की 'रूपमंजरी' की प्रति से मूल पाठ निर्धारित करने में विशेष सहायता ली गई है। पाठों की शुद्धता के अतिरिक्त इस के कुछ पाठ ऐसे हैं जो अन्य पोथियों में नहीं पाए गए।

इन पोथियों के अतिरिक्त अजयगढ़ रियासत के किन्हीं पं० भगवान-दीन के नाम से एक प्रति का उल्लेख पाया जाता है<sup>१</sup>। उक्त सज्जन से पत्र-व्यवहार करने पर कोई उत्तर न मिला। पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी में एक अन्य प्रति का पता चला था<sup>२</sup>। वहाँ के अधिकारियों ने इस प्रति को भेजा भी किंतु खेद है कि यह उस समय प्राप्त हुई जब 'रूपमंजरी' छप चुकी थी। इस प्रति की जिल्द के साथ ही 'विरहमंजरी' की भी एक प्रति है।

## विरहमंजरी

इस ग्रंथ के नपादन में छः प्रतियों का उपयोग हुआ है :—

१ क—ठाकुरदास सूरदास द्वारा 'पांचे मंजूरीयो' में प्रकाशित प्रति<sup>३</sup>।

२ ख—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचा-

<sup>१</sup> लो० रि० सन् १९०६-०८, सं० ३०१ (ए)

<sup>२</sup> लो० रि० (पंजाब), सन् १९२२-२४, सं० ७२ (सी)

<sup>३</sup> दे० 'रूपमंजरी' की 'क' प्रति का परिचय



४ घ—‘रसमंजरी’ में कुछ स्थल ऐसे हैं जो ‘रूप’ तथा ‘विरह’ मंजरियों में भी साधारण पाठ-भेद के साथ मिलते हैं। इस प्रति<sup>१</sup> ने इन स्थलों को प्रायः छोड़ दिया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरीली, से प्राप्त। वंश-संख्या ७५ तथा पुस्तक-संख्या १४। इस में केवल दो पत्र हैं। ‘रसमंजरी’ के जिस थोड़े से अंश का पाठ इन पत्रों में मिलता है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रति अपने मूल रूप में अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती।

एक अन्य प्रति का उल्लेख काशी के स्व० छुन्नीलाल वैद्य के नाम से सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०६-१२, सं० २०८ (ई) में पाया जाता है। वैद्य जी के संग्रह की समस्त पुस्तकों को देखने पर भी इस प्रति का कोई पता न चल सका।

## मानमंजरी नाममाला

इस ग्रंथ की छः प्रतियों की परीक्षा की गई है:—

१ अ—‘नंददास कृत अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला’ शीर्षक प्रयाग विश्वविद्यालय की ‘यूनिवर्सिटी स्टडीज’ सन् १९३६ में प्रकाशित तथा श्री बलभद्रप्रसाद मिश्र, एम० ए० और श्री विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा, एम० ए०, द्वारा संपादित।

‘नाममाला’ की इस प्रति के अंतिम दोहे की संख्या २९६ है। छापे की भूल के कारण ‘धर्मराज नाम’ शीर्षक दोहे में दोहा-संख्या देने से रह गई है। इस भूल को सुधारने से मूल पाठ में ३०० दोहे हो जाते हैं। परिशिष्ट में १६ दोहे और पाए जाते हैं जो या तो “केवल किसी एक ही प्रति में मिल सके हैं” अथवा “बिलकुल अस्पष्ट एवं अशुद्ध हैं।” इस संस्करण के दोहे वर्णानुक्रम के अनुसार रक्खे गए हैं।

---

<sup>१</sup> दे० ‘रूपमंजरी’ की ‘ङ’ प्रति का परिचय

२ आ—यह प्रति सं० १८१८ से कुछ पहले की लिखी हुई मानी जा सकती है<sup>१</sup>। इस के अंतिम दोहे की संख्या २६६ है। इस में 'मुक्ता' तथा 'दाक' शीर्षक दोहों की संख्या ४० तथा २३० दी है जो अगुद्ध है और क्रम से ३६ तथा २२६ होनी चाहिए। साथ ही 'दिसा' (दो० सं० १८४), 'नमह' (दो० सं० १६५) तथा 'केतकी' (दो० सं० २५१) नामक तीन दोहे क्रमशः दोहा संख्या २१५, २०२ तथा २५८ पर दोहरा दिए गए हैं। इन भूलों को सुधारने से इस प्रति में २६१ दोहे रह जाते हैं। इस का पाठ साधारणतया शुद्ध है और अन्य प्राचीन पोथियों से साम्य रखता है।

३ इ—जि० सं० ७६६/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इन जिल्द के प्रथम पत्र की संख्या ३५ है जिस से यही अनुमान किया जा सकता है कि इस प्रति के पहले कोई अन्य ग्रंथ लिखा रहा होगा। ऐसा जान पड़ता है कि इस जिल्द के प्रारंभ तथा अंत की दाहिनी और बाई ओर के कुछ पन्ने समान रूप से निकाल लिए गए हैं। पत्र ३५ से ७१ तक 'नाम-माला' दी हुई है और तत्पश्चात् 'अनेकार्थध्वनिमंजरी' नामक संस्कृत का ग्रंथ दिया है जिस की पुष्पिका इस प्रकार है—“इति श्रीकाश्मीराम्नाये महा क्षणक कवि विरचिते अनेकार्थध्वनिमंजरी पदाधिकारः समाप्तः ॥ शुभमस्तु ॥ संवत् १७२५ वर्षे पीप वदि १० शुके लिपितं लाभपुरे शुभ-मस्तु ॥”

यह प्रति आधुनिक पुस्तकाकार रूप में लिखी है। कागज, स्याही तथा लिखावट के आधार पर इसे लगभग पीने तीन सौ वर्ष प्राचीन मानना आश्चर्य का विषय होगा।

इस प्रति में 'शर' तथा 'बंबूक' नाम के दो दोहे क्रमशः दोहा-संख्या ७१-१६४, २३१-२६७ पर समान रूप से मिलते हैं। इस प्रकार इस के अंतिम दोहे की संख्या २८५ न हो कर २८३ होनी चाहिए। इस प्रति का

<sup>१</sup> दे० 'विरहमंजरी' की 'ग' प्रति का परिचय

पाठ प्रायः अगुद्ध है। बिना अन्य पोथियों का सहारा लिए इस के अनेक दोहों का अर्थ स्पष्ट नहीं होता। तथापि यह मानना पड़ेगा कि 'मानमंजरी' की समस्त जात प्रतियों में यह प्राचीनतम है।

४ उ—जि० सं० १७५/१४। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। यह पोथी क्वार वदी ५, बुधवार, सं० १८७६ में किन्हीं वैष्णव सीताराम के लिए लिखी गई थी। दोहा-सख्या की प्रशुद्धियों को सुधारने से यह पता चलता है कि अंतिम दोहे की संख्या २६८ न हो कर २६२ होनी चाहिए। पाठांतरों की दृष्टि से यह प्रति 'आ' से विशेष साम्य रखती है।

५ ऊ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली, से प्राप्त। यह पोथी सं० १९१९ में किसी मोहनलाल द्वारा लिखी गई थी। आधुनिक होते हुए भी इस के अधिकांश दोहे प्राचीन प्रतियों से मेल खाते हैं।

६ ए—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस प्रति<sup>१</sup> के अंत में इस का लिपि-काल फाल्गुन सुदी १५, सं० १८३५ दिया हुआ है और यह किसी 'जुगल' नामक व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी। इस प्रति में ३२५ दोहे हैं। दोहा ३२० तथा ३२१ में एक अत्यंत महत्वपूर्ण सूचना दी गई है—

दो सत पैसठ ऊपरें, दोहा श्रीनंददास ।

रामहरी बाकी किये, कोष धनंजय तास ॥

संतन की जानी बड़ी, रामहरी मतमंद ।

अपने समझन कों लिखे, वन ते बिच दिए संद ॥

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं जिस जिल्द में यह प्रति पाई जाती है वह जयपुर निवासी रामहरी अथवा हरीराम जौहरी के निज की थी। रामहरी जी न 'मानमंजरी' की अपनी इस प्रति में स्वरचित ६० दोहों को पृथक् रूप से न रख कर उन्हें यथास्थान नंददास के दोहों के साथ मिला कर लिखवाया है और इस बात का कोई निर्देश नहीं किया कि उन के बनाए

<sup>१</sup> दे० 'रूपमंजरी' की 'ड' प्रति का परिचय

दोहों दोहों तीन हैं । इस स्थिति में मूल तथा प्रक्षिप्त दोहों को अलग करने के लिए यह आवश्यक है कि इन के दोहों का मिलान प्राचीनतर प्रतियों में किया जाय । इस संबंध में हमारे सामने यह कठिनाई उपस्थित होती है कि प्रक्षिप्त दोहों के रचना-काल का हमें कोई ज्ञान नहीं । प्रति के अंत में दिया हुआ संवत् इस प्रति की प्रतिलिपि का है । उस से प्रक्षिप्त ग्रंथों के रचना-काल पर प्रकाश नहीं पड़ता है ।

नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९२६-२१ की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट से रामहरी द्वारा रचित छ. ग्रंथों की सूचना प्राप्त हुई—१. बोध वावनी, २. बोध विलास, ३. लघुनामावली, ४. लघुशब्दावली, ५. रस-पचीसी तथा ६. सतहंसी । इन में से ३ व ४ को छोड़ कर अन्य सभी ग्रंथ मौलिक रचनाएँ न हो कर अन्य कवियों की कृतियों के संग्रह मात्र हैं तथा उन की सहायता से प्रस्तुत विषय के संबंध में केवल इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि नंददास की कृतियों से रामहरी विशेष रूप से परिचित थे जैसा कि 'रसपचीसी' के इस अंतिम दोहे से विदित होता है—

बृंदावन जमुना पुलिन, राधाकृष्ण बिहार ।

नंददास सत कदिन की, बानी करै अहार ॥

'लघुनामावली' तथा 'लघुशब्दावली' में 'मानमंजरी' तथा 'अनेकार्य-मंजरी' की भाँति पर्यायवाची तथा अनेकार्थी शब्दों पर दोहे मिलते हैं । 'लघुनामावली' के मंगलाचरण में रामहरी ने नंददास की 'नाममाला' का स्मरण भी किया है—

नंददास नामावली अमरकोश के नाम ।

इन तैं जे वितरवत ओ लिखे हेत धनस्याम ॥

इस ग्रंथ का रचना-काल इस प्रकार दिया है—

अवद घंट जुग आनि तिस आचण जुदला तीज ।

रामहरी राजवान करि सदा कृष्ण रंग भीज ॥

‘चारि तिस’ से ३४ का अर्थ लगाया जा सकता है। ‘अब्द’ का ‘वर्ष’, ‘पंड’ का ‘६’, ‘जुग’ का ‘२’ अर्थ करने से १८ की संख्या प्राप्त होती है और फलतः ग्रंथ का रचना-काल स० १८३४ ठहरता है। ‘लघुशब्दावली’ में दिए हुए रचना-काल से इस कथन की पुष्टि भी होती है—

वेद राम वसु कलानिधि, संवत् मास जु क्वार ।

शुक्ल पक्ष पूर्णों सरद, वृंदावन गुरवार ॥

इस में वेद ‘४’, राम ‘३’, वसु ‘८’ तथा कलानिधि ‘१’ के अको को वामगति से पढ़ने से १८३४ निकल आता है। वृंदावन में कालीदह पर निवास करने वाले बाबा बंसीदास की कुटी पर जाने पर लेखक को यह पता चला कि ऊपर दिए हुए छः ग्रंथ कुछ अन्य कवियों की रचनाओं के साथ जिस जिल्द में मिलते हैं उस की ‘लघुशब्दावली’ की प्रति के अंत में यह गद्यांश भी दिया हुआ है—“फागुन सुदी १५ सवत् १८३५ हरीराम जोहरी ने लिखी अति प्रीति सों।” सभा के रिपोर्टर ने न जाने क्यों इस आवश्यक उद्धरण को अपनी रिपोर्ट में स्थान नहीं दिया। यह तिथि वही है जो ‘मानमंजरी’ की ‘ए’ प्रति के अंत में दी हुई है और इस से इस बात का पता चलता है कि ‘लघुनामावली’ तथा ‘लघुशब्दावली’ जिन की रचना रामहरी ने स० १८३४ में की थी उन्हीं की प्रतिलिपि उन्हो ने स्वयं फाल्गुन सुदी १५, १८३५ में की और इसी समय उन्हो ने ‘मानमंजरी’ की ‘ए’ प्रति में नंददास कृत दोहों के साथ अपने दोहो को मिलवाया था।

‘लघुनामावली’ तथा ‘मानमंजरी’ की इस प्रति के समान दोहों के संबंध में आगे विचार किया जायगा।

प्रस्तुत संस्करण के परिशिष्ट ३ में ‘मानमंजरी’ में ‘क’ से ले कर ‘छ’ तक के सात नामों द्वारा सूचित पाठांतर पाए जाते हैं। ये नाम ‘मानमंजरी’ की उन हस्तलिखित प्रतियों के हैं जिन का उपयोग ‘अ’ के संपादन में किया गया था और जो ‘अ’ के मूल पाठ के नीचे दिए हुए पाठांतरों से लिए गए हैं। इन में से ‘ख’ का लिपि-काल स० १६०५, ‘घ’ का स० १६०६, ‘ङ’

का सं० १८७५, 'च' का सं० १९६६ है। 'क' के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। 'ग' तथा 'छ' प्रतियों को डा० धीरेन्द्र वर्मा ने 'ग्र' के संपादन के लिए जोधपुर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित दो हस्तलिखित प्रतियों की प्रतिलिपि करवा कर भेजवाया था। लेखक को उन्हीं से ये दोनों प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। 'ग' में 'मानमंजरी' का वह रूप मिलता है जो उसे शुद्ध कर के किसी गंगादास नामक व्यक्ति ने दिया था। गंगादास ने सं० १८८० में 'मानमंजरी' के दोहों को दस वर्गों में बाँटा था—'देवता वर्ग', 'नमस्तारादि वर्ग', 'गजा और मनुष्य वर्ग', 'धातु और शृंगार वर्ग', 'पक्षी वर्ग', 'जल वर्ग', 'पर्वत और पशु वर्ग', 'पृथ्वी वर्ग', 'वन वर्ग', तथा 'अति आदि फुटकर वर्ग'। इस प्रति में कवि कृत दोहों में परिवर्तन करने के अतिरिक्त बीच बीच में चीपाइयाँ भी जोड़ दी गई हैं। इस की छंद-संख्या ४०० है। 'छ' प्रतिलिपि आधुनिक होते हुए भी प्राचीन शैली में बड़े ही सुंदर अक्षरों में लिखी गई है। इस से मूल प्रति की तिथि आदि का कोई परिचय नहीं मिलता। इस में 'मानमंजरी' में २९९ तथा 'अनेकार्थ-मंजरी' में ११८ दोहे हैं।

'मानमंजरी' की चार मुद्रित प्रतियों की भी परीक्षा की गई है। लीथो की छपी एक प्रति काशी के आर्यभाषा पुस्तकालय में सुरक्षित है। मुखपृष्ठ न होने के कारण इस के मुद्रक तथा प्रकाशक का नाम नहीं ज्ञात होता है। उस प्रति की 'नाममाला' में २६७ तथा 'अनेकार्थ' में १५२ अंतिम दोहा-संख्या है। स्थानीय 'भारती भवन' में 'अनेकार्थ और नाममाला' नाम से दो मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं जिन की पुस्तकालय संख्या 'उपदेश ३' है। इन में से एक काशी के हरिप्रकाश यंत्रालय में अमीरसिंह द्वारा मुद्रित हुई थी। इस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' के अंतिम दोहों की संख्या क्रमशः २७८

---

<sup>१</sup> 'एनाहादाद यूनिवर्सिटी स्टडीज', १९३९ ई०, 'अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला', भूमिका, पृ० (ज)

व १५४ है। इस प्रति में मुद्रण-संवत् नहीं है। हरिप्रकाश यंत्रालय से मुद्रित एक दूसरा संस्करण आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित है। उस में मुद्रण-संवत् १९३३ दिया है। तीसरी प्रति सं० १९२२ में काशी के लाइट प्रेस द्वारा मुद्रित हुई। इस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' की अंतिम दोहा-संख्या २६७ तथा १५५ है। अंतिम प्रति 'पांचे मंजुरीओ' में प्राप्त होती है और उस में 'नाममाला' तथा 'अनेकार्थ' में ३०१ तथा ११६ दोहे हैं।

इन प्रतियों की अंतिम दोहा-संख्या प्रायः शुद्ध नहीं है। विस्तार-भय से इन की अशुद्धियों का उल्लेख नहीं किया गया है। उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त सभा की खोज रिपोर्टों में इस ग्रंथ की कुछ अन्य प्रतियों के विवरण दिए हैं जिन में से यहाँ तीन प्राचीनतम प्रतियों का ही उल्लेख किया जाता है। प्रकाशित रिपोर्टों में खो० रि० सन् १९१७-१९, संख्या ११९ (ए) पर सं० १७८२ की लिखी एक प्रति की सूचना दी गई है जिस की दोहा-संख्या २६१ है। सन् १९२३-२५ तथा १९२९-३१ की अप्रकाशित रिपोर्टों में क्रमशः सं० १८१२ तथा १८१४ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं। पहली प्रति के विवरण में अन्वेषक ने प्रति में पाए जाने वाले विभिन्न नामों की एक सूची दी है जिस के प्रथम १२ नाम 'अनेकार्थ' के हैं, अवशिष्ट 'मानमंजरी' के हैं। कदाचित् इन्हीं पहले के एक दर्जन नामों को देख कर उन्होंने 'अनेकार्थ' का शीर्षक दे कर इस प्रति का विवरण दिया है। सं० १८१४ की प्रति के अंत के उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि उस में २७१ दोहे हैं।

'मानमंजरी' की पाठ संबंधी इस सामग्री से परिचय प्राप्त कर लेने के बाद यह प्रश्न उठता है कि उल्लिखित प्रतियों में कौन ऐसी प्रति अथवा प्रतियाँ हैं जो कवि की मूल कृति के निकटतम पहुँचती हैं। स्वभावतः ज्ञात प्राचीनतम प्रति होने के कारण हमारा ध्यान सर्वप्रथम 'इ' की ओर जाता है जो सं० १७२५ में लिखी गई थी और जिस में २८३ दोहे हैं। इस

के चार नामों के दोहे विशेष कठिनाई उपस्थित करते हैं। इस में 'सीघ्र' नाम पर दो दोहे मिलते हैं—

आसु तरस सहसा भटत तुरत तूर्न द्रुत होइ ।  
 क्षर सावर तुर क्षप्र श्ररत छुरय रहस सोइ<sup>१</sup> ॥  
 वाज वेग जब रभस रभ अवलंवत उताल ।  
 चपल चली चातुर श्रली आतुर लखि नंदलाल ॥

'आ' में 'सीघ्र' पर केवल एक दोहा है—

आसु भटत द्रुत तूर्न लघु छिप्र सत्तुर उत्ताल ।  
 तुरत चली चातुर श्रली, आतुर दिखि नंदलाल ॥

साधारणतया 'इ' के दोनों दोहों का मूल रूप 'आ' के दोहे में लक्षित होता जान पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ अधिक पर्यायवाची नामों का समावेश करने के लिए 'आ' के दोहार्द्ध में आवश्यक परिवर्तन कर के तथा दो अन्य दोहार्द्ध गढ़ कर दो दोहों की रचना कर ली गई है। इस के विपरीत यह भी कल्पना की जा सकती है कि 'इ' के प्रथम दोहे के दोहार्द्ध में आवश्यक परिवर्तन कर के तथा उस के दूसरे दोहार्द्ध तथा दूसरे दोहे के प्रथमार्द्ध को छोड़ कर 'आ' के दोहे की रचना कर ली गई होगी। किंतु इस प्रकार की कल्पना नितांत असाधारण होगी। प्राचीन साहित्य में दूसरे की रचना को परिवर्द्धित करने के अनेक उदाहरण मिलते हैं, उसे काट-छाँट कर छोटा करने के उदाहरण यदि उपलब्ध भी हो सके तो वे अपवाद स्वरूप ही माने जाएँगे। 'घर' नाम पर दोनों प्रतियों के दोहों का एक अन्य उदाहरण भी ध्यान देने योग्य है—

<sup>१</sup> यह अस्पष्ट पंक्ति 'अ' में इस प्रकार है—

छिप्र तु सत्वर तुच्छ लघु राजा रंभा सोइ



इ— सदन सकेत निकेत ग्रह गेह वैस्म संकेत ।  
 लगन धिज्ज पद<sup>१</sup> आसपद आलय निलय निकेत ॥  
 मंदिर मंडप आयतन वसत निकाय स्थान ।  
 भवन भूष व्रषभांन के गई सहचरी जान ॥  
 आ— सदन सकेत निकेत ग्रह आलय निलय यस्थान ।  
 भवन भूष व्रषभांन के गई सहचरी जान ॥

‘आ’ के दोहे को परिवर्द्धित करने की प्रवृत्ति इस उदाहरण में कुछ अधिक स्पष्टता से परिलक्षित होती है । इसी प्रकार ‘कंचन’ तथा ‘समूह’ नामों के दोहों के उदाहरण भी विचारणीय हैं । प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों में केवल ‘ऊ’ ने जो सं० १८७६ की है इन नामों में से दो में ‘इ’ से मिलता जुलता पाठ दिया है । ‘घर’ तथा ‘समूह’ नाम पर उस ने भी ‘आ’, ‘ऊ’ और ‘ए’ के समान एक ही दोहा दिया है ।

अन्य पोथियों से तुलना करने पर ‘इ’ में दूसरे प्रकार की असमानताएँ भी मिलती हैं । ‘रोमराजी’, ‘अरुन’, ‘कुद’ ‘लघुआता’ और ‘मनोहर’ के नामों पर इस में एक एक दोहा मिलता है । दूसरी पोथियों में ये नाम ही नहीं हैं । साथ ही ‘ग्रीव’ ‘भृकुटी’, ‘अंधकार’, ‘अर्द्धरात्रि’, ‘राजवल्ली’ तथा ‘विवाह’, इन छः शीर्षकों को इस ने बिलकुल छोड़ दिया है । उपलब्ध सभी पोथियों में ये दिए गए हैं । इन्हें छोड़ देने से संदर्भ में कुछ अपूर्णता भी आ गई है । इस प्रति का ‘पान’ शीर्षक दोहा अन्य प्रतियों से बिलकुल भिन्न है ।

इन असमानताओं के रहते हुए केवल प्राचीनतम प्रति होने के कारण इसे असंदिग्ध मान लेना युक्तिसंगत नहीं है जब तक इस का पक्ष समर्थन करने वाली कुछ और समसामयिक अथवा इस से भी अधिक प्राचीन प्रतियाँ न मिल जायँ ।

प्रस्तुत विषय का अध्ययन 'ए' प्रति के आधार पर भी किया जा सकता है। 'ए' का लिपि-ज्ञान सं० १८३५ है। इस के उन दो दोहों को ऊपर उद्धृत किया जा चुका है जिन में रामहरी इस बात का उल्लेख करते हैं कि 'ए' में नन्ददास कृत २६५ दोहे हैं। उन दो दोहों के साथ ही 'ए' के अंत में तीन दोहे और ऐसे हैं जिन्हें रामहरी कृत मान लेने में कठिनाई नहीं हो सकती है। वे ग्रंथ-माहात्म्य के रूप में जोड़े गए हैं—

मान बिना नहि नेह कछु नेह बिना नहि मान ।  
लौन संग लागै रचिर जे हैं रस मिष्टान ॥  
जैती नेह तित मान बन नितहि मेह विन भान ।  
रसना रस छुवत कठिन मान सरकरा जान ॥  
विन जाने घनस्याम के आवागमन न जाइ ।  
ताते हरि गुरु वैष्णव ब्रज निसि दिन चित लाइ ॥

'ए' के ३२५ दोहो से इन पाँच दोहो को पृथक् करने पर मिलवाँ दोहो की संख्या ३२० रह जाती है। 'लघुनामावली' में १०२ दोहे हैं और वे रामहरी के निज के हैं। नन्ददास के दोहो से वे पृथक् हैं—

शिर धरि श्रीराधारमन पद भट्ट गोपाल सहाइ ।  
कोश धनंजय आदि श्री कछुक नाम कहाइ ॥  
नन्ददास नामावली अमरकोश के नाम ।  
इन तें जे वितरक्त श्री लिखे हेत घनस्याम ॥

'लघुनामावली' के ४८ दोहे लगभग उसी रूप में 'ए' में पाए जाते हैं। रामहरी के स्वर्णचित्त दन ८८ दोहों को 'ए' के उक्त ३२० दोहो से वाद देने पर 'ए' में २७२ दोहे नन्ददास कृत माने जाने चाहिए। यदि रामहरी की दी हुई २६५ की संख्या में किसी प्रकार की भूल नहीं है तो 'ए' के अवशिष्ट दोहो में सात और दोहे रामहरी कृत समझे जाएँगे। 'लघुनामावली' तथा 'ए' के आधार पर उन सात दोहों का पता लगाना संभव नहीं है। 'लघुनामावली' के दोहों की परीक्षा करते समय एक आश्चर्यजनक बात

ज्ञात हुई जिस का उल्लेख कर देना आवश्यक है। 'लघुनामावली' में 'जन्म' का दोहा इस प्रकार दिया है—

भव उद्गम उद्भव जनन जनि उत्पत्ति सब ग्राम ।

जन्म सफल जग जब भलो भजि मनमोहन स्याम ॥

इसी दोहे का थोड़ा परिवर्तित रूप 'ए' में भी है—

भव उद्भव उद्गम जनन जन उत्पत्ति हे भाम ।

जन्म सफल तब ही जब भजिय सुंदर स्याम ॥

लगभग इसी रूप में 'इ' ने भी यह दोहा दिया है—

भव उद्भव उद्गम जनन जन उत्पत्ति हे भाम ।

जन्म सुफल तब ही जबहि भजिए सुंदर स्याम ॥

'जन्म' शब्द के बाद ही 'रस' नाम का यह दोहा 'लघुनामावली' में दिया है—

सारध मधुरंग पुष्परस कुसुमसार मकरंद ।

रस के जाननहार इक भजि लै रे नंदनंद ॥

यह दोहा भी साधारण पाठ-भेद के साथ 'इ' में मिलता है ।

'इ' के पाठ के प्रामाणिक होने के विषय में दो मत हो सकते हैं परंतु उस का लिपि-काल सं० १७२५ न मानने का हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है । इस स्थिति में यही कहना पड़ेगा कि 'लघुनामावली' के रचना-काल के १०६ वर्ष पहले जिन दो दोहों का अस्तित्व मिलता है वे रामहरी कृत नहीं हो सकते । यदि 'इ' से प्राचीन अथवा उस की समसामयिक पोथियों में भी ये दोहे प्राप्त हों तभी यह कहा जा सकेगा कि नंददास कृत इन दोहों को रामहरी ने अपने निजी ग्रंथ में चला दिया होगा अन्यथा यह कल्पना करनी पड़ेगी कि किसी दूसरे की कृति से उन्होंने ने इन्हें ले लिया होगा । जिस व्यक्ति ने नंददास के प्राय सभी दोहों को अपने उल्लेख द्वारा पृथक् रखा उस ने उन के अथवा किसी दूसरे के केवल दो दोहों के संबंध में उस नीति का क्यो अनुसरण नहीं किया यह आश्चर्य का विषय अवश्य है ।

‘आ’ प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर यह संतोष होता है कि उस में कोई विशेष आपत्तिजनक बात नहीं मिलती है। जैसा कहा जा चुका है ‘इ’ के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे उस में नहीं हैं। ‘आ’ के ‘ग्रीव’, ‘भृकुटी’, ‘अंगार’, ‘अर्द्धरात्रि’, ‘राजवल्ली’, तथा ‘विवाह’ शीर्षक जिन छः दोहों को ‘उ’ ने नहीं दिया वे ‘उ’, ‘ऊ’ और ‘ए’ में पाए जाने के अतिरिक्त अप्रकाशित खोज गिण्ट १६२३-२५ में सं० १८१२ की प्रति की नामों की सूची में भी पाए जाते हैं, केवल ‘भृकुटी’ नाम उस में नहीं है। ‘आ’ के २६१ दोहे, ‘लघुनामावली’ के दोहों को बाद देने पर, ‘ए’ के श्लोक २७२ दोहों में समान रूप से पाए जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश प्रस्तुत सामग्री ‘आ’ के विरुद्ध न जा कर उस के पक्ष का समर्थन करती है।

‘मानमंजरी’ के पाठ के संबंध में एक धारणा प्रायः रुढ़ि सी हो चली है और वह यह है कि इस में कवि कृत फुटकर दोहे संगृहीत हैं। कवि के सामने कोई निश्चित क्रम अथवा सिद्धांत न था। इसी भ्रमात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित हो कर गंगादास नामक किसी व्यक्ति ने समस्त दोहों को दस वर्गों में बांट दिया था तथा ‘अ’ में मारे दोहों को अकारादि-क्रम से रख दिया गया है। ‘मानमंजरी’ के प्रस्तुत संस्करण के दोहों का क्रम ‘आ’, ‘उ’ आदि सभी पोथियों से माधारण अंतरो के नाथ मेल खाना है। सच तो यह है कि केवल क्रम की दृष्टि से पोथियों अथवा पहले की छपी प्रतियों में कोई महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं पाए जाते। मंगलाचरण के बाद के दोहे में कवि ने उल्लेख किया है कि हमारे दोहों के अर्थ मानवती राधा पर घटित होते हैं—

गुंथनि नाना नाम की, ‘अमरकोश’ के भाड़।

मानवती के मान पर, मिलें अर्थ सब आड़ ॥

इस के बाद मान-साहाय्य का स्मरण कर ‘सखी’ नाम का दोहा इस प्रकार दिया गया है—

बयसा, सैरिन्धी, सखी, हितू सहचरी आहि ।

अली कुंवर नंदलाल की, चली मनावन ताहि ॥

सखी आतुर कृष्ण की दशा के कारण सरस्वती का आराधन करती हुई शीघ्रतापूर्वक वृषभान के घर पहुँचती है जिस के पास की रौप्य गो-शालाओं, उज्ज्वल अट्टालिकाओं तथा वैभव की वस्तुओं का वर्णन करते हुए कवि इस बात का उल्लेख करता है कि सिद्धांजन लगाए रहने के कारण सखी अलक्षित रूप से घर के भीतर प्रवेश करती है—

कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ ।

लुकअंजन दृग दै चली, ताहि न देखै कोइ ॥

मानिनी राधा के एकातावास में पहुँचने पर कुछ क्षणों तक सखी उस की छवि देखती है और पुनः जल द्वारा आँखों का लोकांजन धो कर प्रकट हो जाती है—

पानी नैन पखारि कै, अंजन हाँती कीय ।

प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय ॥

प्रच्छन्न रूप से पिय की सखी को अपने पास आया देख कर राधा अत्यंत क्रुद्ध हुई—

पीता, गौरी, कांचनी, रजनी, पिंडा नाम ।

हरदी चूनौ परत ज्यों, यौं तिहि दिखि भई भाम ॥

क्रोध के कुछ शांत होने पर सखी उसे मनाने के प्रयत्न में संलग्न होती है और अंततोगत्वा अपने कार्य में सफल हो कर राधा-कृष्ण का मिलन करा देती है—

गो, हृषीक, खं, करन, गुन, इंद्री ज्यों असु पाइ ।

यौं राधा-भाधव मिले, परम प्रेम-रस पाइ ॥

कथा के इस हलके आवरण में दोहों का साधारण उलट फेर संभव माना जा सकता है किंतु 'इंद्री' शीर्षक दोहा अकारादि-क्रम के अनुसार

‘सर्गों’ नाम के पहले रखते जाने से संदर्भ में कैसी गड़बड़ी पैदा कर देता है यह गहज ही में देखा जा सकता है ।

‘मानमंजरी’ के सभी दोहों में दो बातें लक्षित होती हैं । उन के कुछ ग्रंथ में पर्यायवाचियों की सूची दी गई है तथा कुछ में उपर्युक्त कयाक्रम का निर्वाह पाँड़ बहुत रूप में किया गया है । जिन नामों की सूची लंबी थी उन में एक ग्रंथवा दो दोहे अधिक बढ़ा कर संदर्भ संबंधी सामग्री जोड़ दी गई है । ऐसा कोई नाम ग्रंथ में न मिलेगा जिस में केवल एक प्रकार की ही सामग्री हो । इस बात को ध्यान में रख कर ‘आ’ के दोहों को जब हम देखते हैं तो दो नामों के संबंध में कठिनाई उपस्थित होती है । ‘हस्ती’ नाम पर ‘आ’ में यह दोहा है—

हस्ती बंती द्विख ध्रुव पद्मी वारन व्याल ।

कुंजर इभु कुंभी करी तंवेरम सुंडाल ॥

इस दोहे में केवल पर्यायवाची शब्द ही हैं । इस के साथ संदर्भ से संबंधित एक दूसरा दोहा ‘अ’ ने दिया है—

सिंघुर अतगय नाग हरि गज सामज मातंग ।

इत गयंद घूमत खरे रंजित नाना रंग ॥

यह दोहा ‘इ’, ‘उ’ आदि सभी पोथियों में है और जैसा अभी कहा गया है जिस प्रणाली का कवि ने सभी दोहों में अनुसरण किया है उस से मेल भी खाता है ।

‘पाप’ नाम पर भी ‘आ’ में केवल एक दोहा है—

पाप महावन दवन दव जाकौ रंचक नाम ।

तासौ तू कपटी कहै तोहि कहा कहौ भाम ॥

इन दोहों में कया वाला भाग तो मिलता है किंतु पर्यायवाची शब्दों की सूची नहीं मिलती । दूसरी प्रतियों में इस दोहे के पहले इस प्रकार का दोहा उल्लेख है—

ऐन वृजिन दुष्टत दुरित अघ मलीन मसि पंक ।

विलस्य कलमय कलुष पुनि कस्मल समल दालंक ॥

‘हस्ती’ तथा ‘पाप’ नाम के उन दो दोहों को कवि कृत मान लेना उचित जान पड़ता है। ‘भय’ नाम का एक तीसरा दोहा ‘अ’ में न पाए जाने पर भी मूल पाठ में सम्मिलित कर लिया गया है। मंदर्भ की दृष्टि से विगेष आकर्षक होने के अतिरिक्त कुछ प्रतियों ने इसे दिया भी है।

इस प्रकार ‘मानमजरी’ के मूल पाठ में २६४ दोहे रखे गए हैं। परिशिष्ट १ (क) में ‘अ’ के आधार पर इस ग्रंथ के ३४ मंदिग्र दोहे संगृहीत हैं।

‘प्रस्तुत संस्करण के प्रेस जाते समय ‘मानमंजरी’ की सं० १७५५ की एक प्रति की सूचना डा० लक्ष्मीसागर वाण्य से प्राप्त हुई। यह प्रति स्थानीय “म्युनिसिपल म्यूजियम” में सुरक्षित है। इस की साधारण परीक्षा करने से विदित हुआ कि इस में भी ‘इ’ प्रति के ‘सीघ्र’, ‘घर’, ‘कंचन’, तथा ‘समूह’ नाम के परिवर्द्धित रूप वाले दोहे नहीं हैं। ‘इ’ के नए शीर्षकों में ‘अरुन’ तथा ‘लघुभ्राता’ के दोहे इस प्रति में हैं। ‘रस’ नाम का दोहा जिसे रामहरी ने स्वरचित ‘लघुनामावली’ में रखा है वह ‘इ’ की भाँति इस प्रति में भी प्राप्त है यद्यपि यहाँ वह कुछ अशुद्ध रूप में है। प्रति के अंत में ‘माला’ शीर्षक दोहे के बाद “अथ प्रभु के नाम” लिख कर कृष्ण के विभिन्न नामों तथा उन की सहता का वर्णन करने वाली लगभग ३० चौपाइयाँ दी हैं जिन के अंत में नंददास की छाप भी पड़ी है। यह काव्यांश कवि कृत नहीं प्रतीत होता है।

स्थानीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के संग्रह में भी ‘मानमंजरी’ की एक प्रति प्राप्त है जो देखने में अत्यंत प्राचीन और जीर्ण है। पुष्पिका के स्थान पर प्रति खंडित है। ‘इ’ के संबंध में ऊपर जो आपत्तियाँ की गई हैं वे इस प्रति पर नहीं लागू होतीं। प्रस्तुत संस्करण से इस प्रति में कुछ दोहे अधिक अवश्य हैं।

खेद है इन दोनों प्रतियों का समुचित उपयोग इस संस्करण में नहीं किया जा सका।

‘इ’ प्रति ने ४, ५, तथा ६ संख्यक दोहों को छोड़ कर अवशिष्ट सभी दोहे दिए हैं। ‘उ’ ने दोहा १, ७, २७, २८, २९, ३०, ३१, ‘ऊ’ ने दोहा ४, ५, २२, २३ तथा ‘ए’ ने दोहा १, २, ७, १०, ११, १३, १४, १५, १८, २२, २३, ३४ दे कर अवशिष्ट दोहे छोड़ दिए हैं। ३४ संदिग्ध दोहों के अतिरिक्त परिशिष्ट २ (क) में इस ग्रंथ के २२ प्रक्षिप्त दोहे भी संकलित हैं और उन का पाठ भी ‘अ’ के आधार पर ही है। ये दोहे ‘मानमंजरी’ की आधारभूत किमी भी हस्तलिखित प्रति में नहीं मिले फलतः इन के कवि वृत्त होने की संभावना नहीं है।

इस ग्रंथ के कई नाम प्रतियों में पाए जाते हैं—‘मानमंजरी’, ‘नाम-मंजरी’, ‘नाममाला’, ‘नामचिंतामणिमाला’, ‘मानमंजरी नाममाला’। इन में से अंतिम नाम अधिक सार्थक प्रतीत होता है क्योंकि राधा का मान तथा पर्यायवाची शब्दों की माला, ये दोनों ही ग्रंथ के मुख्य वर्ण्य विषय हैं।

## अनेकार्थमंजरी

इस ग्रंथ की चार प्रतियों की परीक्षा की गई है:—

१ अ—यह पोरी सं० १८१८ में कुछ पहले लिखी गई थी। इस में ११७ दोहे हैं।

२ आ—यह प्रति ‘मानमंजरी’ की ‘ए’ प्रति के साथ पाई जाती है अतएव इस का लिपि-काल भी सं० १८२५ के आसपास माना जा सकता है। इस में १७५ दोहे हैं। ‘मानमंजरी’ की ‘ए’ प्रति के समान ही इस के ग्रंथ में भी राम्हरी जीहरी ने यह उल्लेख किया है कि मूल ‘अनेकार्थ’ में १०० दोहे थे। बाक़ी दोहे अपनी रुचि के अनुसार उन्होंने ने स्थान स्थान

<sup>१</sup> दे० ‘विष्णुमंजरी’ की ‘ग’ प्रति का परिचय

<sup>२</sup> दे० ‘रूपमंजरी’ की ‘उ’ प्रति का परिचय



पर बढ़ा दिए हैं । अपनी इस ढिठाई की क्षमायाचना भी उन्होंने ने नंददास से की है—

बीस ऊपरें एक सौ नंददास जू कीन ।  
 और दोहरा रामहरि कीने हैं जु नवीन ॥  
 श्रीमान श्री नंददास जू रसमद आनंद कंद ।  
 रामहरी की ढीठता छमियो हो जगबंद ॥  
 कोष मेदनी आदि औ कछु सब्द अधिकाइ ।  
 मन रुचि लखि विच संधि दिय वाँची जा चित भाइ ॥

इन दोहों को पृथक् कर देने पर इस प्रति में १७२ दोहे रह जाते हैं । रामहरी के अनुसार इन में से १२० दोहे नंददास के तथा अवशिष्ट उन के बनाए हैं ।

३ इ—प्रयाग विश्वविद्यालय की 'यूनिवर्सिटी स्टडीज' में प्रकाशित<sup>१</sup> । इस प्रति में १५८ दोहे हैं जिन में से अंतिम ४ परिशिष्ट रूप में दिए गए हैं । 'मानमंजरी' के दोहों की भाँति इस के दोहों को भी अकारादि-क्रम से रक्खा गया है ।

४ उ—इस पोथी का लिपि-काल सं० १६१६ है<sup>२</sup> । इस में ११५ दोहे हैं । इस के दोहों को 'अ' के दोहों से मिलान करने पर यह विदित होता है कि इस ने 'अ' में पाए जाने वाले 'षं' 'नग' तथा 'हरिनी' शीर्षक तीन दोहे और ग्रंथ-माहात्म्य का एक दोहा छोड़ दिया है किंतु इस में 'वर्ण' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो दोहे 'अ' से अधिक हैं ।

इन चार पोथियों के साथ ही 'इ' की आवारभूत आठ हस्तलिखित प्रतियों के पाठों पर भी विचार किया गया है । इन में से 'क' को "मालेवार" देश के किसी वासुदेव वाजपेयी ने सं० १८६४ में लिखा था । 'ख' को कालका

<sup>१</sup> दे० 'मानमंजरी' की 'अ' प्रति का परिचय

<sup>२</sup> दे० 'मानमंजरी' की 'उ' प्रति का परिचय

दान नामक व्यक्ति ने सं० १६०३ में फ़ारसी अक्षरों में लिखा था, 'ग' का लिपि-नाम अज्ञान है, 'घ' सं० १८७७ में लिखी गई, 'ट' "अत्यंत भ्रष्ट" नागरी लिपि में लिखा है, 'च' सं० १६२३ की लिखी हुई है तथा 'छ' टीकम-गढ़ के लाला जानकीदास द्वारा सं० १६२१ में लिखी गई थी<sup>१</sup>। अंतिम प्रति 'ज' 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति के साथ पाई जाती है<sup>२</sup> और इस के अंतिम दोहे की मध्या ११७ है। इस प्रति ने 'अ' के 'अर्जुन' तथा 'रसना' शीर्षक दो दोहे छोट दिए हैं और 'वर्ग' तथा 'निशा अजा' शीर्षक दो अन्य दोहे दिए हैं।

'मानमंजरी नाममाला' की चार मुद्रित प्रतियों के परिचय के साथ ही 'अनेकार्थ' के भी मंस्करणों का उल्लेख किया जा चुका है। इन में से अधिकांश प्रतियों ने १००वें दोहे के लगभग छाप वाला दोहा दे कर अवशिष्ट दोहे बाद में दिए हैं जिन में यह सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि बाद के दोहे कवि कृत नहीं हैं। इन प्रतियों को प्राचीन हस्तलिखित पौधियों ने मिलाने पर यह भी ज्ञात होता है कि इन में छाप वाले दोहे के पहले भी प्रक्षिप्त दोहे हैं। 'पांचे मजुरीयो' की 'अनेकार्थ' की प्रति में केवल ११६ दोहे ही हैं किन्तु उन के कुछ दोहे मान्य पौधियों में नहीं हैं।

सभा की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रिपोर्टों में 'अनेकार्थ' की अनेक प्रतियों के विवरण मिलते हैं। प्राचीनता की दृष्टि से तीन प्रतियों का उल्लेख किया जा सकता है। अप्रकाशित खो० रि० मन् १६२६-२८ में सं० १८२७ तथा सं० १७७६ की दो प्रतियों का परिचय पाया जाता है। पहली प्रति के आदि-पद के उद्धरणों के साथ ही ग्रंथ के विभिन्न शीर्षकों की एक सूची भी अन्वेषक ने दी है। दूसरी प्रति 'अनेकार्थ' की ज्ञात प्राचीनतम प्रति है और खानीपुर, बकशी का तालाब, लखनऊ, के ठा० रणधीर

<sup>१</sup> दे० 'एनाहादा यूनिवर्सिटी स्टडीज', सन् १९३६, "अनेकार्थमंजरी तथा नाममाला" की भूमिका, पृ० (ज)।

<sup>२</sup> दे० 'मानमंजरी' की 'छ' प्रति का परिचय

सिंह के पास उस का विद्यमान होना बतलाया गया है । किंतु ठा० रणवीर ने अपने पत्रोत्तर में लेखक को यह लिखा है कि उन के पास कोई प्रति नहीं है । रिपोर्ट में दिए हुए उद्धरणों से ज्ञात हुआ कि उस के अंतिम दोहे की संख्या ११६ है । वह दोहा इस प्रकार है—

भक्त नाम हरि को जपे निसु दिन और न ध्यान ।

जाको पद भगवान को मिलि हितु का दिधि मान ॥

यह दोहा अन्य किसी प्रति में नहीं है । इस के पहले ग्रंथ-माहात्म्य तथा छाप का दोहा है । अवतरणों के अवशिष्ट दोहे अन्य प्रतियों से मेल खाते हैं । यदि इस दोहे को छोड़ दिया जाय तो इस प्रति में ११८ दोहे रह जाते हैं । सन् १६२६-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में सं० १८१४ की एक प्रति का निर्देश है । इस में अंतिम दोहे की संख्या ११६ है । आदि अंत के अवतरण 'अ', 'आ' तथा 'उ' के दोहों के समान ही है ।

'अनेकार्थ' की एक अन्य प्रति काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी श्री महावीर सिंह गहलौत द्वारा लेखक को प्राप्त हुई है । इस प्रति के पहले के तीन पत्र खंडित हैं । अंतिम दोहे की संख्या ११६ है जो अशुद्ध है । इसे ११८ होना चाहिए । आधुनिक होते हुए भी इस प्रति में क्षेपक नहीं है । इस के पृष्ठों पर सुंदर सुनहलेदार चौकोर हाशियों के भीतर दोहे लिखे गए हैं । यह प्रति श्री महावीर सिंह के पितृव्य प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जगदीश सिंह गहलौत के संग्रह की है ।

'अनेकार्थ' में नंददास कृत कितने दोहे थे इस विषय पर 'आ' प्रति के परिचय में रामहरी के तीन दोहे ऊपर उद्धृत किए जा चुके हैं और हम ने देखा है कि उस के १७२ दोहों में से १२० नंददास के तथा अवशिष्ट रामहरी के हैं । 'अनेकार्थ' की शैली पर सं० १८३४ में लिखे गए रामहरी के निजी ग्रंथ 'लघुशब्दावली' का उल्लेख किया जा चुका है । इस ग्रंथ में १०२ दोहे हैं । इन १०२ दोहों को 'आ' के १७२ दोहों से मिलाने पर ज्ञात होता है कि 'लघुशब्दावली' के ५२ दोहे 'आ' में मिला कर रखे गए

है। 'आ' में इन ५२ दोहों को निकाल देने पर उस में १२० दोहे बच जाते हैं और इन प्रकार रामहरी का कथन बिलकुल ठीक उत्तरता है।

'आ' के अवशिष्ट १२० दोहों में 'वरन', 'निसा अजा' तथा 'सिंह' शीर्षक तीन दोहे ही ऐसे हैं जो सं० १८१८ की लिखी 'अ' प्रति में नहीं हैं, शेष ११७ दोहे साधारण पाठांतरों के साथ एक से ही हैं। सं० १८२७ की लिखी प्रति में पाए जाने वाले विभिन्न शीर्षकों की सूची सभा के अन्वेषक ने दी है जैसा कि पहले लिखा जा चुका है। इस सूची में 'वरन' तथा 'निसा अजा' शीर्षक दिए हुए हैं, केवल 'सिंह' शीर्षक नहीं पाया जाता है। 'उ' में भी 'सिंह' को छोड़ कर शेष दोनों नाम पाए जाते हैं। इस प्रकार 'आ' के १२० दोहों में निम्नलिखित दोहे को छोड़ कर शेष ११६ दोहे नन्द-दाम कृत माने जा सकते हैं—

सिंह सूर बर रास इक बहुरि सिंघ कों सिंघ ।

मिघ पीरि में दैत्य हत सिंह नाद नरसिंह ॥

'मानमंजरी' के समान 'अनेकार्यमंजरी' में किसी प्रकार की कथा का निर्वाह नहीं है। यह अवश्य है कि अनेकार्थी शब्दों को देते हुए कवि ने भगवद्भजन की नीति का बराबर पालन किया है—

गो इंद्री, दिव्य, वाक्, जल, स्वर्ग, यज्ञ, खग, छंद ।

गो घर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद ॥

विभिन्न नामों के दोहों के क्रम में कोई विशेष सिद्धांत न होते हुए भी 'अ', 'आ' तथा अन्य प्रतियों में दोहों की परंपरा लगभग मिलती जुलती है। प्रस्तुत संस्करण में इस क्रम से कोई भिन्नता नहीं है।

परिशिष्ट २ (ख) में 'अनेकार्यमंजरी' के ३८ प्रक्षिप्त दोहे 'ड' प्रति के आधार पर उद्धृत किए गए हैं। ये दोहे प्रस्तुत अध्ययन की किसी

'परिशिष्ट २ (ख), पृ० ४६४ पर भूल से इन्हें " 'अ' प्रति से उद्धृत" कहा गया है।

भी हस्तलिखित प्रति मे नहीं है ।

## स्यामसगाई

इस ग्रंथ की ग्यारह प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिन मे 'ग' से 'झ' तक की सात प्रतियाँ डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई हैं—

१ अ—दिसंबर सन् १९३१ के 'विशाल भारत' से प्राप्त । संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हे स्व० रत्नाकर जी से प्राप्त हुई थी ।

२ क—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी, मे सुरक्षित । पुस्तक-संख्या ६ । इस पोथी का लिपि-काल सं० १८७१ है ।

३ ख—इस 'प्रति' का पाठ 'अ' से मिलता-जुलता है ।

४ ग—जि० सं० ७००/१४ 'ए' । लिपि-काल सं० १८८८ है । प्रति खंडित है ।

५ घ—जि० सं० ७००/१४ 'वी' । इस प्रति का लिपि-काल सं० १८८८ के लगभग है ।

६ ङ—जि० सं० १७९/२१ । लिपि-काल सं० १८९० है । प्रति खंडित है ।

७ च—जि० सं० ६३/१३ । इस प्रति के छंदों के प्रारंभ में लिपिकार ने "तौ जी" तथा कही कही "अरी" भी जोड़ दिया है जिस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रंथ के छंदों को साधारण ग्रामगीतों के रूप मे, कदाचित् विवाहादि अवसरों पर, गाया जाता था ।

८ छ—जि० सं० २८/१४ । यह प्रति किसी परमसुख मिश्र द्वारा सं० १९१० मे लिखी गई थी ।

९ ज—जि० सं० ७६४/१४ 'ए' । 'च' तथा 'छ' प्रतियों के समान इस का अंतिम छंद दोहा-रोला मे न हो कर चौपई छंद मे है । इस मे एक उल्लेख-

नीय बात यह है कि छाप के स्थान पर नंददास का नाम न हो कर किसी 'सारपान' का नाम दिया है। यह छाप उस ग्रंथ में कैसे आ गई इस विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

१० भ.—जि० सं० ७६४/१४ 'वी'। यह प्रति खंडित है।

११ व.—बंघ-नग्या २४, पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेण पुस्तकालय, काल्नी, से प्राप्त। इस प्रति का लिपि-काल सं० १६१७ है।

नग्या में अधिक होते हुए भी पाठ के विचार से उपर्युक्त कोई भी प्रति विशेष मान्य नहीं है। खो० रि० सन् १६०६-०८, संख्या २०० (ई) तथा खो० रि० १६१७-१८, संख्या ११६ (मी) पर क्रमशः विजावर राज्य पुस्तकालय तथा श्री देवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय, कामवन, के नाम से इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं। "स्याम-सगई श्रीर रुकमिनी-मगल" के नाम से अग्रवाल प्रेस, प्रयाग, द्वारा सं० १६६० में प्रकाशित ग्रंथ में 'स्यामसगई' प्रथम बार पुस्तकाकार रूप में मुद्रित हुई थी।

## भैवरगीत

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियों की परीक्षा की गई है। 'क' से 'भ' तक की नौ प्रतियाँ तथा 'ड' प्रति डा० भवानीचंकर याज्ञिक से प्राप्त हुई है—

१ क.—जि० सं० १६६/५६। इस प्रति में 'जनमुकुद' की छाप है।

२ ख.—जि० सं० ७००/१४। यह प्रति सं० १८८८ की है। लिपि-कार की अनावधानी के कारण अंतिम छंद में छाप वाली पंक्ति लिखने से रह गई है किंतु पृष्ठीका में इसे 'जनमुकुद' विरचित कहा गया है।

३ ग.—जि० सं० ६८/१३। इस प्रति में कुछ छंदों का क्रम मुद्रित प्रतियों में थोड़ा भिन्न है परंतु उस से ग्रंथ के स्वरूप में कोई उल्लेखयोग्य परिवर्तन नहीं होता है।

४ घ.—जि० सं० ८८/१४। इस प्रति में 'भैवरगीत' के प्रचलित पाठों से कुछ भिन्नता है किंतु प्रति अशुद्ध है।

५ ड—जि० सं० १६७/५६। उस प्रति में निधि इस प्रकार दी है—  
“श्रावण कृष्ण. ५ वार. रविवार संवत् १८०६.”—उस से यह निश्चित नहीं  
हो पाता कि लिपि-कार का अभिप्राय सं० १८०६ से है प्रथवा १८६० से।  
'वार' शब्द के बाद दिए हुए निरर्थक बिंदु को ध्यान में रखते हुए कदाचित्  
इसे १८०६ पढ़ना ठीक होगा। इस प्रति में 'जनमुकुंद' की छाप है।

६ च—जि० सं० १६५/५६। इस प्रति का पाठ अगुद्ध है।

७ छ—जि० सं० ३३५/५६। इस प्रति का लिपि-काल सं० १८५७  
है। यह आदि से खंडित और अगुद्ध है। इस में 'जनमुकुंद' की छाप है।

८ ज—जि० सं० ८००/५६। यह प्रति प्राचीन जान पड़ती है।

९ झ—जि० सं० ५५६/५६। यह प्रति अंत में खंडित है।

१० ट—काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय में सुरक्षित।

११ ठ—श्री विश्वंभरनाथ मेहरोत्रा द्वारा संपादित तथा प्रयाग के  
लाला रामनारायणलाल द्वारा प्रकाशित (सन् १९३२)।

१२ ड—जि० सं० १८४/३३। इस प्रति में केवल ४६ छंद है।  
यह अंत से खंडित है।

१३-१४ ढ, ण—भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक  
संख्या '१७७ क' तथा '१८५ क'। इन दोनों प्रतियों में 'जनमुकुंद'  
की छाप है। ग्रंथ के कुछ उलझन वाले स्थलों पर ही इन के पाठ का  
मिलान किया गया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट सन् १९२०-२२, संख्या ११३  
(एफ) पर 'भैरवगीत' की एक आधुनिक पोथी की सूचना दी है जिस में  
'जनमुकुंद' की छाप है। सन् १९२६-३१ तथा सन् १९३८-४० की अ-  
प्रकाशित रिपोर्टों में लाला सूरजपति, पो० कचौरा, जिला आगरा तथा  
प० विद्याराम शर्मा, पो० परतापनेर, जिला इटावा, के पते से इस ग्रंथ की

ये अन्य प्रतियों की सूचना प्राप्त होती है। सभा की रिपोर्ट के उद्धरण के अनुसार पहली प्रति 'भैरगीत' की मुद्रित प्रतियों से भिन्न जात होती है। कबीर पाठ जाने पर लाला सूरजपति का कोई पता न चल सका।

'भैरगीत' की बहुत सी प्रतियों में 'जनमुकुंद' की छाप भी मिलती है। प्राप्त सामग्री में उस बात का निराकरण नहीं होता कि यह नंददास का ही उपनाम था। 'मिश्रबंधुविनोद' में 'जनमुकुंद' के नाम से 'ध्रुवगीता' नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख हुआ है<sup>१</sup>।

## रुक्मिणी मंगल

उन ग्रंथ की चार प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० १८०/५६। डा० भवानीशंकर याज्ञिक से प्राप्त। इस प्रति में १३१ रोले हैं। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ग—'विशाल भारत', जनवरी, १९२६ में प्रकाशित। संपादक के अनुसार यह प्रति उन्हें स्व० रत्नाकर जी ने प्राप्त हुई थी और इस के लिपि-कार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी हैं। इस में भी १३१ रोले हैं।

३ ग—इस प्रति का लिपि-काल स० १८३५ के लगभग माना जा सकता है<sup>२</sup>। इस में 'रुक्मिणी मंगल' के प्रस्तुत संस्करण के दो प्रारंभिक रोलों तथा रोला ५० व १२६ नहीं हैं।

४ घ—बंध-संख्या ८. पुस्तक-संख्या १। श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकराजी, से प्राप्त। यह प्रति स० १८६१ की है। इस के बीच के कुछ पन्ने गंडित हैं जिस से इस की छंद-संख्या नहीं जात होती है। इस प्रति के साधारणतया अगुन्ह होने पर भी कुछ स्थलों पर इस से विशेष सहायता मिली है।

<sup>१</sup> दे० द्वितीय संस्करण, भाग २, पृ० ४२१

<sup>२</sup> दे० 'रूपमंजरी' की 'ट' प्रति का परिचय



खो० रि० सन् १६१२-१४, संख्या १२० में एक प्रति की सूचना मिलती है। अप्रकाशित खो० रि० सन् १६२६-३१ में भी होलीपुरा, जिला आगरा, के किन्ही श्री विशेश्वरदयाल के नाम से एक प्रति उल्लिखित है जो कैथी लिपि में लिखी है।

इस ग्रंथ के एक प्रकाशित संस्करण का निर्देश किया जा चुका है<sup>१</sup>।

## रासपंचाध्यायी

इस ग्रंथ की चौदह प्रतियों का उपयोग हुआ है। निम्नलिखित प्रथम छः प्रतियाँ ('क' से 'च' तक) डाक्टर भवानीशंकर याज्ञिक द्वारा प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ५७/५६। इस प्रति में लिपि-काल नहीं दिया है किंतु प्रति विशेष प्राचीन जान पड़ती है। अंतिम रोले की संख्या २१० है जो अशुद्ध है। इसे २१२ होना चाहिए। इस प्रति में प्रयुक्त भाषा के रूपों से यह अनुमान होता है कि इस का लिपि-कार कोई ब्रज-भाषी व्यक्ति ही रहा होगा।

२ ख—जि० सं० १०१/५६। इस प्रति में कई स्थलों पर रोलाग्रों की संख्या देने में भूल हो गई है। इस के अंतिम रोले की संख्या २६६ होनी चाहिए। यह प्रति असावधानी से किसी साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है फलतः इस में अशुद्धियाँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। पुष्पिका में सवत् आदि की सूचना नहीं है।

३ ग—जि० सं० १६६/५६। इस प्रति के छंदों के अंत में संख्याएँ नहीं दी हैं। इस में ३०० रोले हैं। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'ख' के निकट पड़ती है। इस का लिपि-काल अज्ञात है।

४ घ—जि० सं० १७०/५६। अनुमान से यह प्रति भी 'क' के समान

---

<sup>१</sup> दे० 'स्यामसगई' की प्रतियों का परिचय

दो प्राचीन ज्ञान होती है। दोहा-संख्या की अशुद्धियों को ठीक करने पर प्रतिम रोले की संख्या २६६ ठहरती है। पंचम अध्याय में रोला २३३ के बाद लगभग अध्याय के अन्त तक के छंदों के क्रम में इस प्रति ने बहुत उलट-फेर कर दिया है। इन परिवर्तन का कारण स्पष्ट नहीं है।

५. ट—जि० नं० १७२/५६। इस प्रति की पुष्पिका एक छण्य मे दी हुई है। यह प्रति भग्नपुर के राजा बलमत्त सिंह (बलवत् सिंह?) के समय में 'दीर्घ' (डीग) नगर में नं० १८६७ में लिखी गई। लिपि-कार कोई कवि है जिस का उपनाम 'गम' है। इस में ३४७ रोले हैं। अन्य किसी प्रति में इतने अधिक छंद नहीं हैं। 'घ' की भाँति इस में भी पाँचवें अध्याय के रोलों के क्रम में उलट-फेर मिलता है किंतु 'ङ' में दिया हुआ क्रम 'घ' के क्रम से अधिक साम्य नहीं रखता है।

६. च—जि० स० १७३/५६। यह पोथी आदि तथा अंत से खंडित है। पाठ जी दृष्टि में यह 'क' से बहुत मिलती-जुलती है।

७. छ—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित<sup>१</sup>। इस प्रति में ३३६ रोले हैं। 'ड' की भाँति इस की छंद-संख्या भी अधिक है परंतु इस के कुछ छंद 'ड' में पाए जाने वाले छंदों से भिन्न हैं।

८. ज—यह प्रति म्द० बाबू बालमुकुंद गुप्त द्वारा संपादित तथा बलवत्त के भारतमित्र प्रेस द्वारा सन् १९०४ ई० में मुद्रित हुई। भूमिका में गुप्त जी ने इस ज्ञान का निर्देश किया है कि उन्होंने ने मथुरा की सं० १९४५ की लीधो की छपी एक प्रति तथा सं० १८६४ की छपी एक दूसरी प्रति की सहायता में इस प्रति का संपादन किया था। इस में ३०६ छंद हैं—३२२ रोले तथा ४ दोहे। 'गसपंचाध्यायी' के कुछ आधुनिक संस्करण इस प्रति के पाठ से बहुत प्रभावित हुए हैं।

९. झ—सार्धभाषा पुस्तकालय, काशी, में सुरक्षित। पुस्तक-संख्या

<sup>१</sup> वे० 'रूपमंजरी' की 'ख' प्रति का परिचय

६। इस प्रति में केवल २११ रोले हैं और इस का लिपि-काल सं० १८७१ के लगभग है। पाठ की दृष्टि से यह प्रति 'क' से साम्य रखती है।

१० ग—पं० उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, साहित्यरत्न, के संपादकत्व में लक्ष्मी-आर्ट-प्रेस, दारागञ्ज, प्रयाग, द्वारा सन् १९३६ में प्रकाशित। प्रकाशक के अनुसार 'पंचाध्यायी' का संपादन पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा हुआ है। इस प्रति में ३१३ रोले हैं। इस की पाद-टिप्पणियों में लगभग एक दर्जन प्रतियों के नामों से पाठांतर दिए हैं किंतु प्रतियों के विवरण नहीं दिए गए हैं।

११ ट—भरतपुर राज्य पुस्तकालय में सुरक्षित। पुस्तक-संख्या '१३७ क' है। इस प्रति के तीन पत्र खंडित हैं। यह सं० १८४५ की लिखी हुई है और इस के अंतिम रोले की संख्या २११ है। इस का पाठ 'क' प्रति से अधिक सादृश्य रखता है अतएव इस प्रति के कुछ चुने हुए स्थलों की ही परीक्षा की गई है।

१२ ठ—जिस जिल्द में यह प्रति पाई जाती है उस में इस प्रति के बाद ही 'फूलमंजरी' नामक ग्रंथ लिखा है जिस का लिपि-काल सं० १७९३ है<sup>१</sup>। इस से यह अनुमान किया जा सकता है कि इस का लिपि-काल भी सं० १७९३ के आसपास ही होगा। इस में २०९ रोले हैं जो प्रायः 'क' तथा 'भ' के रोलों से मेल खाते हैं।

१३ ड—यह प्रति बाबू मुरारीलाल केडिया, नंदनसाहु का मुहल्ला, काशी, के 'श्री रामरत्न पुस्तकभवन' में सुरक्षित नंददास कृत 'दशम स्कंध' के साथ पाई जाती है<sup>२</sup>। 'दशम स्कंध' के २८ अध्यायों के बाद लिपि-कार ने 'रासपंचाध्यायी' लिखना प्रारंभ किया है और प्रथम अध्याय की समाप्ति

<sup>१</sup> दे० 'रूपमंजरी' की 'ड' प्रति का परिचय

<sup>२</sup> लेखक को इस प्रति की सूचना ना० प्र० सं०, काशी, के अन्वेषक श्री महेशचंद्र गर्ग, एम० ए० द्वारा प्राप्त हुई है।

इस प्रकार सूचित की है—“इति श्री दशम स्कंध भाषा नंददास कृता एकोनविंशोऽध्यायः” । उसी प्रकार द्वितीय तथा तृतीय आदि अध्यायों की समाप्ति ‘विज’ तथा ‘एकविंश’ आदि अध्यायों के नाम से की है । इन ग्रंथ की समाप्ति सं० १७५७ में हुई जैसा कि इस की पुष्पिका से विदित है—‘संवत् १७५७ वर्षे मार्गशीर्षे सुदि १ अर्न्ती दिने नाथू पंड्या मुन भगवानेन पुस्तकमिदं गोविंददानजीनां निम्नितं पूर्णमियात् ॥” इस प्रति का पत्र १५८ नंडित है । इस में अंतिम रोले की संख्या २१५ दी हुई है । यदि मंडित पत्र में १२ रोले लिखे मान लिए जायें तो २१५ की गणना-संख्या ठीक उतरती है । प्राप्त प्रतियों में ‘रासपंचाध्यायी’ की यह प्राचीनतम प्रति है किन्तु अशुद्ध होने के कारण इस के पाठों में विशेष सहायता नहीं ली जा सकी है ।

१४ ट—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कोकरीली, से प्राप्त । वंश-संख्या ४६ तथा पुस्तक-संख्या ३ । ‘ड’ प्रति की भांति यह प्रति भी ‘दशम स्कंध’ के साथ पाई जानी है किन्तु अंत के पृष्ठों के खंडित होने के कारण ‘रासपंचाध्यायी’ के प्रथम अध्याय के केवल ६८ रोले ही प्राप्त हैं ।

नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित रिपोर्टों में इस ग्रंथ की तीन प्रतियों के विवरण दिए हैं—(१) खो० रि० सन् १६०१, संख्या ६६ में सं० १८४८ की लिखी प्रति, (२) खो० रि० सन् १६०६-०८, संख्या २०० (ए) पर दी हुई प्रति जिस का लिपि-काल अज्ञात है तथा (३) खो० रि० सन् १६१७-१६, संख्या ११६ (बी) पर दी हुई सं० १७६४ की लिखी प्रति । सन् १६२६-३१ की अप्रकाशित रिपोर्ट में सं० १८६८ तथा सं० १८८२ की दो प्रतियों की सूचनाएँ क्रमशः प० देवीगम, ग्राम बियौली, पो० नैरागढ़, जिला आगरा, तथा ठा० तिलकसिंह, ग्राम नर्नोहपुर, पो० कोटाला, जिला आगरा, के पते से दी हुई हैं । इन में से कोई प्रति भी प्राप्त न हो सकी ।

राष्ट्रियता पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा भेजी हुई ‘रासपंचाध्यायी’ की एक

प्रति उस समय प्राप्त हुई जब कि 'पंचाध्यायी' का प्रस्तुत संस्करण छप रहा था। इस प्रति की जिल्द में नंददास की 'अध्यात्मपंचाध्यायी' तथा कुछ अन्य कवियों के ग्रंथ भी हैं। 'पंचाध्यायी' की प्रति में २०८ रोले हैं और इस का पाठ प्रायः 'क' प्रति से मिलता हुआ है। यह विक्रम की २०वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की लिखी हुई है।

छंद-संख्या की दृष्टि से 'रासपंचाध्यायी' की उक्त प्रतियों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। 'क', 'च', 'भ', 'ट', 'ठ' तथा 'ड' प्रतियों का एक वर्ग बनाया जा सकता है जिस में 'ठ' की छंद-संख्या २०६ कम से कम है तथा 'ड' की संख्या २१५ अधिक से अधिक है। 'त्व', 'ग' तथा 'घ' की छंद-संख्या ३०० के आसपास की है अतएव उन का एक पृथक् वर्ग बनाना उचित होगा। इसी प्रकार 'ड', 'छ', 'ज' तथा 'झ' प्रतियों का एक तीसरा वर्ग भी हो सकता है जिस में 'झ' की छंद-संख्या ३१३ कम से कम तथा 'ड' की संख्या ३४७ अधिक से अधिक है। प्रत्येक वर्ग की केवल अधिकतम संख्या की तुलना करने पर पहले तथा दूसरे वर्ग में ८५ छंदों का, दूसरे तथा तीसरे में ४७ का और पहले व तीसरे में १३२ का अंतर ज्ञात होता है। कवि की कृति की यह अनेकरूपता ही इस बात की द्योतक है कि वह अपने मूल रूप में नहीं है। प्राचीन प्रतियों पहले वर्ग में है तथा संख्या में भी अधिक है। अतः इस धारणा को बल भी मिलता है। सैकड़ों वर्षों तक प्रतिलिपि-क्रिया होते रहने से असावधान लिपि-कारों की प्रतियों में कुछ छंदों के भूल से छूट जाने की कल्पना युक्तियुक्त है, किंतु लगभग ३५० छंदों के ग्रंथ में १३२ छंदों के छूट जाने का अनुमान लगाना विलम्ब कल्पना करना ही कहा जायगा।

उपर्युक्त वर्गों में तृतीय वर्ग का पक्ष सब से निर्बल है। दिए हुए विवरण से विदित होता है कि इस वर्ग की तीन प्रतियाँ—'छ', 'ज', 'झ', आधुनिक समय के संपादित संस्करण हैं। 'छ' तथा 'झ' के आधार के संबंध में हमें कुछ भी ज्ञात नहीं है। 'ज' प्रति सं० १८६४ तथा सं० १९४५

की दो प्रतियों पर प्रदर्शित हैं। 'ड' सं० १=६७ की एक हस्तलिखित प्रति है। अतएव प्राचीनता के विचार से कोई प्रति महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन वर्ग की प्रतियों का पाठ भी संतोषजनक नहीं है। जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण में ज्ञात होगा वहीं-वहीं इन के छंद संदर्भ के विचार से विशेष आपत्तिजनक प्रतीत होते हैं।

कृष्ण के अनर्ध्यानि होने के बाद 'पंचाध्यायी' के चतुर्थ अध्याय में पुनः प्रकट होने पर गोपियां मन में मुसकानी हुई कृष्ण से यह प्रश्न पूछती हैं—कृष्ण व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपनी सेवा करने वाले का ध्यान रखते हैं, हमारे अपनी सेवा अथवा अपने में स्नेह न करने वाले का भी ध्यान रखते हैं किंतु हे कृष्ण ! उन व्यक्तियों को हम किस नाम से पुकारें जो अपनी सेवा करने वाले तथा न करने वाले दोनों ही प्रकार के मनुष्यों की उपेक्षा करते हैं<sup>१</sup>। इस प्रश्न के उत्तर में 'ज' प्रति ने 'पंचाध्यायी' की पंक्ति ४३६ के बाद तीन छंद दिए हैं जो स्पष्ट ही 'भागवत' के अनुकरण पर हैं। तीसरे वर्ग की 'ग' प्रति ने भी इन्हें दिया है। वे छंद इस प्रकार हैं—

जो भजते को भजै आपने स्वार्थ के हित ।

जैसे पत्तू परस्पर चाटत सुख मानत चित ॥

जो अनभजते भजें वहै धर्मी सुखकारी ।

जैसे मात पिता जु करे सुत की रखवारी ॥

जो दोइन को तजै तिन्हें ज्ञानी जानों तिय ।

आप्त-क्लाम अथवा गुरु द्रोही श्रुतज हिय ॥

'भागवत' में इस उत्तर के साथ दो और श्लोक जुड़े हुए हैं—

"किंतु हे सरियो मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारों में नहीं हूँ, वरन् महादण्डु और परम सुहृद् हूँ। मैं उनको नहीं भजता इसलिए वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते

<sup>१</sup> 'रामपंचाध्यायी', पंक्ति ४३३-३४

लाल रसाल के व्यंग वचन सुनि थकित भई यों ।

बाल-भृगिनि की पाँति, सघन वन भूलि परी ज्यों ॥

मंद परस्पर हसी, लसीं तिरछी अँखियन अस ।

रूप-उदधि इतराति, रँगौली मीन-पाँति जस ॥

उपर्युक्त छंद छंदों में दूसरा, तीसरा तथा चौथा छंद प्रधानतया 'ख' प्रति के आधार पर मूल पाठ में रक्खा गया है । इन तीन छंदों के पूर्वपर का संबंध बहुत समीचीन नहीं है । तीसरे छंद का विचार न तो दूसरे से संबद्ध है और न चौथे से । उस में यह कहा गया है कि सर्व-गुण-संपन्न तथा स्वरूपवान नायक के समस्त गुण व्यर्थ हो जाते हैं यदि उस में वचन-वक्रता तथा कुटिल कटाक्ष फेकने की किंचित क्षमता भी नहीं है । यह कथन प्रथम छंद की व्याख्या-स्वरूप है क्योंकि उसी छंद की दूसरी पंक्ति में व्यंग्य-कथन तथा वक्रिम दृष्टि की महत्ता का निर्देश है । पाँचवें छंद में कृष्ण के व्यंग्य वचनों का उल्लेख है और इस छंद का संबंध भी प्रथम छंद से ही है क्योंकि कृष्ण के व्यंग्य-वचन उसी छंद में हैं । इस के अतिरिक्त छठे छंद के "मंद परस्पर हसी" शब्द भी ध्यान देने योग्य हैं । कृष्ण के व्यंग्य वचनों को सुन कर पहले तो गोपियाँ कुछ काल तक मार्ग भूली हुई हरिणियों के समान हतबुद्धि हो कर खड़ी रह जाती हैं किंतु पुनः एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं । इस मंद मुसकान का क्या कारण हो सकता है ? प्रथम छंद में कृष्ण कहते हैं कि उत्कृष्ट प्रेम का यह लक्षण है कि वह कुछ कुटिलता होने से ही शोभित होता है । इस कथन द्वारा वे यह प्रेमपूर्ण उपहास ध्वनित करते हैं कि रात्रि में लोक-लाज का सर्वथा परित्याग कर के आई हुई गोपियाँ अत्यंत कुटिल हैं । कदाचित् इस व्यंग्य को समझने पर ही गोपियाँ एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराने लगती हैं । दूसरे छंद में यह कहा गया है कि भोली गोपियाँ कृष्ण के अभिप्राय को नहीं समझ सकी जो बहुत संगत नहीं ज्ञात होता क्योंकि यदि गोपियों ने कृष्ण का अभिप्राय समझा ही न था तो वे किस बात को लक्ष्य

कर एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराई ।

द्वितीय वर्ग की 'ग' प्रति ने ऊपर उद्धृत तीसरे व चौथे छंद को नहीं दिया है । 'घ' ने चौथे को छोड़ दिया है । प्रथम वर्ग की किसी भी प्रति में ये तीन छंद नहीं हैं । तृतीय वर्ग की अधिकांश प्रतियाँ ही इस विषय में 'ख' का गाय देती हैं । इन बातों से भी उपर्युक्त तीनों रोलों की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय प्रतीत होती है ।

उस वर्ग की प्रतियों के छंद अन्य प्रकार की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करते हैं और उन के मध्य में हमारे निष्कर्ष अधिक दृढ़ हो सकते हैं जैसा कि 'घ' प्रति के इन दो रोलों में देखा जाता है—

मोहन पिय की मल्हकनि डलकनि मोर मुकट की ।  
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥  
बदन कमल चित चोर ओर यों राजति अलकनि ।  
सदा बसौ मन मेरे मंजुल मोर की डलकनि ॥

इन छंदों में से संभवतः एक ही छंद कवि विरचित होगा । प्राचीन प्रतियों में प्राप्त एक रोल के परिवर्द्धित रूप भी इस वर्ग की प्रतियों में मिलना है । 'क' प्रति का एक छंद इस प्रकार है—

तब आरंभित रास उदित उहि कमल चक्र पर ।  
नमित न कबहूँ होत सब नितंत विचित्र वर ॥

'घ' में इस के न्याय पर दो छंद हैं—

तब ही यह सुरतर तर पिय सुंदर गिरिवर घर ।  
आरंभत अद्भुत नु रास उहि कमल छत्र पर ॥  
एक काल राज बाल लाल सब चढ़े जोरि कर ।  
नमित न कितहूँ होय सब नितंत विचित्र वर ॥

जैसा कि 'गानमंजरी नाममाला' की प्रतियों की परीक्षा करते हुए कहा जा चुका है ऐसे छंदों की प्रामाणिकता अत्यंत संदिग्ध है ।



छंदों के प्रतिरिक्त अन्य प्रतियों के शीर्षकों में दिए हुए छंदों को भी प्रतियों ने दिया है। नीचे दी हुई सूची से इस बात का परिचय मिल सकेगा—

प्रति छंद-संख्या

ग—७६, ८१, ८२, ८३

घ—१, ५८, ७६

ङ—५, ७ से १२ तक, ६८, ७३, ७५, ७६

छ—१, ५, ७, ८, ११, १७, ३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ७६, ७८, ८१ से ८३ तक,

ज—३५, ३६, ३८ से ४१ तक, ५०, ५१, ६७, ६८ से ७३ तक

झ—३८ से ४१ तक, ६७, ७०, ७१

परिगणित में दिए छंदों के ऊपर ही यह भी सूचित किया गया है कि वे 'पंचाध्यायी' के प्रस्तुत संस्करण की किस पंक्ति के बाद मिलते हैं। उन के क्रम आदि में भी कहीं कहीं उलट-फेर है और ऐसे स्थलों पर यह कह देने से पूर्ण संदर्भ का बोध नहीं होता कि अमुक छंद अमुक पंक्ति के बाद है किंतु विस्तार-भय से इन बातों का निर्देश नहीं किया जा सका है।

'रासपंचाध्यायी' की प्रतियों में 'सिद्धांत पंचाध्यायी' के भी कतिपय छंद मिश्रित मिले हैं। 'रासपंचाध्यायी' की 'ठ' प्रति ही ऐसी है जिस का लिपिकार इन दो कृतियों के स्वतंत्र अस्तित्व से परिचित था क्योंकि उस ने एक ही जिल्द में दोनों ग्रंथों को लिखा है। अतः इस विषय में 'ठ' प्रति का ही अनुसरण किया गया है किंतु जो छंद इस जिल्द की प्रतियों में भी समान रूप से दोनों ग्रंथों में हैं उन्हें यथास्थान रक्खा गया है।

## सिद्धांत पंचाध्यायी

इस ग्रंथ की चार प्रतियाँ मिली हैं—

१ क—श्रीनाथद्वारा के संग्रहालय में सुरक्षित एक प्रति की प्रतिलिपि। प्रतिलिपिकार पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी हैं और उन्हीं से लेखक

को यह प्रति प्राप्त हुई है। इस में १३८ रोनें हैं। मूल प्रति का लिपि-काल अज्ञात है।

२ ग—इस प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ के लगभग माना जा सकता है। यह 'क' की अपेक्षा कुछ अशुद्ध अव्यय है किंतु साधारणतया इस का पाठ 'क' के सदृश ही है।

३ ग—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित प्रति। इस प्रति के संपादन में चतुर्वेदी जी ने लगभग छः प्रतियों का उपयोग किया है किंतु कारण-वश उन प्रतियों के मंत्र आदि के विवरण ज्ञात न हो सके। यह प्रति 'व्रजभारती' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित भी हो चुकी है।

४ घ—पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी से प्राप्त। यह प्रति सं० १६३० की निर्वाह है। 'गुरुपंचाध्यायी' की प्रतियों के विवरण में यह कहा जा चुका है कि यह प्रति प्रस्तुत संस्करण के प्रेस में जाने के बाद प्राप्त हुई थी। साधारणतया अशुद्ध होते हुए भी इस प्रति के कुछ पाठ ऐसे मिले जो अन्य प्रतियों में नहीं प्राप्त हो सके थे। फलतः थोड़े से स्थलों में मूल पाठ में प्रावश्यक परिवर्तन कर लिए गए हैं और अवशिष्ट ज्ञानव्य पाठ परिशिष्ट ३ में दिए गए हैं। इस प्रति ने ग्रंथ का नाम 'अध्यात्म पंचाध्यायी' दिया है। 'सिद्धांत पंचाध्यायी' के संपादन में एक दो स्थलों पर 'ग' के पाठान्तरो को भी ग्रहण किया गया है।

## दशम स्कंध

इस ग्रंथ की पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

१ क—जि० सं० ४५६/१४। डा० भवार्नामिकर ने प्राप्त। इस प्रति का लिपि-स्थान गोमूल है तथा लिपि-काल सं० १८५७ है। यह साधारणतया शुद्ध है। इस में २६ अध्याय हैं।

---

'दे० 'हपमंजरी' की 'ट' प्रति का परिचय

२ ख—यह प्रति 'वाणी प्रकाशक मण्डल', अमृतसर, द्वारा सन् १९३२ में मुद्रित हुई थी और बिना मूल्य वितरित कर दी गई थी। इसी से यह अब प्रायः अप्राप्य सी है। लेखक को इस की एक प्रति डा० भवानीशंकर द्वारा प्राप्त हुई थी। इस के 'संगोष्क' श्री कर्मचन्द गुग्गलानी हैं। इस का संपादन चार प्रतियों के आधार पर हुआ था जिन में प्राचीनतम प्रति सं० १७६४ की थी। इस प्रति की एक विशेषता यह है कि इस में अन्य प्रतियों से अधिक पंक्तियाँ मिलती हैं। कहीं कहीं इस प्रति ने पाठ के क्रम में भी बहुत अंतर कर दिया है। इस में २८ अध्याय हैं। भूमिका में विद्वान् संपादक ने इस ग्रंथ के आधारों पर प्रकाश डाला है।

३ ग—प० जवाहरलाल चतुर्वेदी से प्राप्त। इस के ८१, ९८ तथा १५८ संख्यक पत्र खंडित हैं। अतः से खंडित होने के कारण प्रति का लिपि-काल ज्ञात नहीं है किंतु प्रति प्राचीन अवश्य जान पड़ती है। यह विशेष सावधानी के साथ लिखी गई है और इस का पाठ अन्य प्रतियों से बहुत शुद्ध है। अतएव प्रस्तुत संपादन में इस पोथी से विशेष सहायता ली गई है। इस में २९ अध्याय हैं।

४ घ—यह प्रति काशी के श्री रामरत्न पुस्तकभवन के संस्थापक श्री मुरारीलाल केडिया के संग्रह की है। इस का लिपि-काल सं० १७५७ है और ज्ञात प्रतियों में यह 'दशम स्कंध' की प्राचीनतम प्रति है। इस ने भी 'क' के समान बहुत से स्थल छोड़ दिए हैं। खेद है इस प्राचीन प्रति का पाठ बहुत अशुद्ध है। इसी से इस के समस्त पाठ का मिलान नहीं किया गया है।

५ ङ—श्री द्वारकेश पुस्तकालय, काँकरौली, से प्राप्त। इस प्रति का पाठ भी 'घ' के समान ही अशुद्ध है और इस में भी २८ अध्याय हैं। खोज रिपोर्ट सन् १९०१, संख्या ११, तथा खोज रिपोर्ट सन् १९०६-०८, संख्या २०० (बी) में इस ग्रंथ की दो प्रतियों के उल्लेख हैं।

## पदावली

नन्ददास कृत पद निम्नांकित नी प्रतियों से संगृहीत है—

१ क—‘कीर्तन संग्रह’ भाग १, २ तथा ३ । यह ग्रंथ सं० १९९३ में दूसरी बार “वी वीर विजय प्रिन्टींग प्रेस”, अहमदाबाद, से मुद्रित हुआ । इस के प्रकाशक तथा संग्राहक लल्लुभाइ अगनमल देसाई हैं । इस बृहत् ग्रंथ के भाग १ में कृष्णजन्माष्टमी से ले कर रक्षाबंधन तक वर्ष के विभिन्न उत्सवों के पद संकलित हैं । भाग २ में वसंत, डोल, होली आदि के तथा भाग ३ में ‘मंगला’, ‘राजभोग’, ‘उत्थापन’ आदि से संबंधित नित्य गाए जाने वाले पद मिलते हैं । बल्लभ संप्रदाय के मंदिरों में इस ग्रंथ का विशेष प्रचार है । ऐसा कहा जाता है कि इस के प्रकाशित हो जाने से मंदिरों के कीर्तनियों में हस्तलिखित पोथियों के रखने का चलन ही उठ गया है । गुजराती वैष्णवों के संरक्षण में मुद्रित होने के कारण इस ग्रंथ के पाठ में, स्वभावतः, प्रादेशिकता की मात्रा बहुत अधिक है ।

२ ग—बंगीय साहित्य परिषद् द्वारा प्रकाशित श्री कृष्णानन्द व्यासदेव कृत ‘मंगीत राग कल्पद्रुम’ (१९१४ ई०) । इस ग्रंथ से नन्ददास के १६ नए पद मिले हैं ।

निम्नलिखित पाँच पोथियाँ डा० भवानीशंकर याजिक ने प्राप्त की हैं—

३ अ—जि० सं० २६२/४२ । इस पोथी में नन्ददास के केवल सात पद हैं और उस का निपि-काल सं० १८४९ है ।

४ आ—जि० सं० ६६८/४५ । इस पोथी के होली तथा धमार संबंधी पदों में नन्ददास के लगभग एक दर्जन पद हैं ।

५ इ—जि० सं० ५७७/४५ । इस पोथी से केवल एक पद मिला है ।

६ ई—जि० सं० २६३/४० । इस पोथी का निपि-काल सं० १८८१ है और उस में नन्ददास के ४७ पद हैं ।

७ उ—जि० सं० ७८७/४५ । यह प्रति गुजरात की छपी हुई जान

पड़ती है क्योंकि इस के पदों की अनुक्रमणिका के ऊपर "पदों नाम" शीर्षक पड़ा है। इस का मुख-पृष्ठ फटा है अतः प्रकाशक यादि के संबन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। 'क' तथा इस प्रति का पाठ एक सा ही है। संभवतः 'क' के संग्राहक ने इस का उपयोग किया है। इस में नंददास के लगभग ४५ पद हैं।

८ ऊ—'नंददास पदावली', संपादक पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी। यह ग्रंथ अभी पूर्णतया छप नहीं सका है। जिस समय लेखक मथुरा गया था उस का केवल 'नित्य कीर्तन' ही छपा था जिसमें ११८ पद हैं। चतुर्वेदी जी के अनुसार समग्र ग्रंथ में लगभग ७०० पद हैं।

९ ए—पं० जवाहरलाल चतुर्वेदी द्वारा प्राप्त। इस प्रति में नंददास के लगभग ३० पद हैं।

ऊपर दी हुई प्रतियों से कवि के २८३ पद प्राप्त हुए हैं। प्रस्तुत संस्करण में कोई भी ऐसी सामग्री मूल पाठ में नहीं दी गई है जो पाँथियो द्वारा न प्राप्त हुई हो। इस विचार से इन समस्त पदों को मूल पाठ में नहीं ग्रहण किया जा सकता था क्योंकि इन में अधिकांश पद मुद्रित संस्करणों से सकलित हैं। जो पद पाँथियो में मिले भी उन में पाठ की गड़बड़ी इतनी अधिक मिली कि उन का संपादन नहीं हो सका। अतएव मूल पाठ में केवल ३५ पद दिए गए हैं, अवशिष्ट २४८ पद परिशिष्ट १ (ग) में संगृहीत हैं।

फुटकर पदों के वर्गीकरण की समस्या भी सरल नहीं है। 'क' प्रति में समस्त पदों को 'वर्षोत्सव' तथा 'नित्य कीर्तन' शीर्षकों में वर्गीकृत किया है किंतु इस ग्रंथ में ऐसे अनेक पद हैं जो दोनों शीर्षकों के अंतर्गत समान रूप से मिलते हैं। यह वर्गीकरण प्रधानतया धार्मिक दृष्टि से है और कदाचित् साहित्यिक क्षेत्र में विशेष उपयोगी सिद्ध न होगा। प्रस्तुत संस्करण में मूल पाठ के पदों को विषय के अनुसार कुछ शीर्षकों में विभक्त कर दिया गया है। उन के पीछे कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है।

## संपादन-विधि

किसी भी ग्रंथ के मद्र ने अधिक सम्भवित मूल रूप का उद्धार करना ही उस ग्रंथ के संपादन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। इस सम्भवित रूप तक पहुँचने का प्रधान साधन उस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हस्तलिखित प्रतियों में भी जो कवि के रचना-काल तथा निवासस्थान ने अधिक निषट हैं उन के पाठों के प्रामाणिक होने की अधिक संभावना है। तद्वश के काव्यग्रंथों का प्रस्तुत संपादन यथामभव ऐसी ही प्रतियों के आधार पर हुआ है। 'गसपंचाध्यायी', 'सँवरगीत' आदि के मुद्रित संस्करणों में ऐसे बहुत से पाठ मिले जिन का पाँथियों में कोई अस्तित्व न था। अतएव धियन हो कर उन्हें मूल पाठ से हटा देना पड़ा।

कवि की भाषा के व्याकरण के रूपों को स्थिर करने में पाँथियों की प्रवृत्तियों के अध्ययन के साथ ही प्रयोगों की ऐतिहासिकता पर विचार करना भी लाभप्रद निष्ठ होता है—कम से कम प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोगों की जानकारी ने हमारे निष्कर्षों में अधिक दृढ़ता आ जाती है। उस प्रणाली का जिस रूप में उपयोग हुआ है उस के कुछ व्यावहारिक उदाहरण नीचे दिए जाने हैं—

१. मयुरा तथा भरतपुर आदि स्थानों की प्रतियों में अर्द्ध-विवृत 'ऐ-ओ' ध्वनियाँ कमजोर ऐ-ओ द्वारा व्यक्त की गई हैं जिस से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि की मूल ध्वनि ने भी इन्हे इसी रूप में लिखा गया होगा। कभी कभी पाँथियों ने तत्सम शब्दों को भी इसी प्रकार लिखा है जैसे 'सँजन्म', 'प्रेम', 'रीम', 'जाँति'। उच्चारण की दृष्टि ने इन परिवर्तनों का मिलना स्वभाविक है किन्तु पाँथियों ने ये रूप नियमित रूप से नहीं हैं। फलतः इन्हें प्रथम देना उचित नहीं है।

तत्सम शब्दों की 'इ', 'उ', 'ण' आदि अनुनासिक तथा 'श्', 'प्' आदि जस ध्वनियाँ भी नियमित रूप से नहीं प्रयुक्त हुई हैं। 'मङ्ग', 'चञ्चल',

‘मणि’, ‘शास्त्र’, ‘शेष’, ‘शुखदेव’ आदि प्रचलित शब्द क्रमशः ‘संग’, ‘चंचल’, ‘मनि’, ‘सास्त्र’, ‘सेस’, ‘सुखदेव’ के रूप में अधिक संख्या में मिलते हैं। अप्रचलित या कम प्रचलित शब्दों के संबंध में परिस्थिति भिन्न है। प्रतियों ने ‘अश्रय’, ‘किल्बिष’, ‘शोषन’, ‘विश्रब्ध’, ‘निश्चित’, ‘धिषन’, ‘श्रमकन’, ‘आश्रय’, को ‘अस्रय’, ‘किल्बिस’, ‘सोसन’, ‘विस्रब्ध’, ‘निस्चित’, ‘धिसन’, ‘स्रमकन’। ‘आस्रय’ कर के नहीं लिखा है। ऐतिहासिकता के विचार से कवि के समय इन ध्वनियों का उच्चारण चाहे जिस प्रकार से होता रहा हो किंतु जब प्रतियों ने तत्सम रूपों को ग्रहण किया है तब हमें भी इन्हे इसी रूप में रखना चाहिए।

२. परसर्ग ‘कौं’ की अनुनासिकता एक विवादग्रस्त विषय है। मान्य प्रतियों ने कर्म-संप्रदान में इसे बहुधा अनुनासिक रूप में रक्खा है किंतु षष्ठी के अर्थ में वे इस के अनुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप व्यवहृत करती हैं। प्राचीन ब्रज में कर्म-संप्रदान में दोनों रूप तथा संबंध में निरनुनासिक रूप ही मिलते हैं<sup>१</sup>। आधुनिक ब्रज में भी मथुरा के आसपास संबंध में निरनुनासिक रूप पाए जाते हैं<sup>२</sup>। संभवतः कवि के समय में भी इस अर्थ में निरनुनासिक रूप (अर्थात् ‘कौं’) का ही चलन रहा होगा। अतः इसे ग्रहण कर लिया गया है।

संज्ञाओं तथा सर्वनामों में ‘हि’ अथवा ‘हिं’ प्रत्यय लगा कर अनेक संयोगात्मक रूप विभिन्न कारकों के लिए पोथियों में प्रयुक्त हुए हैं। इन में संज्ञाओं के रूप बहुधा निरनुनासिक ‘हि’ के योग से बने हैं (जैसे ‘अलि विन कमलहि को पहिचानै’, ‘मन-बच-क्रम जु हरिहि अनुसरे’)। षष्ठी के अर्थ में सर्वनामों के रूप भी प्रायः निरनुनासिक हैं (जैसे जिहि भीतर जगमगत, निरंतर कुँवर कन्हार्ई, ‘सो पुनि तिहि संगति निस्तरी’), किंतु

<sup>१</sup> डा० धीरेन्द्र वर्मा : ‘ब्रजभाषा व्याकरण’, पृ० १२३, १२५

<sup>२</sup> डा० धीरेन्द्र वर्मा : ‘ला लॉग ब्रज’, पृ० ६८

अन्य कारकों के लिए उन के अधिकांश रूप सानुनासिक मिलते हैं (जैसे 'भुर भुनि रोभत जिहि', 'जिहि निरखत नास', 'मोहि नहि करिही दासी', 'दुतहि निवेसित काँज') । प्राचीन ब्रज में सूरदास में संज्ञाओं में भी सानुनासिक रूप मिलते हैं (जैसे 'पूतहि भले पढावति') । इस ग्रंथ में संज्ञा तथा सर्वनाम के रूपों में एकरूपता न स्थापित कर के पोथियों की प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है ।

३. संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के साथ प्रयुक्त केवलार्थक तथा समे-  
नार्थक अव्यय 'हि' तथा 'हु' नियमित रूप से मिलते हैं (जैसे 'प्रथमहि  
प्रदलै प्रेममय', 'सुनतहि मोहन मुख की बानी', 'सगद कमल दलहू तै  
जाने') । सर्वनाम के साथ इन रूपों के अतिरिक्त इन के सानुनासिक  
रूप भी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं । बहुधा यह देखा गया है कि अनुनासिक  
ध्वनियों वाले सर्वनामों के साथ के अव्यय भी अनुनासिक हो गए हैं ।  
प्रतियों ने 'न' की अपेक्षा 'म' के बाद के अव्ययों में अधिक अनुनासिक  
रूप दिए हैं । इस का कारण कदाचित् यह है कि 'म' के उच्चारण में 'न'  
से अधिक सानुनासिक प्रतिक्रिया होती है । इस संस्करण में अनुनासिक  
ध्वनियों के बाद में आने वाले 'हि' तथा 'हु' में अनुनासिकता रक्खी गई  
है, अन्य रूपों में नहीं (जैसे 'ताकी प्रभु तुम हों आधार', 'तिन हूँ सब  
विधि लोरी' इत्यादि; तथा 'जितहि धरची हौं तितही पायी', 'ताहू तै  
मनगुनी, महस कियी काँटि गुनी है') ।

भाषा के अन्य प्रयोगों के रूप भी इसी प्रकार निश्चित किए गए हैं ।  
वहुत से ऐसे प्रयोग भी हैं जिन के मध्य में प्रस्तुत अध्ययन से किसी निष्कर्ष  
पर नहीं पहुँचा जा सका है जैसे सप्तमी के परसर्ग 'परि', 'पर', 'पै' में  
कवि द्वारा व्यवहृत रूप बनाना कठिन है । इसी प्रकार हौहि-हौइ, मानहुँ-  
नानौ, कान्हू-कान आदि दोनों प्रकार के रूप इस संस्करण में मिलेंगे ।



यह सच है कि 'परि' और 'हौंहि' आदि प्रयोग ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन हैं किंतु कवि के समय की वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान तो तभी हो सकता है जब उस के ग्रंथों की तथा अन्य समग्रामयिक लेखकों की प्राचीन पोथियों को बड़ी संख्या में एकत्रित कर के समस्त रूपों की गणना की जाय। तभी ठीक स्थिति का पता चल सकेगा। इस संस्करण में प्राप्त पोथियों के भी विभिन्न प्रयोगों के समस्त रूपों की गणना नहीं की जा सकी है। प्रतियों की परीक्षा करते समय जो प्रवृत्तियाँ लक्षित हुईं उन्हीं के आधार पर विचार किया गया है।

कुछ असाधारण प्रयोग भी हस्तलिखित प्रतियों में अधिक मिले जैसे 'हौंह' ('बैठे हौंह सावरे जहाँ', 'कर्म बुरे जाँ हौंहि')। इस के साधारण रूप हौंह अथवा हौंहि के साथ ही इसे भी मूल पाठ में रख लिया गया है।

प्रस्तुत संस्करण में भाषा की एकरूपता उसी सीमा तक रखी गई है जहाँ तक वह पोथियों से पुष्ट हो सकी है। किन्हीं सिद्धांतों का आरोप कर के शब्दों में परिवर्तन नहीं किया गया।

नंददास के किसी ग्रंथ की रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। खोज रिपोर्ट सन् १९२०-२२, संख्या ११३ (ए) पर 'नाममाला' की एक प्रति के विवरण में उस की रचना-तिथि स० १६२४ दी गई है जो स्पष्ट ही भूल है क्योंकि उक्त ग्रंथ के पाठ में कहीं पर भी यह तिथि नहीं है। संभवतः कवि के संभवित कविता-काल के भ्रम से ही इस तिथि को रचना-तिथि के रूप में लिखा गया है। अतएव रचना-काल के आधार पर कवि के ग्रंथों का कोई क्रम निर्धारित नहीं हो सकता है। शैली की प्रौढ़ता के विचार से भी ग्रंथों का क्रम निश्चित करना संभव है परंतु इस आधार में कोई निश्चयात्मकता नहीं हो सकती। इन कठिनाइयों के कारण इस संस्करण के ग्रंथों का क्रम छंद के आधार पर रखा गया है। इस के प्रथम पाँच ग्रंथ दोहा-चौपई में हैं, उसके बाद दो ग्रंथ दोहा में, तत्पश्चात् दो दोहा-रोला-टंक के मिश्रित रूप में, पुनः दो रोला छंद में हैं। 'दशम स्कंध' को अपने सिद्धांत के अनुसार

पञ्चगोत्रियों के बाद रचना चाहिए था किंतु उस के विरतृत रूप के कारण ऐसा नहीं किया गया। अंत में कवि कृत कुछ फुटकर पद संकलित हैं।

परिशिष्ट १ में 'संक्षिप्त तथा असंज्ञादिन सामग्री', २ में 'प्रक्षिप्त सामग्री', ३ में 'पाठांतर', ४ में 'पदों की प्रथम पंक्ति की अकारादि-क्रम-सूची' तथा ५ में 'मन्त्रार्थ-सोप' हैं।

मूल पाठ में प्रत्येक पाँचवीं पंक्ति के सामने उस की क्रम-संख्या के अंक दिए हुए हैं। पाठांतरों के देखने में इस में विशेष सुभीता होगा। पंथियों में प्राप्त नमस्त पाठांतरों को देने से ग्रंथ-विस्तार बहुत बढ़ जाता अतएव ऐसा करना संभव न था। मूल पाठ के स्थिर करने में जिन स्थलों पर केवल व्यक्तिगत निश्चय से काम लिया गया है उन के पाठांतर प्रायः दिए गए हैं क्योंकि इन के विषय में मतभेद हो सकता है। इसी प्रकार अर्थांतर वाले पाठांतर भी अनिवार्य रूप से संगृहीत हैं। प्रायः अशुद्ध पाठांतरों में नहीं है किंतु जहाँ मूल पाठ का अर्थ अनिश्चित अथवा अज्ञात है वहाँ शुद्ध-अशुद्ध का विचार न कर के प्राप्त सभी पाठांतर दे दिए गए हैं।

जिन पाठों की किमी दूसरी प्रति ने बिल्कुल छोड़ दिया है उस की सूचना × चिह्न द्वारा दी गई है। जिन पाठांतरों के बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगा हुआ है वे लिपि की गड़बड़ी के कारण निश्चित रूप से नहीं पढ़े जा सके हैं।

नवभाग की रचना में कुछ पंक्तियाँ समान रूप से दो ग्रंथों में मिलती हैं जैसे 'हृषिकेश' की पंक्ति १०८, १०९, ११० तथा ५४०, ५४१, ५४७ 'रत्नमंजरी' में भी क्रमशः पंक्ति ५८, ५९, ६० तथा ४२, ४३, ४० पर उसी रूप में मिलती हैं। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। पंथियों के देखने में यही अनुमान होता है कि स्वयं कवि ने इन्हें इस रूप में रखा है। फलतः इस संबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया।

## काव्य-समीक्षा

काव्यकार को अपनी कला का प्रासाद निर्माण करने-में सर्वप्रथम वर्ण्यवस्तु को चुनना पड़ता है। इस कार्य में वह प्रायः अपनी पूर्ववर्ती तथा समसामयिक रचनाओं का थोड़ा-बहुत अवलंब अवश्य ग्रहण करता है। जिन विषयों को अपने उपयोग के लिए वह छाँटता है उन में अपनी वैयक्तिक अभिरुचि, अपनी प्रतिभा तथा अपनी परिस्थिति के अनुकूल जो परिवर्तन आवश्यक होते हैं उन्हें कर लेता है। इस प्रकार से पुरानी बातों को नई रूपरेखा दे कर मानव-हृदय की जटिलताओं, उस की गहराई, उस के सुख-दुख तथा उत्थान-पतन आदि के मार्मिक चित्रों से वह काव्यानंद की धारा प्रवाहित कर देता है। अतएव नंददास की कृतियों की वर्ण्यवस्तु तथा उस के प्रधान आधारों से कुछ परिचय प्राप्त कर लेने से कवि के दृष्टिकोण को समझने में सुगमता होगी।

भगवान् कृष्ण के परम भक्त होने के नाते नंददास की कोई भी रचना ऐसी नहीं है जो किसी न किसी रूप में कृष्ण से संबद्ध न हो। 'रूपमंजरी' में धर्मधीर नाम के किसी राजा की कन्या का चरित्र वर्णित है। विवाह-योग्य होने पर रूपमंजरी के पिता-माता ने किसी ब्राह्मण को उस के योग्य वर खोजने का भार सौंपा। लोभी तथा दुर्बुद्धि ब्राह्मण ने उस का विवाह किसी क्रूर तथा कुरूप राजपुत्र से करा दिया। रूपमंजरी के स्वजन, विशेष रूप से उस की सखी इंदुमती, इस घटना से अत्यंत दुखित हुई। उस ने 'उपपत्ति-रस' द्वारा अपनी सखी के अपार सौंदर्य को सार्थक बनाने का यत्न किया। उस के व्रत आदि के फलस्वरूप रूपमंजरी को कृष्ण ने दर्शन दिए। इस के पश्चात् कवि ने षट् ऋतुओं तथा उन से पीड़ित रूपमंजरी की विरहावस्था का वर्णन कर के अंत में स्वप्नावस्था में कृष्ण-प्राप्ति करा दी है। इंदुमती भी अपनी सखी की सेवा करते हुए मुक्त हो गई। इस आख्यान में कवि ने पात्रों के व्यक्तित्व का विकास नहीं किया

है जिस में यह निश्चिन्त नहीं हो पाना है कि उस के प्रधान पात्र रूपमंजरी तथा चंद्रमती ऐतिहासिक व्यक्ति थे अथवा नहीं। हम पहले देख चुके हैं कि एक बहिरंग साधक द्वारा 'ग्वालियर की बेटी' रूपमंजरी से कवि की मंत्री होने का उल्लेख मिलता है। कदाचित् रूपमंजरी का वैवाहिक जीवन अन्तकाल था और वह अंत में कृष्ण-भक्त हो गई थी। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उस में परिणतता होने के कारण कवि ने उस के वृत्त को प्रकट न किया हो।

'विरहमंजरी' बारहमासे की जैली पर लिखी हुई रचना है। इस में विरहाकुल ब्रजवाला चंद को हृत बना कर कृष्ण के पास द्वारका से शीघ्र वापस आने का नदेश भेजती है।

'रसमंजरी' भाषा-साहित्य में कदाचित् नायिका-भेद का पहला ग्रंथ है। स्वयं कवि ने 'रसमंजरी' नामक किसी ग्रंथ के अनुसरण करने का उल्लेख किया है। सन्ध्या कवि भानुदत्त मिश्र विरचित 'रसमंजरी' में नंददास की 'रसमंजरी' की तुलना करते पर दोनों में बहुत अधिक साम्य मिलता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का अभिप्राय भानुदत्त के ग्रंथ का अनुसरण करने में ही है। भानुदत्त ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिए हैं और उन के उदाहरण श्लोकों में। लक्षणों की समीचीनता पर भी उन्होंने ने आश्चर्य दंग से विवेचन किया है। नंददास ने इन विस्तारों को गूढ़दम छोड़ दिया है। उन्हो ने प्रायः उदाहरणों को ही लिया है। वहाँ दोनों कवियों के ग्रंथों में 'नुरतिगोपिता परकीया' का एक उदाहरण तुलनायें दिया जाता है जिस में यह ज्ञात होता है कि नंददास का उद्देश्य भानुदत्त के ग्रंथ को ह्वातस्ति करना ही था—

स्वधूः ऋष्यतु, विद्विषन्तु सुहृदो, तिन्दन्तु वा यातरः ।

तस्मिन् सिन्तु न मन्दिरे सखि ! पुनः स्वापो विवेयो मया ॥

आखोराक्रमणाय कोणकुहरादुत्फालमातन्वती  
 मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती, कां कां न मे दुर्दशाम<sup>१</sup> ॥  
 कहै सखी सों उहि गृह अंतर, अब तैं हों सोऊँ न सुतंतर ।  
 सास लरौ, धँया किन लरौ, दँया जो भावैं सो करी ।  
 आखु धरन हित दुष्ट मजारी, मो पै उछरि परी दइमारी ।  
 दै गई तीछन नख दुखदाई, कासों कहीं दरद सो माई ।  
 इहि छल छतन छिपावैं जोई, परकिय सुरतिगोपना सोई<sup>२</sup> ।

‘मानमंजरी नाममाला’ की रचना ‘अमरकोश’ के आधार पर हुई है। इस में संस्कृत के कुछ शब्दों के पर्यायवाची शब्दों को दोहो में संगृहीत किया गया है किंतु कवि ने अपने विषय का प्रतिपादन अत्यंत रोचक तथा मौलिक ढंग से किया है। उस ने शब्दों के पर्यायवाचियों के साथ साथ मानिनी राधा के मनाने की कथा का कुछ विस्तृत वर्णन दे कर अंत में राधा और कृष्ण का मिलन करा दिया है। इस प्रसंग की अवतारणा से कोप ऐसे नीरस विषय में भी बहुत सरसता आ गई है।

‘अनेकार्यमजरी’ में अनेकार्थी शब्दों पर दोहो संगृहीत हैं। ‘मानमजरी’ के समान इस ग्रंथ में किसी प्रकार की कथा तो नहीं है किंतु इस के दोहो में भगवद्भजन के रूप में ‘कृष्ण’, ‘गोविंद’, ‘हरि’ आदि शब्दों का समावेश अवश्य किया गया है।

‘स्यामसगाई’ की कथावस्तु अत्यंत सरल है। यशोदा ने राधा के साथ कृष्ण के विवाह का प्रस्ताव कीर्त्ति के पास भेजा। कीर्त्ति ने नटखट कृष्ण से अपनी भोली कन्या का विवाह करना ठीक न समझा। इस प्रस्ताव की अस्वीकृति से माँ को दुखी देख कृष्ण अपने मनमोहक

<sup>१</sup> भानुदत्त मिश्र : ‘रसमंजरी’, पृ० ५३ (प्रकाशक, श्रीकृष्ण निबंधभवन, काशी, १९२६)

<sup>२</sup> ‘रसमंजरी’, पंक्ति ११०-११४

क्षेत्र में बरसाने के बाग में जा बैठे। अपनी सखियों के साथ राधा कृष्ण को देखने आई। प्रथम दर्शन होते ही राधा मूर्च्छित हो जाती है। कुछ वनगा आने पर सखियों ने उसे कृष्ण-प्राप्ति की एक युक्ति बतलाई। उन्होंने ने उसे यह गिबलाया कि माँ के इस अवस्था का कारण पूछने पर तुम वही कहना कि मुझे साँप ने काट लिया है। घर जाने पर माँ कन्या की दशा देख कर अनन्त व्याकुल हुई। राधा की एक सखी को भेज कर कृष्ण बुलाए गए। उन के दर्शन मात्र से राधा की मूर्च्छा जाती रही। कौत्सि ने प्रसन्नतापूर्वक राधा-कृष्ण की सगाई निश्चित कर दी। संभवतः इस आख्यानक को लिखते समय कवि 'सूरसागर' से प्रभावित हुआ है क्योंकि राधा को साँप काटने तथा कृष्ण के बुलाए जाने का वर्णन सूरदास ने भी किया है।

'भैरवगीत' की वस्तु का मूलाधार 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ४६ व ४७ है किंतु दोनों वर्णनों की तुलना करने पर महत्त्वपूर्ण अंतर पाए जाते हैं। 'भागवत' में उद्धव नंद-वर्गोदा और साथ ही गोपियों के कृष्ण-विरह-जनित संताप को शांत करने जाते हैं। संध्या समय गोकुल पहुँचने पर उन की भेंट पहले नंद जी से होती है। नंद जी कृष्ण के अद्भुत कृत्यों का स्मरण कर प्रेम-विभोर हो जाते हैं। उद्धव उन्हें यह उपदेश दे कर नांत्वना देते हैं कि कृष्ण 'अजन्मा', 'अकर्मा' हैं, वे 'प्रयोजनवश गायामय मनुष्य रूप में अवतीर्ण' होते हैं। उद्धव और नंद की बातचीत दोनो होते रात बीत जाती है। दूसरे दिन सूर्योदय के प्रकाश में गोपियों ने नंद के द्वार पर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखा। उस के बाद ही उद्धव के आने का सूचना मिली किंतु नंददास के 'भैरवगीत' में उद्धव के आने का प्रयोजन केवल गोपियों को समझाना है। उस में उद्धव-नंद की भेंट का उल्लेख तक नहीं है। उस की प्रथम पक्ति है—'ऊँची की उपदेस सुनी यजनागरी'। 'भागवत' में गोपियाँ उद्धव से मिलने पर कृष्ण की स्तुति भरी पर खड़ा आशेष करती है और शीघ्र ही अमर का प्रवेश हो

जाता है। 'भैरवगीत' में कुशल-प्रश्न के पश्चात् निर्गुण-सगुण पर विवाद प्रारंभ हो जाता है और २२ छंदों तक यह विवाद चलता है (छंद ७ से २८ तक)। इस तर्क-वितर्क की कोई चर्चा 'भागवत' में नहीं है। भ्रमर को लक्ष्य कर 'भागवत' में जो उपालंभ कराए गए हैं उन्हें नंददास ने प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया है किंतु उन्होंने ने उन के क्रम में कुछ अंतर कर दिया है। 'भैरवगीत' में ज्ञान और भक्ति की बात समाप्त होने पर अकस्मात् गोपियों के सन्मुख कृष्ण का स्वरूप आ जाता है और वे उन की कुटिलता पर अनेक प्रेम-पूर्ण आक्षेप करती हैं (छंद २६ से ४२ तक)। इस के बाद कवि ने ४५वें छंद में भ्रमर का प्रवेश कराया है और उस को लक्ष्य करते हुए उपालंभ कराए हैं। 'भागवत' में भी गोपियाँ विष्णु के विभिन्न अवतारों की क्रूरता पर आक्षेप करती हैं परंतु वह भ्रमरोपालंभ के अंत में वर्णित है और वह भी सूक्ष्म रूप में। 'भागवत' में उद्धव कई महीने ठहर कर गोपियों को पूर्ण रूप से संतुष्ट कर देते हैं, 'भैरवगीत' में गोपियों की अटल प्रेम-भावना के सामने वे सिर झुका देते हैं और उन की प्रेम-महिमा की प्रशंसा करते हुए कृष्ण के पास वापस जाते हैं।

रुक्मिणी परिणय की कथा का सूत्रपात 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय ५२ के मध्य से होता है। जब रुक्मिणी के हठी भाई रुक्मी ने शिशुपाल के साथ उस के विवाह का समस्त आयोजन कर दिया तो वह अत्यंत चिंतित हुई। उस ने एक विश्वस्त ब्राह्मण के हाथ कृष्ण को पत्र भेजा<sup>१</sup>। ब्राह्मण के द्वारकापुरी पहुँचने पर कृष्ण पहले तो संतोष, धर्म तथा सदाचार आदि के पालन का उपदेश करते हैं, पुनः उस के आने का प्रयोजन जान कर उस से रुक्मिणी का पत्र पढ़वाते हैं<sup>२</sup>। तत्पश्चात्

<sup>१</sup> पं० रूपनारायण पाण्डेय : 'श्रीमद्भागवतभाषा' (निर्णयसागर प्रेस, बंबई), १०-५२-२६

<sup>२</sup> वही, १०-५२-३६

ने मंदिनान्न के लिए चल देते हैं। इधर मतान-वत्सल राजा भीष्मक अपनी गन्धा के विवाह के अवसर पर अतिथियों की अभ्यर्थना का समस्त प्रबंध संपादित करते हैं। रुक्मिणी कृष्ण के शीघ्र न आने से व्यग्र हो उठती है। ब्राह्मण जय वापस आता है तो उन के प्रफुल्लित मुख से ही वापस-सिद्धि की सूचना पा जाती है। कुछ समय के उपरांत सैनिकों से भिगी रुक्मिणी देवी-पूजन के लिए जाती है। विधिवत् पूजा करने के बाद जब वे मंदिर ने बाहर आती है तो कृष्ण उन्हें रथ पर चढ़ा कर चल देते हैं। अनेक सम्प्रभारी योद्धा कृष्ण का पीछा करते हैं पर वे सभी पराजित हो कर निर्गम हो जाते हैं। रुक्मी को इस से संतोष न हुआ। वह स्वयं कृष्ण ने गुद्ध करने जाता है। कृष्ण ने उसे परास्त किया और कुरूप कर के रथ के पीछे बांध दिया। भाई की इस दुर्गति से दुखी रुक्मिणी के अनुरोध से दयालु दनदेव जी रुक्मी को बधन-मुक्त कर देते हैं और रुक्मिणी को अपने कन भाई के प्रति सहानुभूति प्रकट करने पर तिरस्कृत करते हैं। अंत में राजका पहुँच कर कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह हो जाता है।

‘रुक्मिणी मंगल’ की कथा का मूल ढाँचा ‘भागवत’ की इस कथा पर ही अवलंबित है किंतु विस्तारो में नंददास ने अनेक काव्योपयोगी परिवर्तन कर दिए हैं। उन्होंने प्रारंभ में रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन विस्तार के साथ किया है। रुक्मिणी का पत्रवाहक द्वारकापुरी की भव्य अट्टालिकाओं तथा गणनीय नताओं और कुंजों को देखता हुआ कृष्ण के पास पहुँचता है। यहाँ उसे कृष्ण धर्म तथा नृपराज का व्याख्यान नहीं देते। वे उसे रुक्मिणी का पत्र पढ़ने को देते हैं। रुक्मिणी अपने पत्र में अपने दृढ़ प्रेम तथा अपनी परखवाला का ही उल्लेख करती है। ‘भागवत’ की भाँति अपने हरण की सुनिश्चित वे नहीं समझती हैं। उसे तो वे कृष्ण के ऊपर छोड़ देती हैं। ‘भागवत’ में वर्णित विवाहोपलक्ष्य राजा भीष्मक के प्रबंधों को नंददास विस्मृत छोड़ जाते हैं। उन के स्थान पर वे कृष्ण की रूपमावुरी का प्रभावशाली पर जो प्रभाव पड़ा उस का वर्णन करते हैं। देवी-पूजन के



वाद कृष्ण जब रुक्मिणी का हरण कर चल देते हैं तो जरासंध-आदि राजा उन का पीछा करते हैं। इन राजाओं तथा यदु-सैना के साथ युद्ध का जो वर्णन 'भागवत' में है उस का संकेतमात्र कर के कवि ग्रंथ समाप्त कर देता है। कृष्ण का रुक्मिणी के सामने ही उस के भाई के वध में उद्यत होना तथा भाई के अपमानित होने से रुक्मिणी के दुःख होने पर बलदेव का उसे तिरस्कृत करना और जानोपदेश देना काव्य की दृष्टि से अत्यंत अस्वाभाविक बातें थीं इसी से नंददास ने उन्हें छोड़ दिया है।

'रासपंचाध्यायी' के पाँच अध्याय 'श्रीमद्भागवत' दशम स्कंध के अध्याय २६-३३ पर आधारित हैं। प्रथम अध्याय का प्रारंभ मुरली के मधुर आह्वान से होता है। अपने साथ विहार करती हुई गोपियों के मान उत्पन्न होने के कारण कृष्ण अंतर्ध्यान हो जाते हैं और इसी स्थल पर अध्याय की समाप्ति होती है। नंददास ने इस अध्याय को बहुत परिवर्द्धित कर दिया है। शुकदेव जी का मार्मिक शिख-नख-वर्णन, 'श्रीमद्भागवत' तथा 'पंचाध्यायी' की महत्ता, वृंदावन का रमणीय चित्रण आदि उल्लेखनीय परिवर्द्धन इस के प्रारंभ में किए गए हैं। इस अध्याय के समाप्त होते होते कामदेव भी आता है। कृष्ण उस के मन को मथ देते हैं जिस से वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ता है और रति उसे ले कर भाग जाती है। दूसरे अध्याय में गोपियाँ लताओं तथा वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं और उन्मत्तो की भाँति अपने को कृष्ण समझ कर उन की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करती हैं। तृतीय अध्याय में चिरहाकुल गोपियों का, चतुर्थ में गोपी-कृष्ण-मिलन का तथा पंचम में रास और जल-क्रीड़ा का आमोद-पूर्ण वर्णन है। इन अध्यायों में कवि ने 'भागवत' की कथा का ही भावानुसरण किया है यद्यपि व्यक्तिगत रुचि के कारण कुछ प्रसंगों के वर्णन घट-बढ़ गए हैं। द्वितीय अध्याय में गोपियाँ कृष्ण की लीलाओं का जो अनुकरण करती हैं वह नंददास की कृति में संक्षिप्त रूप में ही है किंतु पंचम अध्याय में कवि ने रास-विहार तथा जल-क्रीड़ा का जो

वर्णन किया है वह मूल में वहीं अधिक विस्तृत रूप में है।

‘मिद्वान पचाध्यायी’ ‘रासपंचाध्यायी’ का सहायक ग्रंथ सा प्रतीत होता है। इस ग्रंथ में ‘रासपंचाध्यायी’ की कथा को कवि एक प्रकार से फिर दोहराना है। विषय साम्य होने के कारण स्वभावतः इस के अनेक स्थान ‘रासपंचाध्यायी’ से मिलते-जुलते हैं। इस में कृष्ण के देवत्व पर विशेष बल देने हुए कवि रास-विहार की अलौकिक महिमा प्रदर्शित करता है। अपने पाठकों को वह कई बार यह चेतावनी देता है कि रास की कथा में सामान्य श्रुतार्थ के भावों का आरोप करना भूल है। इस ग्रंथ को पढ़ने में यह प्रतीत होता है कि ‘रासपंचाध्यायी’ की रचना होने के बाद नीचे ही उस की आलोचना भी प्रारंभ हो गई होगी और तभी यह ग्रंथ लिख कर कवि ने अपने पक्ष का समर्थन करने की आवश्यकता समझी होगी।

‘दशम स्कंध’ में ‘श्रीमद्भागवत’ दशम स्कंध के प्रथम २६ अध्यायों का उल्लास है अतः इस का नाम कुछ भ्रामक अवश्य है। ‘भागवत’ में इस स्कंध में ६० अध्याय हैं और पूर्वार्द्ध की कथा अध्याय ४६ के बाद समाप्त होगी है। फलतः इसे ‘दशम स्कंध पूर्वार्द्ध’ भी नहीं कहा जा सकता है। इस में भगवान् कृष्ण के जन्म से ले कर रास-विहार की प्रारंभिक लीला तक की कथा मिलती है। इस कथा का द्रम मूल के अनुरूप ही है। यद्यपि कुछ स्थानों पर कवि ने मूल कथा का अद्भुतवाद भी किया है तथापि सम्यक्गणितया वह भावानुसरण ने ही सतोष करता है। ‘श्रीमद्भागवत’ में सुगता करने पर इस में चार प्रकार के अंतर मिलते हैं—

(१) ‘भागवत’ के जिन अंशों में गंकराचार्य द्वारा प्रवृत्ति अविद्या तथा माया के मिद्वानों का प्रतिपादन अथवा समर्थन होता है उन्हें कवि ने निम्नलिखित छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ ‘भागवत’ के अध्याय ४ में जब योग-साधक उस को यह सूचना दे कर प्रेरित हो जाती है कि उस का मारने का जमाना नहीं अन्यथा पैदा हो चुका है तब वह आश्चर्यान्वित हो कर अपने

दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप करने लगता है। वह कहता है कि अब मुझे ज्ञात हुआ कि देवता भी भूठ बोलते हैं<sup>१</sup>। तदनंतर वह देवकी और वसुदेव को इस प्रकार समझाता है—

“हे महाभागो तुम दोनों पुत्रों के लिये शोक न करो। उन्होंने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैव के वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते। जैसे मिट्टी से घट आदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं, पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसी प्रकार देहादि की उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविद्युत ही रहता है। जो लोग यथार्थ रूप से इस तत्त्व को नहीं जानते उन्हीं को देहादि असत् पदार्थों में आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रातबुद्धि से भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है<sup>२</sup> . . . ।”

इस समस्त प्रसंग को कवि ने छोड़ दिया है क्योंकि वल्लभ संप्रदाय में इस प्रकार की विचारावली का पूर्ण विरोध किया गया है।

(२) ‘भागवत’ के कुछ प्रसंगों को कवि ने संभवतः अनावश्यक विस्तार-भय के कारण भी नहीं ग्रहण किया है। तृतीय अध्याय में कृष्ण देवकी से उस के पूर्व जन्म की वह कथा कहते हैं जिस में उन्होंने ने उस के तप से प्रसन्न हो कर उस का पुत्र होना स्वीकार किया था<sup>३</sup>। ‘दशम स्कंध’ के तृतीय अध्याय में वह कथा नहीं है।

(३) ‘दशम स्कंध (पूर्वार्द्ध)’ के संपादक श्री कर्मचन्द गुग्गलानी ने उक्त ग्रंथ की भूमिका में यह बतलाया है कि नंददास ने अपने ग्रंथ में ‘श्रीमद्भागवत’ के टीकाकारों के कुछ भावों का भी समावेश कर लिया

<sup>१</sup> दे० ‘दशम स्कंध’, अध्याय ४, पंक्ति २४ तथा ‘श्रीमद्भागवतभाषा’ १०-४-१७

<sup>२</sup> ‘श्रीमद्भागवतभाषा’, १०-४-१८-२०.

<sup>३</sup> वही, १०-३-३२-४५.

है। उन के अनुसार 'दशम स्कंध' में श्रीधरस्वामी की 'भावार्थदीपिका', श्रीमच्छ्रीयोगेश्वरी कृत 'द्वैपावनापिरी' और श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत 'भुवोपिरी' में भी बंध ने सहायता ली है। नंददास अपने ग्रंथ को पुष्टि-मार्गीय सभी उपग्रंथों में समादृत कराना चाहते थे इसी से उन्होंने ने उन आचार्यों के भावों को अपनाया है। यह बतलाया गया है कि वल्लभा-चार्य जी के अनुसार 'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध में 'निरोध' का वर्णन है तथा श्रीधरस्वामी के मत में उस में 'आश्रय' का वर्णन है। 'निरोध' के अर्थों में भी दोनों आचार्यों में मतभेद है। नंददास ने दोनों के मतों का समावेश कर लिया है।

(४) कनिष्ठ परिवर्द्धन 'श्रीमद्भागवत' के वर्णनों को अधिक पूर्ण तथा रोचक बनाने के विचार से भी किए गए हैं जैसे प्रथम अध्याय में नवरात्र की प्रवृत्ति में किंचित विस्तार कर दिया गया है। इसी भांति कुछ श्लोकार्थिक उक्तिर्या भी यत्र तत्र जोड़ दी गई है। ये परिवर्तन सामान्य ही हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के मूल पाठ तथा परिशिष्ट १ (ग) में कवि कृत फुटकर पद संगृहीत हैं। उन में अधिकांश कृष्ण-कथा से संबद्ध विभिन्न अवसरों तथा उत्सवों पर गाए जाने वाले पद हैं। इन में होली, वसंत, भूला आदि गानंदोत्सवों का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से मिलता है। गुरु तथा गमुना की स्तुति में भी कुछ गीतात्मक रचनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

नंददास की रचनाओं की वर्ण्यवस्तु का जो स्थूल परिचय ऊपर दिया गया है उन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन के काव्य का प्रधान लक्ष्य गोपी-कृष्ण के प्रेम को व्यक्त करना ही था। उन के भक्त-हृदय के काव्या-कान का अतिशय गोपियों के निःसीम तथा डमड़ते हुए प्रेमसागर में विलीन

'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति ३५-४८

'दशम स्कंध', अध्याय १, पंक्ति १२०-१२५

हो जाता है। कवि यह स्पष्टतया स्वीकार करता है कि गोपियों का प्रारंभिक प्रेम वासनामय है<sup>१</sup>—उस के मूल में मानव-हृदय की स्वाभाविक पाशविक वृत्तियाँ अंतर्हित हैं। वह कृष्ण के ईश्वरत्व से नहीं बरन् उन की अनुपमेय रूपमावुरी से उन्मत्त होने पर प्रादुर्भूत होता है। परंतु ब्रह्मादि से ले कर कीट पर्यंत में अनुप्रवृष्ट समस्त सृष्टि का सृजन तथा पालन करने वाले परम पुरुष कृष्णचंद्र की ओर उन्मुख होते ही वासनाओं का विष जाता रहता है। उन में मनुष्य को पीड़ित करने की शक्ति ही नहीं रह जाती है। यही नहीं, असत् वृत्तियों के साथ ही सत् वृत्तियाँ भी भस्मीभूत हो जाती हैं। मुरली की मादक पुकार सुनने पर भी जो गोपियाँ गृहत्याग कर कृष्ण से न मिल सकी उन्हो ने जिस अपार दुःख का अनुभव किया उस के द्वारा करोड़ों वर्षों तक नरक-यातना भुगताने वाले पापी को एक क्षण में भुगत डाला। पुनः प्रियतम की छवि की कल्पना कर के जब उन्होंने ने उन का मानसिक परिरंभन किया तो उन्हें उन अनंत स्वर्ग-सुखों का अनुभव हुआ जिस के द्वारा उन के समस्त पूर्वसंचित शुभ कर्मों का पुण्य भी विनष्ट हो गया—

परम दुसह श्रीकृष्ण-विरह-दुख व्याप्यो जिन मैं ।

कोटि बरस लगि नरक-भोग-अघ भुगते छिन मैं ॥

पुनि रंचक धरि ध्यान पियहि परिरंभ दियौ जब ।

कोटि स्वर्ग-सुख भुगति, छीन कीने मंगल सब<sup>२</sup> ॥

इस रीति से पुण्य तथा पाप दोनों से रहित विकारहीन आत्माएँ परम आत्मा कृष्ण से मिल कर मधुर रस का अखंड अनुभव करती हैं। गोपी-कृष्ण का प्रेम प्रेम ही नहीं है, वह 'परम प्रेम' है। गोपियाँ यदि लोकलाज तथा सांसारिक बंधनों की सुदृढ़ शृंखलाओं को तोड़ कर कृष्ण-

<sup>१</sup> 'सिद्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २१७-२१८

<sup>२</sup> 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति १२७-१३०

मिलन के हेतु दीर्घ पड़ती है तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् के परम प्रेम के सामने कोई विघ्न-बाधा टिक ही नहीं सकती। इस प्रेम की विशेषता माधन में न हो कर साध्य में परिलक्षित होती है। श्रुतियों द्वारा प्रवर्तित कर्मकांड की नीम्स क्रियाओं का पालन करने वाला व्यक्ति जिन समय ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है क्या तब भी वह उन्हीं भ्रजानमयी क्रियाओं की ओर दृष्टिपान करता है ? सुवा आदि यज्ञ-विधियों के संपादन की वस्तुओं का महत्त्व यज्ञ करने के समय तक ही सीमित है। यज्ञ-कर्म करने के फलस्वरूप जब स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है तब इन वस्तुओं की ओर कोई प्रांथ उठा कर भी नहीं देखता—

श्ररज्या, मरवा, सुवा, जग्य-साधन अविसेखै ।

नरग जाड, सुख पाड, बहुरि को तिन तन देखै ॥

कहा जाता है कि नाप्रदायिक सिद्धांतों के अनुसार गोपी-कृष्ण का प्रेम परकीया प्रेम ही है क्योंकि गोपियाँ कृष्ण की विवाहित स्त्रियाँ थी। पुष्टिमार्गीय आचार्यों का इस विषय में जो भी मत हो, पुष्टिमार्गीय कवियों की रचनाओं में उन बात को नहीं स्वीकृत किया गया है। नददास ने एक स्थान पर स्पष्ट रूप से कहा है कि परकीया प्रेम ही प्रेम की चरम सीमा है—

रस में जो उपपत्ति-रस आही । रस की अवधि कहत कवि ताही<sup>१</sup> ।

गोपियों के सामूहिक प्रेम के अतिरिक्त राधा तथा रुक्मिणी के वैयक्तिक प्रेम का भी कवि ने चित्रण किया है। जीवन की साधारण परिस्थितियों के अधिन निष्ठ होने के कारण इस प्रेम की प्रभावात्पादकता भिन्न कांठि की है। इन में राधा और रुक्मिणी दोनों ही अविवाहित कन्याएँ हैं। दोनों के एतन्नात्र लक्ष्य कृष्ण है। दोनों माता-पिता के अनुचासन में हैं और

<sup>१</sup> 'निर्द्धांत पंचाध्यायी', पंक्ति २२३-२२४

<sup>२</sup> 'रूपमंजरी', पंक्ति १६६

फलस्वरूप सासारिक बंधनों के भीतर ही अपने को सीमित रखती हैं। इन सीमाओं के भीतर जिस प्रेम का प्रस्फुटन होता है वह असाधारण श्रेणी का नहीं है। इसी से साधारण मनुष्यों को इसे मनोगत करने के लिए किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है। परंतु नंददास ने इसे अंकित करने के लिए जिन आख्यानों को चुना है उन से इस की थोड़ी सी झलक मात्र दिखलाई पड़ती है। 'स्यामसगाई' तथा 'रुक्मिणी मंगल', जैसा कि नामों से ही प्रकट होता है, राधा-कृष्ण की सगाई तथा कृष्ण-रुक्मिणी परिणय के साथ ही समाप्त हो जाते हैं। कवि के फुटकर पदों में दांपत्य रति की कुछ भाँकियाँ अवश्य देखने को मिलती हैं किंतु वे संख्या में अधिक नहीं हैं। कदाचित् गोपी-कृष्ण के प्रेम के सामने कवि इस प्रेम को अधिक महत्त्व नहीं देता था।

अध्ययन के सुभीते के विचार से शृंगार रस को दो भागों में विभक्त किया जाता है—संयोग तथा वियोग। अन्य कवियों के समान ही नंददास ने भी संयोग शृंगार का उतना विशद वर्णन नहीं किया है जितना वियोग का। 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'भँवरगीत', 'रुक्मिणी मंगल', 'रास-पंचाध्यायी' तथा कुछ फुटकर पदों में विप्रलभ शृंगार के गभीर विश्लेषणों की छटा प्रदर्शित की गई है। जैसा कि पहले कहा गया है नंददास का प्रेम प्रधानतया रूपासक्तिमूलक ही है अतएव कृष्ण की रूपमाधुरी का चित्रण कवि ने बड़े विस्तार के साथ किया है। उन के अपूर्व शरीर के जिस अंग पर दर्शक की दृष्टि पड़ जाती है वह वही फँस कर रह जाती है—

कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग सॉवरे पिय के ।

जे जे जाकी दृष्टि परे, ते भये तित ही के ॥

कोउ जो अलक छवि उरभे, अज हूँ नाहिँन सुरभे ।

ललित लटपटी पगिया, तकि तकि तहँ तहँ सुरभे<sup>१</sup> ॥

<sup>१</sup> 'रुक्मिणी मंगल', पंक्ति १६६-१७२

एक भीति एक संग से पीछा छुटा कर जब लोगों की दृष्टि दूसरे संग पर पड़ती है तो वहाँ से भी उसे छुटकारा मिलना कठिन हो जाता है। जिस स्थान के प्रत्येक स्थान में मनुष्य भरे पड़े हैं उस से चोर चोरी कर के वहाँ भाग कर जा सकता है। यदि एक स्थान से वह किसी प्रकार बच कर निकल भी जाता है तो दूसरे स्थान पर पकड़ा जाता है। कृष्ण-छवि-मृगत की चुरा कर लाना भी असंभव है—

कोड श्रीर तं श्रीर, अंग के लोभ-लुभारे ।

भरे भवन के चोर भये, बदलत ही हारे<sup>१</sup> ॥

उन स्वामाधुर्य के स्मरणभाव ने गोपियाँ 'जड़ना' की अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। 'भैरवगीत' में एक स्थल पर कवि ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से इस बात को प्रदर्शित किया है। उद्धव जी का संदेश सुनने पर गोपियों का ध्यान उस संदेश के अभिप्राय की ओर नहीं आकृष्ट होता। उन के भावुक हृदय में उस संदेश के भेजने वाले कृष्ण के मनोमुग्धकारी रूप का स्मरण हो जाता है और वे विथिल हो कर भूमि पर गिर पड़ती हैं—

गुनि मोहन-संदेश, रूप मुमिरन हैं आयी ।

पुलकित आनन अलक, अंग आवेस जनायी ॥

बिह्वल हैं धरती परी, ब्रजवनिता मुरझाइ ।

दं जल-छोट प्रबोधहीं, ऊप्री बात बनाइ ॥

सुनौ ब्रजवासिनी<sup>२</sup> ॥

गोपियों की अजकलता इतनी बढ़ जाती है कि कृष्ण के बिना उन का जीवन ही अशक्य हो जाता है। जिस मछली के लिए जल ही जीवन है वह भला उस के बिना कैसे जी सकती है—

<sup>१</sup> 'गुह्यमनी संगल', पंक्ति १८३-८४

<sup>२</sup> 'भैरवगीत', पंक्ति २६-३०



कोउ कहै अहो दरस देत, फिरि लेत दुराई ।  
 यह छलबिद्या कही कौन पिय तुमहि सिखाई ॥  
 हम सब रस-आधीन हैं, तातें द्योतत दीन ।  
 जल विन कही कैसें जियै, पराधीन जो मीन ॥  
 विचारी रावरे<sup>१</sup> ॥

इस परवशता को भूल जाने के निमित्त वे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करती हैं। कभी तो वे मथुरा का राजत्व पाने पर कृष्ण पर उपालभ करती हैं, कभी उन की निष्ठुरता की चर्चा करती हैं, कभी उद्धव जी का अपने वाक्प्रहागे द्वारा सत्कार करती हैं किंतु इन सब से भी उन की विरहाग्नि कम नहीं पड़ती और हठात् उन्हें पुनः अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो आता है और वे सब की सब एक साथ रो पड़ती हैं—

ता पाछे इक बार ही, रोई सकल व्रज-नारि ।  
 हा करुनामय नाथ हो ! केसव, कृष्ण, मुरारि ॥

फाटि हियरौ चली<sup>२</sup> ॥

इस करुण ऋदन के सामने उद्धव जी को अपनी ज्ञान-नारिमा फीकी जैचने लगी। वे गोपियों के प्रेम की प्रशंसा करते हुए वापस जाते हैं और कृष्ण के गुणों को भूल कर गोपियों की कीर्ति का गान करने लगते हैं।

विरह-व्यजना की यह गभीरता 'रासपंचाध्यायी', 'सिद्धात पंचाध्यायी', 'रुक्मिणी मंगल' आदि कवि की अन्य प्रौढ़ कृतियों से भी प्रकट होती है। निस्संदेह यह अवश्य कहा जा सकता है कि कवि के इन वर्णनों का श्रेय बहुत अंशों में 'श्रीमद्भागवत' को है किंतु उस की वर्ण्यवस्तु से परिचय प्राप्त करते समय हम देख चुके हैं कि कवि 'श्रीमद्भागवत' की सामग्री का

<sup>१</sup> 'भँवरगीत', पंक्ति १५६-१६०

<sup>२</sup> वही, पंक्ति २६८-३००

उन्का घर के ही संतुष्ट नहीं रहा है। उस ने अपने दृष्टिकोण में वस्तु में ही परिश्रम नहीं किया, वरन् नए भावों का भी समावेश किया है। नीचे 'रुक्मिणी मंगल' में एक उदाहरण दिया जाता है।

द्वारा में अपने पयवाहक के गीघ्र वापस न आने से रुक्मिणी बहुत उद्विग्न हो उठी। कुछ समय बाद ब्राह्मण देवता आए। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार उन के प्रफुल्ल वदन को देख कर ही रुक्मिणी ने यह जान लिया कि उस का मनोरथ सिद्ध हो गया और कृष्ण गीघ्र ही आ रहे हैं। नंददास ने उस बात को दूसरा ही रूप दे दिया है। वे कहते हैं कि उस ब्राह्मण को देख कर रुक्मिणी के मुख से कोई गदगद ही न निकला। उने यह संदेह होने लगा कि कहीं ऐसा न हो कि ब्राह्मण महाशय यह कह बैठें कि कृष्ण न आवेंगे। उसी में वह सहमा कुछ पूछ न सकी—

पूछि न सकै मुख बात, दई यह कहा कहँगी।

किबौ अमृत सौ सींचि, किबौ विष देह दहँगी<sup>१</sup> ॥

उन के प्राण उन का शरीर छोड़ कर द्विज के वचनों में जा लगे और जब उस ने कृष्ण के आने की सूचना दी तो वे माना पुनः उस के शरीर में आ गए—

निकसि प्रात तिय-तन तै, द्विज के वचननि आये।

जब कह्यो 'श्री हरि आये', मनौ बहुरचौ फिरि आये<sup>२</sup> ॥

उन उदाहरण से हम यह देखते हैं कि अनिश्चय तथा तन्मयता की स्थितियों के समावेश में कवि ने इस प्रसंग का काव्योत्कर्ष बढ़ा दिया है।

विरह के भेदों के मंदथ में भी नंददास के विचार उल्लेखनीय हैं। उन के अनुसार विरह के चार भेद होते हैं। वे अपने मिय से कहते हैं—

<sup>१</sup> 'रुक्मिणी मंगल', पंक्ति १५६-६०

<sup>२</sup> यही, पंक्ति १६१-६२

प्रथम प्रतच्छ विरह तू सुनि लै, तातै पुनि पलकांतर गुनि लै ।

तीजौ विरह वनांतर भये, चौथी देसांतर के गये<sup>१</sup> ।

‘प्रत्यक्ष’ विरह में प्रियतम के अंक पर विलास करती हुई राधा प्रेमावेश के कारण कुछ भ्रमित सी हो जाती है और उन्हें यह आशंका होने लगती है कि कृष्ण से उन का विछोह हो गया है । प्रिय का मुख-कमल देखते समय पलकों के बार बार गिरने से जो व्याकुलता गोपियों को होती है उसे ‘पलकांतर’ वियोग कहा गया है । वन अथवा किसी अन्य देश जाने से जो दुःख उद्भूत होता है उसे ‘वनांतर’ अथवा ‘देसांतर’ विरह की सजा दी गई है ।

व्यावहारिक दृष्टि से प्रथम दो भेदों की समीचीनता उपहासास्पद प्रतीत होती है किंतु यदि हम इन भेदों के देने के कारण पर विचार करेंगे तो वस्तुस्थिति का ठीक पता चलेगा । सांप्रदायिक विचारों के अनुसार कृष्ण का ब्रज में अखंड निवास रहता है । स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि जब कृष्ण सर्वदा ब्रज में रहते हैं तो ब्रजवासी गोपियों को उन का विरह ही कैसे होता है ? कदाचित् इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर देने<sup>२</sup> के लिए ही उक्त चारों भेदों की कल्पना की गई है । नंददास के मित्र ‘विरहमंजरी’ के प्रारंभ में कवि से यही शंका करते हैं—

प्रश्न भई इक, सुंदर स्याम, सदा बसत वृंदावन धाम ।

याके विरह जु उपज्यौ महा, कहौ नंद ! सो कारन कहा<sup>३</sup> ॥

इस प्रश्न के उत्तर में ही कवि विरह के उपर्युक्त चारों भेदों को गिनाता है । ‘विरहमंजरी’ के बारहमासे की पृष्ठभूमि भी इसी प्रकार की विचार-शैली है । फलतः उस के वर्णन में यदि अधिक मर्मस्पर्शिता तथा हृदय-ग्राहिता न आ सकी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं ।

<sup>१</sup> ‘विरहमंजरी’, पंक्ति १२-१३

<sup>२</sup> वही, पंक्ति ८-९

संयोग शृंगार के दो अनूठे चित्र 'रासपञ्चाध्यायी' में है। पहला प्रथम अध्याय में कृष्ण के प्रतर्हित होने के पहले देखने को मिलता है। यह मिलन गंधर्व ही है। दूसरा चतुर्थ अध्याय में कृष्ण के प्रकट होने के बाद से प्रारम्भ हो कर पञ्चम अध्याय के अंत तक चलता है और यह पल्लव की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और पूर्ण है। कृष्ण-प्राप्ति के बाद जिस प्रेमोल्लास के साथ गोपियाँ उन से मिलती हैं उस की सीमाएँ निर्धारित करना शक्य है। उस का वर्णन कवि के शब्दों में ही इस प्रकार है—

पियहि निरति तिय बृंद उठी तय इकहि बेर यों ।  
घट प्राये ज्यों प्रातः, बहुरि उभयत इंद्री ज्यों ॥  
महा द्युधित को ज्यों भोजन सों प्रीति सुनी है ।  
ताहू तैं सतगुनी, सहस किधों कोटि गुनी है ॥  
दीरि लपटि गई ललित लाल, सुख कहत न आवैं ।  
मीन उछलि तर-पुलिन परे पुनि पानी पावैं ॥  
कोउ चटपटी सों कर लपटी, कोउ उर वर लपटी ।  
कोउ गर लपटी कहति भले जू कान्हूर कपटी ॥

संयोग के विनय में कवि की लेखनी पूर्ण स्वतंत्रता के साथ चलती है। संयोग अथवा नियंत्रण को वह जान बूझ कर हटा देता है क्योंकि उस के आदर्श के अनुसार आराध्य और आराधक के इस पुनीत मिलन में दोनों का पूर्ण एकीकरण बहुत आवश्यक है। परमानन्द के इस अवसर को देख कर पत्थर भी पिघल उठा, समस्त नृष्टि की क्रियाशीलता जाती रही। सूर्य, चंद्र, नक्षत्र-मंडल तथा पवन आदि सब जहाँ के तहाँ रह गए—

शब्दभूत रस रागों रास, गीत-धुनि मुनि मोहे मुनि ।  
सिला सनिल हूँ चनी, मनिल हूँ गयीं सिला पुनि ॥

पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उड़-मंडल सगरी ।

पाछे रवि-रथ थक्यौ, चलयौ नहि आगे दगरी<sup>१</sup> ॥

रास के अलीकिक क्षेत्र से हट कर कवि ने दांपत्य रति के संयोग पक्ष का जो यात्किचित् विस्तार किया है उस की मनोहारिता अपना पृथक् अस्तित्व रखती है । निम्नांकित पद में राधा-कृष्ण की पारस्परिक स्पर्धा का जिस सरलता से निपटारा कराया गया है वह द्रष्टव्य है—

बेसर कोन की अति नीकी ।

होड परी प्रीतम अरु प्यारी अपने अपने जी की ॥

न्याय पर्यो ललिता के आगे कोन सरस कोन फीकी ।

नंददास विलग जिन मानों कछु एक सरस लली की<sup>२</sup> ॥

‘वात्सल्य रति’, ‘शोक’, ‘क्रोध’, ‘भय’, ‘आश्चर्य’ आदि भावों का भी थोड़ा-बहुत वर्णन कवि ने किया है किंतु सच तो यह है कि ये वर्णन प्रायः किसी परिस्थिति के अनुरोध से हैं । उन में कवि की अंतरात्मा की पुकार की वह गूंज नहीं सुनाई पड़ती जिसे हम गोपी-कृष्ण के प्रेम के वर्णनों में सहज ही में सुन पाते हैं । ‘दशम स्कंध’ की अघासुर, वकासुर, काली नाग, गोवर्द्धन-धारण आदि विभिन्न लीलाओं में ‘भय’, ‘क्रोध’, ‘आश्चर्य’ आदि के जिन भावों का प्रदर्शन किया गया है उस का बहुत कुछ श्रेय ‘श्रीमद्भागवत’ को ही है । इन क्षेत्रों में कवि की स्वतंत्र उद्भावनाओं की जो अपेक्षाकृत कमी दिखलाई पड़ती है उसी से यह जान पड़ता है कि कृष्ण-कथा के साथ जुड़ी हुई होने के अनुरोध से ही कवि इन लीलाओं के वर्णन की ओर अग्रसर होता है ।

पुष्टिमार्ग के प्रमुख कवियों का जो अध्ययन विद्वानों ने किया है उस के फलस्वरूप हम यह कह सकते हैं कि नंददास की काव्यकला में सांप्रदायिकता

<sup>१</sup> ‘रासपंचाध्यायी’, पंक्ति ५३१-३४

<sup>२</sup> ‘परिशिष्ट’, पृष्ठ ४१६, पद १५०

की छाया सब से अधिक है। उन्हें हम बल्लभ संप्रदाय का प्रतिनिधि कवि कह सकते हैं। संप्रदाय के रूढ़ियों को जिस सुधरे तथा ग्राह्य ढंग से उन्होंने ने अपनी रचना में रखा वह अन्यत्र दुर्लभ है। स्वभावतः उन का यह प्रतिनिधित्व उन की काव्य-प्रतिभा को बराबर पीछे भी खींचता रहा जिस के फलस्वरूप कवि को भाव जगत के प्रत्येक कोने में स्वच्छदता से विचरण करने का पूर्ण अवसर न मिल सका। पुरुष और स्त्री के नीमित क्षेत्र में ही भावों तथा उद्देश्यों की जो नानाव्यात्मक जटिल परिस्थितियाँ होती हैं उन में भी वह नव को ग्रहण नहीं कर सकता था क्योंकि गोपी-कृष्ण का जो नांप्रदायिक स्वरूप था वह बराबर उस के सामने रहता था।

फ्रांसीसी विद्वान् तामी ने अपने इतिहास में लिखा है कि नंददास ने जयदेव के 'गीतगोविंद' के अनुकरण पर रचना की है। कदाचित् उन का तात्पर्य यह था कि नंददास ने जयदेव की भाषा-शैली का अनुसरण किया। श्रुतिमधुर तथा कोमलकातपदावली की सरस योजना नंददास की आध्यक्षा का वह आवश्यक गुण है जो तत्कालीन भाषा साहित्य के लिए तई बात थी। उन की भाषा का साधुर्य संस्कृत भाषा की सरल शब्दावली पर ही अवलंबित है। संस्कृत श्रवणों के आधार पर रचना करने वाला व्यक्ति संस्कृत शब्दों की मनोहारिता से प्रभावित हुए बिना रह ही नहीं सकता था—

क्यानि क्यासि ! पिय महाबाहु ! इसि बढति अकेली ।

महा विरह की धुनि सुनि, रोवन खग, मृग, बेली' ॥

अनुप्रासादि गद्यमंकारों तथा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थान्तरों ने तई हुई जिस आदर्श साहित्यिक भाषा की कवि ने सृष्टि की उस में गरम प्रवाह है, अद्भुत नंगीत है और हृदय पर चोट करने की शक्ति क्षमता है—

तूपुर, कंकन, किंकिन, करतल मंजुल मुरली ।  
 ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली ॥  
 मृदुल मुरज-टंकार, तार-भंकार मिली धुनि ।  
 मधुर जंत्र की तार, भँवर गुंजार रली पुनि ॥  
 तैसिय मृदु-पद-पटकनि, चटकनि कटतारनि की ।  
 लटकनि, मटकनि, झलकनि, कल कुंडल हारनि की ॥  
 साँवरे पिय-सँग निर्रत, चंचल ब्रज की बाला ।  
 जनु घन-मंडल मंजुल, खेलति दामिनि-माला<sup>१</sup> ॥

यह तो भाषा का वह रूप है जो कवि ने अथक परिश्रम द्वारा निर्मित किया है। इस के अतिरिक्त ब्रजभाषा के स्वाभाविक माधुर्य की भी कवि ने उपेक्षा नहीं की किंतु प्रवाह और प्रासादिकता का अनूठापन वहाँ भी विद्यमान है—

अरी बीर ! चलि जाउ, कहौ यह बिनती मेरी ।  
 जौ जीवंगी कुँवरि, बीर ! मैं करिहौ तेरी ॥  
 पाँइ लगौं, बिनती करौं, जग जस आवै तोहिं ।  
 बेगि पठै नँदलाल कौं, जीव-दान दै मोहिं ॥

रावरी सरन हौं<sup>२</sup> ॥

इतिवृत्त के वर्णनों में कवि ने प्रायः बोलचाल की भाषा का ही सहारा लिया है। भावावेश के अवसर पर जब वह इस भाषा का प्रयोग करता है तो निरलंकारिक होते हुए भी वह हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त करने में अपूर्व सफलता प्राप्त करती है। 'पूर्वानुराग' के निम्नांकित पद में भाषा भावों को सुचारु रूप से व्यक्त ही नहीं करती वरन् उन में एक अजीब जान डाल देती है—

<sup>१</sup> 'रासपंचाध्यायी', पंक्ति ४६५-४७२

<sup>२</sup> 'स्यामसगाई', पंक्ति ७६-८०

कृष्ण-नाम जब ते श्रवन सुन्यो री आली,  
 भूली री भवन हों ती बाधरी भई री ।  
 भरि भरि श्राप तेन, चित हू न परे चैन,  
 तन की दसा कछु और भई री ॥  
 जेतिक नेम-धर्म-व्रत कीने री में बहु विधि,  
 अंग अंग भई में ती श्रवनमई री ।  
 'नंददास' जाके श्रवन सुने ऐसी गति,  
 माधुरी मूरति कैयो कैसी दई री ॥

नंददास की भाषा में विदेगी गब्दावली का एक प्रकार से पूर्ण वहिष्कार मिलता है। फारसी तथा अरबी के बहुत थोड़े तद्भव शब्द प्रयत्नपूर्वक खोजने पर ही कवि की कृतियों से निकाले जा सकते हैं और वे भी ऐसे रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि उन की व्युत्पत्ति से अपरिचित साधारण पाठक जो उन के विदेगी होने का भान भी नहीं होता। विदेगी शब्दों के उदाहरण-स्वरूप 'अरदान' (फ़ा० अर्जदान), 'चरवाई' (फ़ा० चर्व), 'गार' (अ० गार) तथा 'लायक' (अ० लायक) दिए जा सकते हैं।

नंददास ने प्रधानतया चौपई, दोहा और रोला छंदों का प्रयोग किया है। उन की पंच मंजरियों तथा दशम स्कंध में चौपई तथा दोहा प्रयुक्त हुए हैं किन्तु अन्य कवियों की भाँति इन दोनों छंदों को उन्होंने ने किसी विनिष्ट नाम के अनुसार नहीं रखा है। चौपइयों में स्वेच्छानुसार कहीं कहीं दोहे भी रग दिए गए हैं। कवि ने चौपई तथा चौपाई में भी कोई अंतर नहीं रखा है यद्यपि छंद-शास्त्र के अनुसार पहले में १५ तथा दूसरे में १६ मात्राएँ होनी चाहिए। रोला छंद कवि को बहुत प्रिय था। इस छंद को उस ने जितनी सफलता के साथ रचना की है वैसी नभवतः भाषा साहित्य के किसी कवि ने नहीं की। दोहा, रोला तथा दश मात्रा की टेक के आयो-



## निवेदन

नंददास के प्रस्तुत अध्ययन का प्रधान उद्देश्य उन के समस्त प्रामाणिक काव्य-ग्रंथों को वैज्ञानिक रीति से संपादित करना ही है। कवि के जीवन तथा उस के काव्य-कौशल का जो यत्किंचित् विस्तार ऊपर दिया गया है वह प्रासंगिक अध्ययन के रूप में है। कवि की कृतियों के संपादन-कार्य के सीमित क्षेत्र में भी बहुत सी त्रुटियाँ रह गई हैं। प्राचीन साहित्यिक व्रजभाषा संबंधी जटिलताओं, अर्थ संबंधी गुत्थियों तथा धोपक आदि की अनेक समस्याओं का पूर्ण निराकरण कर लेना अत्यंत कठिन कार्य है। प्रस्तुत प्रयास में इन में से केवल कुछ का ही अंगतः अध्ययन किया जा सका है।

इस कार्य में सब से बड़ी कठिनाई हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त करने में हुई क्योंकि किसी समुचित व्यवस्था के अभाव में वे प्रायः देश के विभिन्न नगरों तथा ग्रामों में बिखरी हुई मिलती हैं और इन सभी स्थानों में जा कर पोथियों के अध्ययन करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ हैं। फिर भी, यथासंभव ज्ञात महत्वपूर्ण प्रतियों के परीक्षण का प्रयत्न किया गया है। इस संबंध में गवर्मेन्ट बैंक्सीन डीपो पटवा डांगर (नैनीताल) के अध्यक्ष राय साहब डा० भवानीशंकर याज्ञिक, एम० बी० बी० एस०, डी० पी० एच०, ने विशेष उल्लेखनीय सहायता प्रदान की है। याज्ञिक जी ने अपने स्वर्गीय पितृव्य पं० मयाशंकर जी याज्ञिक के संग्रह की अनेक हस्तलिखित प्रतियों को कई मास के लिए विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भेजने की कृपा की। कवि की कुछ कृतियों का संपादन तो इस सामग्री के आधार पर ही संभव हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिकारियों ने सभा की अप्रकाशित सामग्री की परीक्षा करने में लेखक को अनेक प्रकार की सुविधाएँ दी। इस के अतिरिक्त बाबू ब्रजरत्नदास, प० जवाहरलाल चतुर्वेदी, श्री मुरारीलाल केडिया, बाबा वंसीदास, ठा० प्रतापसिंह, श्री जगदीश सिंह

गहलौत, श्री महावीर मिह गहलौत आदि सज्जनों ने तथा भरतपुर राज्य पुस्तकालय, प्रतापगढ़ राज्य पुस्तकालय, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कांकरौली (उदयपुर), पटियाला पब्लिक लाइब्रेरी, और स्थानीय भारती भवन पुस्तकालय, म्यूनिगिपल म्यूजियम एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिकाश्यों ने नमरणीय सहायता दी है। लेखक इन सभी महानुभावों तथा संस्थाओं या आभारी हैं क्योंकि इन के सहयोग के बिना इस ग्रंथ को प्रस्तुत रूप में प्रकाशित करना संभव न था।

प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यापक श्री सतीशचंद्र देव जी ने प्रस्तुत अध्ययन की रूपरेखाओं के निर्धारित करने में अपना बहुमूल्य समय दिया है जिस से लेखक को लाभ हुआ है। श्री रामप्रसाद नायक, एम० ए० तथा श्री पृथ्वीनाथ कुलश्रेष्ठ, 'कमल', बी० ए० ने प्रस्तुत ग्रंथ के प्रूफ देखने में विशेष सहायता दी है अतएव ग्रंथ-संपादक उन का भी कृतज्ञ है।

हिंदी विभाग  
= अगस्त, सन् १९४२ }

उमाशंकर शुक्ल



नंददास



## रूपसंजरी

प्रथमहि प्रनळें प्रेममय, परम जोति जो आहि ।

रूप-उपावन, रूपनिधि, नित्य कहत कवि ताहि ॥

परम प्रेम-पद्धति इक आही, 'नंद' जयामति वरनत ताही ।

जाके चुनत-गुनन मन सरसै, सरस होइ रस-वस्तुहि परसै ।

रस परने विन तत्व न जानै, अलि विन कमलहि को पहिचानै । ५

पुनि प्रनळें परमात्म जोई, घट-घट, विघट पूरि रह्यो सोई ।

ज्यो जल भरि बहु भाजन माही, इंदु एक सब ही में छाही ।

जु कछु मानसर ससि की भाई, सो न छुद्र छिल्लर छवि पाई ।

तरनि-किरन सब पाहन परसै, फटिक मांभ निज तेजहि दरसै ।

गगनि बँद अहि-मुख विग्व होई, कदली दल कपूर होइ सोई । १०

ज्वन रूप सँग सोभा पावै, सो कुरूप ढिंग वदन दुरावै ।

एकै पट अनेक रँग गहै, नृ रँग रँग सँग अति छवि लहै ।

पुनि जस पवन एक रस आही, वस्तु के मिलत भेद भयो ताही ।

रवि-कर परसि अग्नि जिहि होई, सो दरपन जग विरली कोई ।

जगमग-जगमग करहि नग, जां जराइ सँग होइ । १५

कांच किरन कांचन गवचे, भली न कहियै कोई ॥

पैवे की प्रभु के पंकज-पग, कविन अनेक प्रकार कहै मग ।

तिन में इह एक सूच्छम रहै, ही तिहि वलि जो इहि चलि चहै ।

जग में नाद अमृत मग जैसौ, रूप अमीकर मारग तैसौ ।  
 २० गरल, अमृत, इक ठाँ करि राखै, भिन्न भिन्न करि विरलौ चाखै ।  
 खीर-नीर निरवारि पियै जो, इहि मग प्रभु पदवी पावै सो ।  
 दिष्टि अगोचर कमल जु होई, वास खोज परि पैयै सोई ।  
 इंदुमती मतिमंद पै, और नाहि निवहंत ।

नागर, नगधर, कुंवर-पद, इहि मग छुयौ चहंत ॥

२५ रस-मय सरसुति के पाँ लागौ, अस अच्छर छौ यह वर मागौ ।  
 सुंदर, कोमल, वचन अनूठे, कहत, सुनत, समुझत अति मीठे ।  
 नाहिंन उधरे गूढ़ न ऐसै, मरहट देस वधू कुच जैसै ।  
 पुनि कवि अपने मन में गुनै, मो कवित्त कोउ निरस न सुनै ।  
 रस-बिहीन जौ अच्छर सुनही, ते अच्छर फिरि निज सिर धुनही ।  
 ३० वाला-स्मित, कटाच्छ, औ लाज, अँधरे वालम के किहि काज ।  
 ज्यौ तिय सुरति समै सितकारा, निरफल जाहि वधिर भरतारा ।  
 कवि-अच्छर अरु तरुनि-कटाछे, ये दोउ सु लगि, लगै हिय आछे ।  
 जे हिय अच्छर रस नहि बिधे, ते हिय अर्जुन वान न छिधे ।  
 कविन तेई पाहन सम माने, नाहिंन पखान पखान वखाने ।  
 ३५ इहि प्रसंग हौ जु कछु बखानौ, प्रभु तुम अपनौ जस कै मानौ ।  
 तुव जस-रस जिहि कवित न होई, भीत चित्र सम चित्र है सोई ।

हरिजस-रस जिहि कवित नहि, सुने कौन फल ताहि ।

सठ कठपुतरि दुसंग दुर, सो एकौ सुख आहि ॥

अब हौं वरनि सुनाऊँ ताही, जो कछु मो उर अंतर आही ।  
 ४० धर पै इक निरभय पुर रहै, ताकी छवि कवि का कहि कहै ।

नये गौन्हर गुरुद, मु बास, जनु धर पै दूगर कैनाम ।  
 डेली बदा बदा बतराही, तिन पर केकी केनि कराही ।  
 नानन सुभग गिगड डुलत यी, गिरिधरपिय की मुकुट नटक ज्यों ।

गुड़ी उड़ी हवि देन अति, अम कछु बनि रह्यो वान ।

देवान आवत देव जनु, चढ़ि चढ़ि विमल विमान ॥

४५

आनपाम अमराज बरारी, जहँ लागि फूलत ती फुलवारी ।  
 चूभदि फूल मानन छवि भरी, अबनी उतरि परी जनु परी ।  
 बोलहि गुरु, नागि, पिक, नौनी, हरियर, चानक, पांत, कपोती ।  
 मोठी धुनि नुनि अम मन आवै, मैन मनी चटमार पढ़ावै ।  
 फावन के भार नभिन द्रुम ऐमं, संपति पाछ बड़े जन जैसं ।  
 का कटिथि कागार निकारि, मारम हंस वंस छवि छाई ।  
 निरमल जन जनु मुनि-मन आवी, परमन खन जन-पातक जाही ।  
 फूल फूदि रहे जलज सुडेने, उंदीवर, राजीव, कुसेने ।  
 पानी धर पनाग परी ऐसी, धीर फुटक भरी आगसि जैसी ।  
 बरमन की जव पीन डुलावै, तब लंपट अलि बैठि न पावै ।  
 जनु नवकारति मानिनि निदा, आन जुवति रत जान्यौ पिया ।

५०

५५

हृषीकेश प्रति पूज अग्नि, गुजत इमि परभात ।

जनु गहि-हरतगवनि भज्यो, रोचत ताके नात ॥

धर्मधोर कहै पर अट राजा, प्रगट्यो धर्म धरत के काजा ।  
 जन उर धनुष बाण-रग गोहैं, कौगति पनच भनक मन मोहैं ।  
 अमरगुन गुनिजन दान वगगने, निनि-दिन रहत पनच मंधाने ।  
 अमर जग उर उगहि प्राण, मर आवहि जन राज दुआण ।

६०



- अस अहेर नित खेलें जोई, जो देखें सो अचरिज होई ।  
 ताके इक कमनीय सु कन्या, जिहि अस जनी जननि मो वन्या ।
- ६५ नाम अनूप रूपमंजरी, अंग अंग सुभ लच्छन भरी ।  
 सो सोहति अस वैंस कुमारी, हिमगिरि घर जनु हिनवत वारी ।  
 लटक लटक खेलनि लरिकारै, लरिकपने जनु भूपन पाई ।  
 रूप मृगी की चंचल छीनी, पावन करति फिरति छवि ग्रीनी ।  
 देखि रूप घन छाया करही, पमु-पंछी सब गोहन फिरही ।
- ७० अस कछु लखिये लखन लपेटी, दुसरी गनहुँ नमुद की वेटी ।  
 ता भूपति के भवन कोउ, दीप न वारत साँझ ।  
 विन ही दीपक दीप जिमि, दिपड़ कुँवरि घर माँझ ॥  
 सहज सुगंध साँवरी अलकै, विन हि फुलेल उलेल सी झलकै ।  
 नीरस कवि जे रसहि न जानै, व्याल बाल सम बाल बखानै ।
- ७५ भौह जु चुभि रही मेरे मन ही, बालक मनमथ की जनु धनुही ।  
 छूटी खुभी सुभी जगमगी, काम-कलभ जनु दैतिया उगी ।  
 ऊजल हीन लगे अंग नीके, कंचन भूपन हूँ चले फीके ।  
 सब कोउ कहै कि अज हूँ हीनी, अंग अंग में अब कछु टीनी ।  
 जब कोउ वा तन तनक निहारै, ताको निधरक पँचसर मारै ।
- ८० लोग कहै कोउ काम-पियारी, तनुजा आहि कि अनुजा वारी ।  
 बाल बयस संधि में छवि पावै, मन भावै, मुँह कहत न आवै ।  
 नाहिन उलहे उरज दरारा, पै मधि लुठन लग्यौ मोति हारा ।  
 कुच अंकुर अंचल नहिँ बलै, नैनन माँझ लाज गहि चलै ।  
 खेलत कान तहाँ दै रहै, जहँ कोउ काम-कथा कछु कहै ।

गुन-नारी के व्याहृ बनारस, लाज गहै जब सैज मुवावे । ८५  
 बाला बसर्गोधि, रूप जनु, दीप जग्यो जग ऐन ।  
 उड़ि उड़ि परत पतंग जिमि, नर-नारिन के नैन ॥  
 दाहन जोग जानि पितु-भाता, कीनी मत्र बोलि सब ग्याता ।  
 मन्दवंत, गुनवंत, उदार, सीनवंत, जसवंत, मु दारा ।  
 प्रेम कोउ पैसै राजकुमार, ताको दीजै उहै विचारा । ९०  
 करि विचार, निज विप्र नृनारी, बार बार सब विधि समझायी ।  
 अहो विप्र ! धन लोभ न कीजै, या लाजक नाइक को दीजै ।  
 लोभी द्विज कुबद्धि अन कीनी, कूर कुहूप कुँवर को दीनी ।  
 धन भगो गो हीठ सयाना, मूरग मित्र जु अहित समाना ।  
 महन गुनज भूभरची नर आही, रचक लोभ विगारै ताही । ९५  
 दम भीड़, महचरि पछितारै, कूर विधाना कीन बनाई ।  
 मत्र जन जुरि चिन्तन करत, परत न कछू विचार ।  
 कर्म करी, कियो द्विज करी, कियो करी करतार ॥  
 निय तन रूप बदन नल्यो ऐसं, दुनिया चाद कलन करि जैसं ।  
 जूदन राउ जब उर-भुर लयो, नैसब राउ जयन-वन गयो । १००  
 धरन नगें जब दोउ नरेना, छीन परयो तब तिय मधि देना ।  
 निन्दनन नर, बालापन पानी, जोदन-नरनि किरन अधिकानी ।  
 ज्यों ज्यों नैसब-जल पुरवाने, त्यों त्यों नैन-मीन इतराने ।  
 गो शय्यान जयन वर बाला, राजति नव-निख रूप रमाला ।  
 मति जद गर-न्यान नै जाही, कूने असलन कमलन माही । १०५  
 निन्दनन पगिलन जद ननि पावै, अवृज नदि मय अनि चलि आवै ।

- इंदुमती जब भँवर उड़ावै, इंदुवदनि अन्हॉन तव पावै ।  
 पौछे डारति रोम की धारा, मानति वाल सिवाल की डारा ।  
 चंचल नैन चलत जब कौने, सरद कमल दल हू तै लौने ।  
 ११० तिनहि श्रवन विच पकरचौ चहै, अंबुज दल से लागै, कहै ।  
 नवला निकसति तीर जब, नीर चुवत वर चीर ।  
 अंसुवन रोवत बसन जनु, तन विछुरन की पीर ॥  
 अब कछु ताकौ सहज सिँगारा, बरनौ जग-पातक छय-कारा ।  
 गौर बरन तन सोभित ती कौ, औटे कंचन कौ रँग फीकौ ।  
 ११५ चंपक कुसुम कहा सरि पावै, बरन हीन, वास बुरी आवै ।  
 उबटन उबटि अंग अन्हवाई, ओपी दामिनि लोपी माई ।  
 सीस-पुहुप गूँथनि छवि ताही, मनौ मदन-मृग कानन आही ।  
 बैनी बनी कि साँपिनि आही, बुरी दीठि देखै तिहि खाही ।  
 सोहत वैदि जराइ की ऐसी, भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी ।  
 १२० भ्रुव-धनु देखि मदन पछितयौ, हर के समर समै किन भयौ ।  
 अब याके बल करौ लराई, हरौ छिनक मै हर-हरताई ।  
 बालपने पग चंचलताई, अब चलि छविले नैननि आई ।  
 इत-उत चहनि-चलनि अनुरागे, बात करन कानन सौ लागे ।  
 मोहियत दृगन के अचरिज भारे, चलहि आन तन आनहि मारे ।  
 १२५ मृगज लजे, खंजन भजे, कंज लजे छवि छीन ।  
 दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन ॥  
 नासिक-नथ जनु मनमथ पासी, हॉसी हरि देव की माया सी ।  
 मृदु कपोल छवि वरनि न जाही, भलकै अलक खुभी जिन माही ।

गंधर नयुर मधि रेन नु डारी, अरुन पाट जनु पुई पवारी ।  
 नग्न नु हंसत वसन की जोती, को है दाडिम को है मोती । १३०  
 निवृत्त-नृप छवि उभरै जोरै, जगत-कूप पुनि परं न सोरै ।  
 कंठ-नारा छवि पीक की धारा, फोक परी नव छवि संसारा ।  
 छग निवारी निखि भई वारी, जगत ठगौरी जनु इकठौरी ।  
 सति समान जे वदन कराही, असव्या कही कि तिन वधि नाही ।  
 बांक नंग मुगकि जव चहै, रह छवि सति में कहहु कहाँ है । १३५

रूपमंजरी वदन-विधु, विधना जग में टेकि ।

पग्नन दाढयो सति नममि, मानी डारयो छेकि ॥

सुंदर कर राजन रंग भीने, एक कमल के जनु विवि कीने ।  
 मानन है जु उठे कुच दोऊ, आवै न उपमा आँखि तर कोऊ ।  
 धीमान, कुम, भंभु नम माने, सग्न कबिन तेउ नहि परमाने । १४०  
 नरकरी नुन की गति विविकरी, रवनी उर-अवनी पर धरी ।  
 रोमगति अस देहि दिखाई, जनु उन तैं वैनी की भाँई ।  
 विधौ नीलमनि किकिनि माही, रोमावनि तिहि जोति की छाँही ।  
 विधौ लटी कटि दिखि वग्नारा, रोमवार जनु धर्या ग्रधारा ।  
 नग्न नोट किकिनी न्माला, मदन-मदन जनु वंदनमाला । १४५  
 पादनि मनिमय नूपुर घुनी, कंज-विंजर मनी मनमथ मुनी ।

नग्न वग्न जहै जहै तगनि, अरुन होत सो लीह ।

जनु धर्या धर्या किरै, नहै नहै अगनी जीह ॥

भुनि, नाग्न, नद मधुराई, वानि, रवनता, सुंदरलाई ।  
 सुंदर, सुगमन्य, जे गारै, नहि जनियत इत बित न आरै । १५०

दुति तिय तन अस दीन दिखाई, सरद चंद जस भलमलताई ।  
ललना तन लावन्य लुनाई, मुक्ताफल जस पानिप भाई ।  
विन भूपन भूपित अँग जोई, रूप अनूप कहावै सोई ।  
निरखत जाहि तृपति नहि आवै, तन मैं सो माधुरी कहावै ।

१५५ ठाढी होत अँगन जब आई, तन की जोति रहति छिति छाई ।  
राजति राजकुंवरि तहँ ऐसी, ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी ।  
देखत अनदेखी सी जोई, रमनीयता कहावै सोई ।  
सब अँग मिले सुठौन सुहाई, सो कहियै तन मुदरताई ।  
परसत ही जनु नाहिन परसी, अस मृदुता प्रमदा तन दरसी ।

१६० अमल कमल-दल सेज विछैयै, ऊपर कोमल बसन डसैयै ।  
ता पर सोवत नाक चढ़ावै, सो वह सुकुमारता कहावै ।

रूपमंजरी छवि कहत, इंदुमती मति कौन ।

ज्यौं निरमल निसिनाथ कौं, हाथ पसारै वीन ॥

सखि अस अद्भुत रूप निहारै, भूसति मन, कोसति करतारै ।

१६५ कहति कि कछु इक करौ उपाई, ज्यौं इह रूप अफल नहिं जाई ।  
रस मैं जो उपपति-रस आही, रस की अवधि कहत कवि ताही ।  
सो रस जौ या कुंवरिहि होई, तौ हौं निरखि जियौ सुख सोई ।  
अँ परि जौ या लाइक पेयै, सो नाइक दिखि आनि मिलैयै ।  
जाहि मिलत पुनि ऐसियौ रहै, दई अस नाइक कोऊ कहै ।

१७० जहँ जहँ नर वर, सुर वर सुने, देखि फिरी अरु मन मन गुने ।  
देखत के सब उज्जल गोरे, हार काज नहिं आवत ओरे ।

गुर-नर चाम के चाम तव, चुबहि वीच विकरात ।

जिन में रह तैने बने, छल छवीनी बाल ॥

एक मुनिगन सब लाऊक नाऊक, गिरिधर कुंवर सदा मुग्धदाइक ।

हो निय निनहि कान विधि पाऊँ, कयी या कुंवनिहि आनि मिलाऊँ । १७५

जानो संभ सगाधि लगायै, जोगी जन मन हू नहि आवै ।

निगमहि निपट अगम जो आही, अबला किहि बल पावै ताही ।

एक बीना, अर नीचे आवै, ऊँचे फल का हाथ चलावै ।

ज्या फल पैयै दूरि निवागी, हेमन्तहार करै सब हांसी ।

जो चढ़ि जानै नो फल पावै, कै फल आप दया करि आवै । १८०

एक दिन गिरि गोवर्धन जाई, गिरिधरपियप्रतिमा दिनि आई ।

तन नै यो उर-अंतर राखी, जो गुह्येव दया करि भाखी ।

नाग दिँत तै चंद बतयै, सो सूच्छम, तव ही लखि पैयै ।

ये नो द्रव उन ही उनहारी, नहि अचरिज हिनु चढ़ियै भारी ।

सत्चरि के चित चैन न परै, अनु दिन तिन सी बिनती करै । १८५

अहो पिय गिरिधर परम उदारा, करता हू के तुम कन्ताग ।

भयसागर तरिजे का यह तरि, पाई हुती किहू कम कम करि ।

मो तनि कृपति है मयि धारा, मोहनलाल लगावहु पारा ।

निर्मि-दिन तिय बिनतीकरनि, और न कछु सुहाइ ।

मन के हासन नाच के, पुनि पुनि पकरति पाइ ॥ १९०

एक दिन सवि गेव राजकुमारी, पीढी हुती कनक चित्रसारी ।

मुग्न सोम एक मुग्ध नाइक, पारी कुंवरि आपनी लाइक ।

- तन-मन मिलि तासौ अनुरागी, अधर, सधर खंडन मै जागी ।  
 लै सितकार, सखिहि घुरि गई, सहचरि निरखि ससंकित भई ।  
 १९५ क्यौ बलि बलि ! कहि छतियन लाई, दसा देखि अति संभ्रम पाई ।  
 भूत लगाइ मनू है आई, कै कछू कूर ग्रह गत माई ।  
 यह ससार असार अपारा, तामै तनक हुती आधारा ।  
 अब किहि धरिहौ, परिहौ पारा, वैर परचौ पापी करतारा ।  
 प्रात उठी तिय ललित लजौही, चितइ न सकै सहचरी सौही ।  
 २०० पूछति प्यार भरी सखि ग्याता, कहि बलि आज कहा इह वाता ।  
 लोयन लौने, ललित लजौने, चलि-चलि हँसत ह्वै कानन कौने ।  
 देखति हौ बलि नहि तुव वस के, जस कहूँ प्रीतम रस के चसके ।  
 को अस सुकृती जगत मै, जो निरख्यौ इन नैन ।  
 मो हिय जरत जुड़ाइ बलि, सीचि अमी रस बैन ॥  
 २०५ जब अति सखिन बूझनी लई, तव हँसि कुँवरि गोद लुठि गई ।  
 बात कहन कछु मन ह्वै आवै, बहुरि लजाइ जाइ, छवि पावै ।  
 कुँवरि कौ अस सुदर मुख रहै, मुख तै वात न निकस्यौ चहै ।  
 निरखि सहचरी कौ अति तपनौ, कहन लगी तव अपनौ सपनौ ।  
 एक ठाँउ इक वन है जानौ, ताकी छवि हौ कहा बखानौ ।  
 २१० आनहि रंग पुहुप मै देखे, अपनी बारी नहि तस पेखे ।  
 औरहि भाँति भँवर रव राजै, ठौर ठौर कछू जंत्र से बाजै ।  
 रूखन देखि भूख भजि जाई, यह उपखान साँच है माई ।  
 रटाहि विहंगम इमि मन हरै, जनु द्रुम अप मै वातै करै ।  
 गहबर कुज-पुंज अति सोहै, मनिमय मंडप छवि तहँ को है ।

पहन विनान वान अग वाने, चद चर्वाडि के जनु ताने । २१५

जिन तर मेन नु पेसल ऐनी, आजवान रति बेनी जैती ।

नीली नदी निकट हो वहीं, फूल फूलि नव अंबुज रही ।

एक प्रवृज निन तोंनि के, दीनी मेरे हाथ ।

सूधत सूधत नाहि हो, चली अनी के साथ ॥

नामे अग कलु वान मुहाई, सूधत मोहि ओष नी आई । २२०

तु जनु आगे तै कछु भई, ही इकनी टाढ़ी रहि गई ।

चलित भई परि भय नहि पाई, द्रुम बेनी कछु मीन से माई ।

उन से एक कांड नव कियोर नी, मनमथ हू के मन की चोर सी ।

भूमरान-भूमरान गो हिंस आर्या, नैनन मे कछु चौध मी लायी ।

मोहि हेमि वभक्त लाग्यो तहाँ, इदुमनी तेरी सहचरि कहा । २२५

हो नगाइ मुरि रही अबोली, बहुत करी पै नाहिन बोली ।

नव ज्य गुमम कुमम लै माई, मो कपोल पै ऐचि नगाई ।

मन जनु उन ही गो अनुगार्यो, गुरुजन उर डरि चोरसी भार्यो ।

मगुन वल्ल नगि प्रांच मुहाई, धीरज-गग सो ढरक्यो माई ।

प्रागे मुधि-मुधि नदी न मोही, कहू ही वरनि मुनाऊँ तोही । २३०

गउजो जु मन पिय प्रेम-रत्न, क्यों है निकम्बी जाइ ।

कुपर ज्यों चढ़ने पग्यो, छिन छिन अधिज सनाइ ॥

नगि कष्टे बारि फेरि ही टारी, रंचक कहि दनि पिय उनहारी ।

जिन नन्धरान दूहि हो पाऊँ, अपनी प्यारिहि तुरत मिलाऊँ ।

गहनि है लूयनि नमकि मर दानी, किन पयन या नपन कहानी । २३५

वाग्न विजय कीन अघाये, कागे हाथ मनोग्य आये ।



मृगतृष्णा कव पानी भई, काकी भूख मन लडुवन गई ।  
तव बोली सहचरि मुख-दाता, क्या कहियै बलि ऐसी वाता ।  
जो अनुकूल हीइ करतारा, सपने साँच करत नहिं वारा ।

२४० मृगतृष्णा हू पानी करै, मन के लडुवन भूख पुनि हरै ।  
इक हुती ऊपा मेरी अली, सपने काम कुँवरि सी मिली ।  
ऐसे लच्छन जो लखि पाई, ती सखि सीं सब बात जनाई ।  
ताकी सखी विचित्र चित्ररेखा, गई द्वारिका नूछम भेखा ।  
बुधि ही बुधि अनिरुध लै आई, परतद्ध आनि कै उपा मिलाई ।  
२४५ ऐसे ही जो तोहिं मिलाऊँ, इंदुमनी ती नाम कहाऊँ ।

प्रेम बढावहि छिनहिं छिन, बूझि बूझि उनहारि ।

ज्यौ मथि काढ़ी अग्नि कन, क्रम-क्रम देत पजारि ॥

कुँवरि कहै सखि किहि विधि कहियै, रूप वचन करि नाहिन लहियै ।  
रूप की रस जानै ये नैना, तिनहि नहिन दीने विधि वैनै ।  
२५० अरु वह रूप अनूपम जेतौ, नैनन गह्यौ गयो नहिं तेतौ ।  
ज्यौ सुंदर घन स्वाति कौ माई, चातक चंचु पुटी न समाई ।  
कह्यौ चहति पुनि नहिं कहति, रहति डरपि इहि भाइ ।

मोहन मूरति हीय तै, कहत निकसि जिनि जाइ ॥

चटपटि परी सहचरी हिये, पूछति बहुरि बलैया लिये ।  
२५५ कहन लगी तव पिय उनहारी, राजति लाज सौ राजकुमारी ।  
स्याम वरन तन अस रस भीनौ, मरकत रस निचोइ जस कीनौ ।  
मोर चंद सिर अस कछु लौनौ, मानौं अली टटावक टौनौ ।  
सोहत अस कछु बाँकी भौही, मो मन जानै, कै पुनि हौं ही ।

- बनि-बुनि गरुड कमल दल लीजै, तिन को मोती पानिप दीजै ।  
 ता मोहन के नैनन आगे, अति ! तेज अति फीके लागे । २६०
- नानिक मोती जगमग जाती, कहत जु मो मति हंती आती ।  
 धौन दगल दुनि परन न बह्यै, दामिनि सी कछु थिर ह्व रही ।  
 लाल के लाल बद्धनि छवि ऐसी, लाल निचोड़ रंगी हांड जैसी ।  
 मृगनी हाथ मुहाई माई, विनाहि बजाये राग चुचाई ।  
 नाके रूप अनूप रस, बारी ही मेरी आलि । २६५
- आज ननक मुधि परन दै, सबै कहाँगी कालि ॥  
 नुनतहि मुग्गि परी महचरी, आनंद भरी, अचभे भरी ।  
 बड़ी बेर जागी अनुरागी, मन ही माँक कहत यी लागी ।  
 दहें ही कुटिल, कर्चील, कुहिय की, कहैं यह दया सावरे पिय की ।  
 गनैक जन्म जोगी तप करै, भरि-पचि चपल चित्त को धरै । २७०
- मो चित नै उहि ओर चलावै, तो वह नाथ हाथ नहि आवै ।  
 जब मोहिनि को सी हित होई, तब कहैं जाइ पाइय सोई ।  
 दण्डन पुत्र या तिय के भाई, नंद मुवन पिय सी मिनि आई ।  
 निन्दनि रमा-रमन बिधामा, नामें वर्गी, लखी यह भामा ।  
 पज कुदार्ति को दरपन जाई, नामें मुंह भक्ति आई सोई । २७५
- सहचरि भूनी नी रहै, फनी अँग न समाइ ।  
 अंग रहै चकचाधि जिमि, मुदर नैनहि पाइ ॥  
 लुगनि लुगनि है नजनि सयानी, गुप्त की दानन बर्या मुरझानी ।  
 सौन बड़ दनि हट मुप्त न होई, नदन आहि अब नुनि नै सोई ।  
 मेरी रस अलू मुगानक, जान्यो जान विरय दिन नाइक । २८०

तब मैं इह इक देव मनायौ, सो बलि तो कौ सुपने आयौ ।  
 बहुतन बहुत भाँति तन तायौ, पै इहि नाइक बिरलै पायौ ।  
 देखि कै बलि तुव भागि बड़ाई, तातें मोहि मुरझाई आई ।  
 मुसकि कुँवरि सहचरि सौ कहै, तौ वह देव कहाँ है रहै ।

२८५. सखि कहै बलि जिहि बन तै पायौ, ते ही बन इक गाँउ सुहायौ ।  
 गोकुल गाँउ, जाउँ बलिहारी, जगमगाइ छवि जग तै न्यारी ।  
 तहँ कौ गोप नद बड़ राजा, सदा सरबदा एकहि साजा ।  
 जसुमति रानी सब जग जानी, भाग-भरी, सुर-नरन बखानी ।  
 रमा, उमा सी दासी जाकी, ठकुराइत का कहियै ताकी ।  
 २९०. तिन कौ सुत सो कुँवर कन्हाई, ताकी छवि तू दिखि ही आई ।

तिय-हिय दरपन, तन रुई, रही हुती पुट पागि ।

प्रीतम तरनि किरनि परसि, जागि परी तन आगि ॥

निरबिकार तिय हिय मैं सपने, उपज्यौ भाउ सुभावहि अपने ।  
 प्रथमहि पिय सौ प्रेम जु आही, कवि जन भाउ कहत है ताही ।  
 २९५. रूपमंजरी तिय कौ हियौ, गिरिधर अपनौ आलय कियौ ।  
 इंदुमती तहँ अति अनुरागी, ताही मैं प्रभु पूजन लागी ।  
 जहँ जहँ जो कछु उत्तम पावै, सो सब आनि कै ताहि चढावै ।  
 बान बनावै, पान खवावै, मंद हिलौर हिँडौर भुलावै ।  
 छिन छिन भाउ बढत चलयौ ऐसै, सरद द्वैज ससि कलान जैसे ।  
 ३००. भाउ बढ्यौ क्यौ जानियै सोई, और वस्तु कौ ठौर न होई ।  
 भाउ तै बहुरि हाउ छवि भई, सहचरि निरखि बलैया लई ।  
 रूप-जोति सी लटकति डोलै, सब सौ वचन मनोहर बोलै ।

प्रेम प्रेम प्रेम-उमंग अनि मोह, हेम छरी जराइ जरी को है ।  
 नैन धन जय प्रगट भाउ, ताकीं नु कवि कहत है हाउ ।  
 दाउ नै बहुरि नु उपज्यो हेना, सति कहें परम यमी रस रेला । ३०५  
 बार बार कर दगन धरै, कुतल हार सँवारची करै ।  
 अनि सिंगार मगन मन रहै, ताकीं कवि हेला छवि कहै ।  
 ना पाछे उपजी रति नई, सतिन बारि मनिमाला दई ।  
 उनिन नु पाग-आम नो करै, जानै नही कवन अनुमरै ।  
 भुग पिपास नव मिटि गई, खाइ कछु गुरुजन की लई । ३१०  
 मन की गति पिय पै इक द्वारा, समुद्र मिली जैमै गंग की धारा ।  
 उमकि ई नैन सीर भरि आवै, पुनि मुखि जाइ, महा छवि पावै ।  
 पनकि अंग गुरु-भंग जनावै, बीच-बीच मुरझाई आवै ।  
 विवरन तन अस देउ दिखाई, रूप-वेनि जैमै घाँस में आई ।  
 तनक बात जी पिय पै पावै, मी बिरियाँ मुनि तृपति न आवै । ३१५

रूपमंजरी निय हियहि, पिय भलकै उमि आइ ।

चंद्रगानि मनि मानि जिमि, परम चंद्र की भाँइ ॥

प्रगट मिलन को प्रति अरवरे, रहमि बैठि तिय जतनन करै ।  
 दगन नै उर आगे धरै, मति जहाँ भाँई पिय की परै ।  
 बाल अर्क सम विरह जनायी, निय तन तनक तप्त ह्वै प्रायी । ३२०  
 पान दे दिँत उमान नहि लेहि, मूँदे मुँह तिहि उत्तर देहि ।  
 नान उमान जो जोउ नई, बाल विगहिनी का तब कहै ।  
 जी जोउ वसन पूरा पकरावै, हाथ न छुवै निकट धरवावै ।  
 जयते पर नु दिनु जग माने, मनि मुरझाहि उगति तिय माने ।

- मन सौ कहै कुटिल तू आही, इकलौ ई उड़ि पिय पै जाही ।  
 ३७० रंचक नैनन हू सँग लै रे, मोहन मुख दिखि आवन दै रे ।  
 साँवरे पियहि सुमिरि वर वाला, भरहि उसास दुसास धिहाला ।  
 ते उसास अस अगिनि की उयी, कुँवरि कि देवी ज्वालामुखी ।  
 अंजन त्रिन दिखि नैन सुहाये, खंजन दुरे कहूँ तैं आये ।  
 देखि कुँवरि की वदन उदास, इंदु मुदित हूँ उदित अकास ।  
 ३७५ निरखि मलिन मुख, ननिन अति, फूले सब इकमार ।  
 वैरी चीन्ही जगत में, तू जिनि करि करतार ॥  
 द्वेज चंद दिखि भै भरि भारी, उगी गगन जनु काम कटारो ।  
 टूटहि तार कि अँगार बगावै, काम भूत जनु मोहि छरावै ।  
 पुनि पूरन ससि की दिखि डरी, आवत मैं लिये जनु फरी ।  
 ३८० कवन समै आयी यह सजनी, इंदु अनल वरसै सब रजनी ।  
 भली करहि जी इन दिन माही, प्रानपियारे आवहि नाही ।  
 कुँवरि कहति सखि या ससि राँडै, राहु राउ क्यों गिलि गिलि छाँडै ।  
 सखि कहै राहु अमृत जब पियी, तेरे कंत खंड विवि कियौ ।  
 उदर नहिंन जामै यह पचै, निकसि निकसि बिरही जन तवै ।  
 ३८५ कुँवरि कहै दुख खंडन माई, जरा आनि किन लेहि जुराई ।  
 कै अहरनि पर धरि मुकर, सु कर लीह घन लेइ ।  
 जब ही आनि परै तहाँ, तब ही ता सिर देइ ॥  
 इमि इमि करतहि हिम रितु आई, तामै तरनि तरुन दुखदाई ।  
 बड़ि बड़ि रैन तनक से दिना, क्यों भरियै पिय प्यारे बिना ।  
 ३९० जाड़ राँड जब अलि तन दहै, साँवरे उर घुरि सोयौ चहै ।

नैन मंदि निनि नींद न आवै, मनि वह मुपन बहुरि ह आवै ।  
 नींद न आवै नय कहै नई, नींद मनीं नहुँ सोइ हँ गइ ।  
 मनि निगु-बोचन बोलै रहै, प्रीतम अधर-दृष की नहै ।  
 गिनपति देनि दया जब आवै, भरि भरि नैनन नीर पिपावै ।  
 नय हँ मृगमद लै मृगनेनी, रहनि बैठि रचि मूरति मैनी ।  
 सीत करै, कर साजक धरै, पाजनि परि परि विनती करै ।  
 अटो चहौ मेन ! देव तुम नटे, जाके सर सिव के उर गडे ।  
 नै नन छांटन अवलन माहीं, पुण्य राउ इह पीरप नाहीं ।

३६५

निय नन बितन जु पंच सर, लगे पंच ही बाट ।

चुंकरा गांवरे पीय दिन, क्या निकलत यह नाट ॥

४००

गिन गिनु बीति, सीत रिति आई, भीत भई जस बाध नै गार्ड ।  
 एक दिन मिल निज जिय सी कहै, इहि तुपार तू क्योंहुँ न रहै ।  
 विधि नो पूत, सीत रवि ताही, जल सी जनक, जगत जस जाकी ।  
 सो खंखर हति हिम गिनु जारयो, उनै माँझ न किन हूँ उवारयो ।  
 तू को चाहि, हितू को तेरो, एक मित्र, सो नाहिन नेरो ।  
 पुनि गहचरि करि वचन सँभारा, बोली मुलकि मुधा की धारा ।  
 रहनि कि तू जी पावस बोनि, नय हो आनि मिलैहीं सीत ।  
 पावस बोनि मन्द गिनु बीती, हिम गिनु बीती सीत समीती ।  
 नय वसंत गिनु आगम आयी, नापै जई जीउ जिवायो ।  
 बिजन वसंत गया दोउ ऐसै, पावक पवन मिले जग जैसे ।

४०५

४१०

नयन जग, मनमय दिया, नया उठी नन जागि ।

निद्रि निद्रि रात, क्यों रहै, नई लपेटी आगि ॥

घर तैं डरपि सखी घर लाई, घर हू बड़ी बेर मुधि याई ।

भूत छुपै, मदिरा पियै, सब काहू मुधि होइ ।

प्रेम-सुधा-रस जो पियै, निहिं मुधि रहै न कोइ ॥

४६० वात भुनत जननी उठि घाई, बाछी पर जग आछी गाई ।  
इंदुमती पै अति रिसिआई, आलि काल्हि तैं कहाँ खिनाई ।  
चतुर सहचरी वात दुरावै, वात की वात मात नहिं पावै ।  
मोहिं वरजन बहेर तर गई, ना जानी कछु तहैं तैं भई ।  
छती लगाइ जननि अस कहै, कौन भूत जो तो तन चहै ।

४६५ गोकुलनाथ की पत हमारे, भूतन के भूतन धरि मारे ।  
इक पहिले यी अबुध ह्वै रही, पुनि निज मात वात अस कही ।  
जस कोउ मिरा-मत्त इक आही, तामें भूत लगै पुनि ताही ।  
बहुरि नारि निवारि सी लई, जननी निरखि ससंकित भई ।  
भूतावेस अवसि है भाई, दोरी कछु इक करौ उपाई ।

४७० सखि कहै, काहु बोलि किन आनी, एक मंत्र अस हौं हूँ जानी ।  
कहति है दुख अकुलानी रानी, तव लगि तू ही भाारि सयानी ।

कान लगी सहचरि कहै, जागि छबीली बाल ।

वे आये, उठि, देखि बलि ।, मोहन गिरिधर लाल ॥

उठि बैठी भई राजकुमारी, ढिँग बैठी देखी महतारी ।

४७५ मा तन चितै निपट लजि गई, जानी होइ वात जिनि दई ।  
निरखि सुता कौ सहज सुभायौ, जननी जठर जीउ तव आयौ ।  
सहचरि निपट सयानी जानी, रानी तिहि छिन अति सनमानी ।  
उर तैं काढ़ि हार पहिराई, हित अनहित सब बात जनाई ।

राशि नहीं मोहि दोस कछु नाहीं, निपट अनूप रूप इन माही ।

छिन-छिन माहि दिष्टि है जाई, छिन नाकी छिन ही मुरभाई । ४८०

नोथी बाके अंग न लगाऊँ, फूल फुगल न मूड़ चढ़ाऊँ ।

दरगत देखन दीउँ न सीही, डरी आपनी डीठि तैं ही ही ।

मा कहै मेरी को रूप सुभाऊक, सुंदर गिरिधर लाल के लाइक ।

अँ परि अपनी बर्म री माई !, भुगते बिन कोउ तीर न जाई ।

विर्गि कुँवनि जनु द्विय परि जाई, जनु याही मे कुँवर कन्हाई । ४८५

हो जानी पिय मिनन नै, विरह अधिक सुग होइ ।

मिनने मिलियै एक सी, विछरे सब ठाँ सोइ ॥

ता पाछे वसन रिनु महा, आई मो दुन कहिये कहा ।

ता मे मन नृवाई पाई, पिक बोली जनु फिरत दोहाई ।

जिमुक्त जलन देखि भय पाई, नहार(नाहर?)की सी नहरें माई । ४९०

राती राती रधिर भरी सी, विरही जन उर है निकरी सी ।

मन इन फूल फुनि अन भयो, आनि अनंग राउ जनु छर्यो ।

बहुरं कुज महल मे बने, ऊँचे द्रुम बिनान जनु तने ।

वन बाहिर जु कुज छूट छूटी, ते जनु उठी नटिन की कुटी ।

जाने धूमन नर अन मँधे, मना मदमाते हाथी वँधे । ४९५

एक राउ आगेंटक चढची, विरही मृग मारन रिस बढ़ची ।

पुन्य जी बाप, पतिच अलि लिये, पाँच बान पाँची कर लिये ।

गोपन, दहन, उचाटन, छोनन, नित मे निपट बुरी मंमोहन ।

निगन पवन नुरंग नहि आयो, बलमनि देस कुँवनि दिँन आयो ।

रूपमंजरी विनि हैमि गरी, दबन मुदान निफान अनुसरी । ५००



सो सुबास जब भौरन पाई, टूट पनिच सब तहँ चलि आई ।  
इतने हि माँझ उबरि गई माई, नातर मार, मारि तिहि जाई ।

कुसुम धूरि धूँधरि दिसा, इंदु उदय रस पौन ।

कुहु-कुहु जौ कोइल करै, विरही जीवै कौन ॥

५०५ तातै बहुरि जु ग्रीषम आई, अति भीषन कछु बरनि न जाई ।  
बढ़रे तपत, पहार से दिना, क्यौ भरिहै पिय प्यारे बिना ।  
दुपहरि तहँ डाइन सी आवै, ताहि निरखि तिय अति दुख पावै ।  
बाल के बालक जिय कहुँ चहै, कब लगि बाल दुकाये रहै ।  
अति निदाघ मै अस सुधि नाही, दादुर रहत फनी फन छाँहीं ।

५१० तातै सतगुन बिरह की आगी, रूपमंजरी तन-मन लागी ।  
चंदन चरचे अति परजरै, इंदु किरन घृत वृंद सी परै ।  
घनसारहि दिखि मुरझति ऐसे, मृगीवंत जल दरसै जैसै ।  
हार के मुतिया उर भर माही, तचि-तचि तरकि लवा ह्वै जाही ।  
दिखि दिखि इंदुमती अरवरै, थोरे जल जिमि मछरी फिरै ।

५१५ सहचरि अति अकुलानी जानी, करत सँवोध कुँवरि मृदु बानी ।  
कत सोचति सखि तू बड़ गयाता, तू जस आहि, अस न पितु-माता ।  
दोस न तेरौ, दोस न मेरौ, यह सब दोस बिधाता केरौ ।  
अब मो पै छिन जियौ न जाई, जो हौ कहौ सु करहि री माई ।  
सुंदर सुमनन सेज बिछाई, अरगज मरगज डसनि डसाई ।

५२० चंदन चरचि, चंद उगवाई, मंद सुगंध समीर बहाई ।  
पिक गवाइ, केकी कुहकाई, पपिहा पै पिउ पीउ बुलाई ।  
मधुर मधुर तू बीन बजाइ, मोहन नंद-सुवन गुन गाइ ।

भी कति कुंवरि श्रीव जव मोई, धरहगठ तव सहचरि रोई ।  
 कहत कि अहाँ यहो भिन्धिरलान, प्रभु तुम कैसें दीनदयाल ।  
 मरहरी उतरि पुनिन जो परै, जग जट नदवि दया प्रनुतारै । ५२५  
 ब्रह्म बूटि गहं जी कोई, ताहि बहत गहि राखै सोई ।  
 तुम सब लाल्य, दिनदन नादक, मुखदाइक, मुम-करन सुभाइक ।  
 अरु मुमहैं प्रसने मय कही, सो सब पूरि रही है मही ।  
 जिहि-जिहि भाति भजै जो मोहि, निहि-निहि विधि सो पूरन होहि ।  
 रत्नना यहन कुंवरि उषवानी, सहचरि दीरि उनीसा आनी । ५३०  
 ई उरीग पर सुंदर बांहीं, सुंदरि सोइ गई सुख माही ।  
 नां देई नां वह वन आही, मुपन की संपति मय अवगाही ।  
 जमुना पुनिन कल्पतरु तरे, ठाढ़े कर कन वंसी घरे ।  
 देखे मोहन गिरिधर पिचा, साँवरे जगत-सदन के दिया ।  
 निगहि निरगि निय लज्जित भई, सखि पाछे आछे दुरि गई । ५३५  
 हंसन-हंसन निय निहि डिंग आये, काम तै कोटिक ठाम सुहाये ।  
 नागि सी वह लपटनि अलबेली, अरुभी हेम प्रेम जनु बेली ।  
 नाहीं के रस ताहि मनावै, मोहन लाल महा छवि पावै ।  
 रतिता-रता सहज मुजवाटी, ऐसे नरस निरस त्वै जाई ।

नेह नरोटा नारि बी, बार बार कल्याइ । ५४०

धनराये पै पार्य, निरसीढ़े निरनाइ ॥

कोनि कोनि नादर मयु वानी, कुंवरि निहोनि कुज मै आनी ।  
 रा लखीं निहि गुंज नियाई, जनु मुख पुजन ही करि छाई ।  
 तामें मेज नु बेनन ऐसी, आनदाल रति बेली जैसी ।

- ५४५ कछु छल, कछु बल, कछु मनुहारी, लै बैठे तहँ कुजविहारी ।  
 मन चाहै रम्यौ, र तन चाहै भग्यौ, कामिनि की यह कीतुक लग्यौ ।  
 जो पारद की कर थिर करै, सो नवोढ़ वाला उर धरै ।  
 पुहुपन ही के दीपक जहाँ, जगमगि जाति लागि रही तहाँ ।  
 प्रथम समागम लज्जित तिया, अचल पवन सिरावत दिया ।
- ५५० दीप न बुझै बिहँसि बर वाला, लपटि गई पिय उरसि रसाला ।  
 भोजन भूख मिलत ही लहै, अँ परि इन सरि परत न कहै ।  
 प्रेम पुलक अंकुर तिहि काला, सो अंतर सहि सकति न वाला ।  
 चित बिबधान सहति नहि सोई, रूपमजरी अस रस भोई ।  
 चुंबन समय जु नासिका, बेसरि मुती डुलार ।
- ५५५ अधर छुड़ावन की मनी, पिय की हाहा खाइ ॥  
 सब निसि के जागे अनुरागे, रंचक सोइ गये उर लागे ।  
 तब ही भोर के लच्छन भये, तार हार सियरे ह्वै गये ।  
 दीपक फीके, फूल ऐलाने, परकिय तियन के हिय अकुलाने ।  
 कुरकुट सुनि चुरकुट भई वाला, लीने उससि उसास विसाला ।
- ५६० जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की बात ।  
 सूर उदोत करौत सम, चीरि किये विवि गात ॥  
 जागि कुँवरि अपने घर आई, अपने गौने कुँवर कन्हारि ।  
 सेज तैं उठी सुरति रस माती, सखि तन मधुर मधुर मुसकाती ।  
 सगवगि अलकै श्रमकन भलकै, सोभित पीक भरी दृग पलकै ।
- ५६५ राजत नैन पीक रस पगे, हँसि हँसि हरि प्रीतम मुख लगे ।  
 फूल माल जो पिय पै पाई, कुँवरि के कंठ चली सो आई ।

नद नै रूपमंजरी आना, छिन-छिन औरै रूप रसाला ।  
पारन पननि पितन होइ सीनी, पाहन तै परमेसुर हीनी ।

निहूँ जान मै प्रगट हरि, प्रगट न इहि कलिकाल ।

तानै मयने ओट दै, भेटे गिरिधर लाल ॥

५७०

जो बांछति ही रति दिन, सो कीनी करतार ।

मत्ता मनोरथ-निधु तरि, सहचरि पहुँची पार ॥

एति विधि कूँवरि रूपमंजरी, सुंदर गिरिधर पिय अनुसरी ।

एंदुर्गता तानी सहचरी, सो पुनि तिहि संगति निस्तरी ।

निन की उह लीला रस भरी, 'नंददास' निज हित कै करी ।

५७५

जो उह चिन दै मुन-मुनारै, सो पुनि परम प्रेम पद पावै ।

जदनि अगम तै अगम अनि, निगम कहन हैं जाहि ।

नदनि रैनीले प्रेम नै, निपट निकट प्रभु आहि ॥

कयनी नाटिन पाड्यै, पैयै करनी सोड ।

आवन दीपक ना बरै, बारे दीपक होइ ॥

५८०

—

- ४० ताहि पहिरि कै कनक अटारी, पौढि रही भरि आनंद भारी ।  
 रही हुती रजनी कछु थोरी, जागि परी सहजहि वर गोरी ।  
 द्वारावति लीला सुधि भई, ताही छिन सौं विकल ह्वै गई ।  
 दिष्टि परि गयी चंदा गैन, लागी ताहि सँदेसी दैन ।  
 • द्वादस मास विरह की कथा, विरहिनि को दुखदाइक जथा ।
- ४५ छिनक माँझ वरनी इहि वाल, महा विरहिनी ह्वै तिहि काल ।  
 निपट अटपटी, चटपटी, ब्रज की प्रेम वियोग ।  
 अजहँ नहि सुरभे जहाँ, उरभे वड़े बड़े लोग ॥

### मासवर्णन

#### चैत

- चैत चली जिनि कंत, वार वार पाँ परि कह्यौ ।  
 निपट असंत वसंत, मैन महा मैमंत जहँ ॥
- ५० तदपि न रहे चले ई चले, कहियौ चंद भले जू भले ।  
 तब हीं कोकिल कुहु कुहु कियौ, सुनतहि डहकि वहकि गौ हियौ ।  
 जनु किलकार मैन मुहिं दर्ई, जु कछु कहति ही सोई भई ।  
 मदन जाल गोलक से भौरा, फिरि गये ऊपर ठौरहि ठौरा ।  
 सुखद जु हुतौ तिहारे संग, अब वह वैरी भयौ अनंग ।
- ५५ नव पुहुपन के धनुष बनाये, मधुप पाँति तिहि तंत चढाये ।  
 नूतन नूतन अंकुर वान, तकि तकि भरम करै संधान ।  
 अरु यह त्रिगुन पवन कित हूँ कौ, पुहुप-पराग लिये कर बूकौ ।  
 फाग सौ खेलत बन बन फिरै, रस-अनरस सब काहू भरै ।

पान्चवान के वान समान, तिन अति चंचल किये परान ।

जगत्तरजिमि जल-भीर मै, परसत नाहिन पीर । ६०  
विछुरि परै जव नीर तै, तव जानै गुन नीर ॥

### वैसाख

आवहु बलि वैसाख, दुख-निवरन, मुख-करन पिय ।

उपजी मन अभिनाख, वन-विहरन गिरिधरन संग ॥

कुनुम धूरि धूधरी सु कुजै, मधुकर निकर करत तहँ गुजै ।  
गुहि गुहि नवन मालती माल, मुहि पहिरावौ मोहनलाल । ६५  
ननिन लयंग नवन की छाँही, हँमि बोली, डोली गलवाँही ।  
पुनिन कालिंदी की अति रमि, त्रिगुन पवन ही की तहँ गंमि ।  
किमलै-नेत्र सु पेमल कीजै, सिर तर सुमन-उसीसा दीजै ।  
इक पट ओटि, पीढ़ि मुख कीजै, आवहु बलि छिन छिन छवि छीजै ।  
द्रुम लपटी जु प्रकुल्लिन बेली, जनु मुहि हँसति सु देखि अकेली । ७०  
जौ कवहुँ पिय ध्यानहि धरी, परिभन, चुवन पुनि करौ ।  
रंचक नुन, बहुरी दुख भारी, कहियो समि यह दसा हमारी ।

एहि विधि बलि वैसाख यह, वीत्यौ मुख-दुख लागि ।

तइसी भई नुहार की, छिन पानी छिन आगि ॥

### जेठ

तनक न ग्ही अमँठ, तुम बिन नंदकिमोर पिय । ७५

निपट निनज यह जेठ, धाइ धाइ बबुवन गहँ ॥

नृप के तपन तपन अति दर्द, घर-वन, अनल-मई सब भई ।

इंद्र कोष कीनी ब्रज अबै, जल-व्याकुल गोकुल है सबै ।  
 आवहु बलि बिलंब जिनि करौ, बहुरथौ गोबरधन कर धरौ ।  
 एक बार ब्रज आवन कीजै, बिरह-विधा की औषधि दीजै ।

१२० प्राण रहे घट आइ इमि, जिमि जव अंकुर तोइ ।  
 अन-आवन जु प्रबल पवन, भर परिहै पिय सोइ ॥

### कुआर

कहियौ उड़प उदार, सुदर नंदकुमार सौ ।

अति कृश कीनी क्वार, हार भार तैं डारि दिय ।

खंजन प्रगट किये दुख-दैन, संजोगिनि तिय के से नैन ।  
 १२५ निरमल जल अंबुज जहँ फूले, तिन रस लंपट अलि-कुल भूले ।  
 सुधि आवत वा मोहन मुख की, कुटिल अलकजुत सीमा सुख की ।  
 मोरन नूतन चँदवा डारे, तिनहि देखि दृग होत दुखारे ।  
 आवहु बलि ते सिर पर धरौ, पंख पुरातन हाँते करौ ।  
 सोंभ समै बन तै वनि आवौ, गोरज मंडित वदन दिखावौ ।  
 १३० वा छवि बिन ये नैन दुखारे, जरत है महा बिरह-जुर जारे ।  
 और ठौर की आगि पिय, पानी पाइ बुभाइ ।  
 पानी मै की आगि बलि, काहे लागि सिराइ ॥

### कातिक

प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहि आइहौ ।

तौ ये चपल परान, पिय तुम हीं पै आइहै ॥

१३५ अहो चंद ! बलि चलि जिनि मंद, जाहु बेगि जहँ पिय नंद-नंद ।

समै पाउ कटियो अरुगाड, जेमे बलि मन तुम्हे गुहाट ।  
 दाई सरद गुहाट राति, प्रफुलित बेलि, मल्लिका, जानि ।  
 लयिन उहे उरगज सदा कौ, रहत अखंडल मंडल जाकी ।  
 छटि गी छवि विमल चाँदिनी, सुभग पुलिन, मु कलिद-नदिनी ।  
 नीतल मृदुल दानुका सच्च्यी, जमुना मु कर तरगन रच्यौ ।  
 कल्यणन वरे मंजुन मुरली, मोहन अवर-मुधारस जुगली ।  
 गटे हँ पिय बहुरि बजावौ, ना करि ब्रज सुदरी बुलावौ ।  
 गनि गेली पिय गम-विलास, परिरंभन, चुवन, मृदु हास ।  
 गहज सुगंध साँवरी बाहु, कंठनि मेलि मिटावौ दाहु ।

१४०

पजरि पन्त मय अंग अव, चोवा-चंदन लागि ।

१४५

विधि गति जद विपरीत तव, पानी हू मै आगि ॥

### अगहन

अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि ।

दीजं दग्गन दान, उगहन हीड जो पुन्य बल ॥

विछग्न जोग बनि गयो आइ, विरह-राहु की परि गी दाइ ।  
 पूर्य वर मुमिरि गिन भर्या, मो तन-चंद आनि कै धरचौ ।  
 गिरे नु दंत विभुद गाढे, काहू पै अव कइत न काढे ।  
 कवन रहत नैनन इल मार, ते जनु चलन अमृत की धार ।  
 विष-दग्गन नु मुदग्गन आहि, रचक आनि दिखावौ नाहि ।  
 हो ननि जी गिय नदनिमोर, अयगुन कहन नग कछ मोर ।  
 तव तुन तिन मो बहियो ऐने, बहुरि न कवहू भाव जेने ।

१५०

१५५



मित्त जु अवगुन मित्त के, अनत नाहि भाखंत ।  
कूप छॉह जिमि आपनी, हिये माँझ राखंत ॥

## पूस

- विपति परी इहि पूस, अहो चंद ब्रजचंद विन ।  
सबै तापनौ फूस, विन घुरि सोये स्याम तन ॥
- १६० वड़ि वड़ि रैन तनक से दिना, क्यौ भरियै पिय प्यारे विना ।  
महा वकी ज्यौ आवति राति, भट दै मोहि लील ही जाति ।  
मदन डाढ़-बिच दै दै चंपै, तिहि दुख ताकौ तन-मन कंपै ।  
रवि जौ तनक न लेइ छुडाइ, तौ मोहि निसा वकी गिलि जाइ ।  
मास दिवस के हुते जो पीय, तव तुम हती हुती वह तीय ।
- १६५ अब तौ बलि बलवंत पियारे, कंस, केसि, चानूर सँघारे ।  
अहो चंद ! ब्रजचंद विन, परे सबै दुख आइ ।  
सदन अघासुर से भये, तिन तन चह्यौ न जाइ ॥

## माह

- मकर जु दारुन सीत, कहियौ ससि, पिय सौ रहसि ।  
घर आवौ हरि मीत, छिनक छती सौ लागिहौं ॥
- १७० कपि गुजा लै जतन बनावै, तिहि करि अधिक अधिक दुख पावै ।  
बेदन आन औषधी आन, क्यौ दुख मिटै जात नहि जान ।  
दिन अरु रजनी परै तुषार, सीतल महा अग्नि की भार ।  
मृदुल वेलि सी ब्रज की बाल, मुरझि चली हो गिरिघरलाल ।  
अरु कहियौ बलि पिय सौ ऐसै, देखे जात दुखित तुम जैसैं ।

जो कदों ठठि नाथ अनयं, सावरीं गिय सुपने में पयें । १७५  
 नदयि न नुन जय परियें जागि, पजरति महा पवन ते आगि ।  
 ज्यो नारट निज भाई चाहि, मुदिन होति पति मानति ताहि ।  
 प्रथम पवन पुनि आनि दुनार्व, चकई विलपि महा दुख पावै ।  
 ताहीं छिन दुख कहियै कौन, दाधे पै जिमि लागत लोन ।

मास मान के कदन करि, मास रखी नहि देह । १८०  
 नास रही घट नपटि कै, वदन चहन के नेह ॥

### फागुन

जो उहि फागुन पीउ, फागु न खेली आइ ब्रज ।  
 कै हौं, कै यह जीउ, कोउक तुम पै आइहै ॥  
 मोहो नै नलि चंदा मद, जहँ मोहन सोहन नैद-नंद ।  
 कहा करैगे गुरुजन मेरी, दुरजन क्यों न हँसी बहुतेरी । १८५  
 जाके अंग रंग है महा, ओपधि खात लाज है कहा ।  
 उहि विधि धरिक्त नही चटपटी, बात प्रेम की अति अटपटी ।  
 बहुरंगे ब्रज-नीला मुधि आरे, जामे नित्य किनोर कन्हाई ।  
 सुपने सोइ दुख पायत जैसे, जागि परे मुख होत है तैसे ।  
 नद ही कान्हू बजाई मुरली, मधुर मधुर पंचम मुर जुरली । १९०  
 अदरा मिथयन निम उठि सोर, यह खनी गवनी उहि ओर ।  
 ठाढ़े निराले कुंदर दर पांगि, बनि रही निशि की चंदन खारि ।  
 लट्ठादि पाग यहक भुकि नहीं, सो छवि परत कौन पै कही ।  
 मरनम भरे मरन जुग नैन, जिनिहि निगदि मुरभत मन मैन ।

- १९५ इकले प्रानपियारे पाये, निसि के दुख सब ही विसराये ।  
 ताकौ देखि नैन अरबरे, सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे ।  
 समाचार जानत तिहि तिय के, अंतरजामी सब के जिय के ।  
 इहि परकार 'बिरहमंजरी', निरवधि परम प्रेम रस भरी ।  
 जो इहि सुनै-गुनै, चित लावै, सो सिद्धात तत्व कौ पावै ।
- २०० और भाँति ब्रज कौ बिरह, बनै न काहू 'नंद' ।  
 जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद ॥
-

## रसमंजरी

नमो नमो आनन्द-धन, सुंदर नंदकुमार ।

रस-मय, रस-काग्न, रमिक, जग जाके आधार ॥

है जू कछुक रस इहि मंसार, ताकी प्रभु तुम ही आधार ।

ज्याँ अनेक गरिना जल वहै, आनि सब सागर में रहै ।

जग में कौड कवि बरनी काही, सो जस-रस सब तुम्हरी आही । ५

ज्याँ जलनिधि तैं जलधर जल लै, बरखै, हरखै अपने कर लै ।

अग्नि नै अगन दीपक बरै, बहुरि आनि सब तामें ररै ।

ऐसै ही रूप प्रेम रस जो है, तुम नैं है, तुम ही करि सोहै ।

रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग में आहि ।

सो नव गिरिधर देव की, निधरक बरनीं ताहि ॥ १०

एक भीत हम भी अस गुन्यौ, में नाइका-भेद नहि सुन्यौ ।

अरु जे भेद नाइक के गुने, ते ह में नीके नहि सुने ।

हाउ, भाउ, हेलादिक जिते, नति समेन समझावहु तिते ।

जद लगि उनके भेद न जानै, नवलगि प्रेम न तत्व पिछानै ।

जहँ जाकी अधिकार न होई, निकटहि वस्तु दूरि है सोई । १५

मीन कमल के डिंग ही रहै, रूप रंग रस मबुलिह लहै ।

निषटहि निरमोनिव नग जैसे, तेन हीन तिहि पावै कैसें ।

बिन जाने यह भेद नव, प्रेम न परिचै होइ ।

चरण हीन उँचे अचल, चढत न देख्यौ कोउ ॥

- चंचल नैन चलत जय कीनें, सरद कमल दल हू तै तीने ।  
 ६० तिनहिं श्रवन विन पकरगी चहै, अंगुज दल से लागे, कहै ।  
 इहि प्रकार वरसै छवि-सुधा, सो अग्यातजोवना मुग्धा ।

### ज्ञातयोवना

- सहचरि के उरजन तन चहै, अपने चहै, मुसकि छवि लहै ।  
 सखि कहै बलि ये तव कुच नये, इक ठाँ विवि संभू से भये ।  
 को सुकृती वह निज नख धरिहै, इन की नंदचूड जो करिहै ।  
 ६५ मुसकि सखी कह्यो मारै जोई, ग्यातजोवना कहियै सोई ।

### मध्या

- लज्जा मदन समान सुहाई, दिन दिन प्रेम चोप अधिकारै ।  
 पिय संग सोवन, सोड न जाई, मन मन इमि सोचै सुख पाई ।  
 सोयै प्रीतम मोहन मुख की, हानि हींइ अवलोकन सुख की ।  
 जागे तै कर-ग्रहन प्रसंग, रम्यो चहै नगवर वर संग ।  
 ७० इहि प्रकार जुवति जो लहियै, सो मध्या नाइका कहियै ।  
 छूटहि हार-विहार रस, छुयौ करै कुच हार ।  
 उत्तम मध्या जानियै, परी सु प्रेम आधार ॥

### प्रौढ़ा

- पूरन जोवन गहगहि गोरी, अधिक अनंग लाज तिहि थोरी ।  
 केलि कलाप कोविदा रहै, प्रेम भरी मद गज जिमि चहै ।  
 ७५ दीरघ रैन अधिक कै भावै, भोर कौ नाम सुनत दुख पावै ।  
 कुरकुट सुनि चुरकुट ह्वै भारी, मन मन देहि बिधातै गारी ।

अनि प्रगल्भ बेनी. रस-ऐनी. नो प्रीड़ा प्रीतम मुख-दैनी ।

जान न उठि लपटान नुठि. कठिन प्रेम की बात ।

नुर उदोन करीत नम. चीरि किये विवि गात ॥

नहें कोउ धीरा कोउ अधीरा, कोउ धीराधीरा रस वीरा । ८०

मध्या में धीरादिक लच्छन. प्रगट नहीं पै लखे विचच्छन ।

ज्यों सुंदर तन अंकुर माही, दल, फल, फूल डार सब ताही ।

मध्या में ने प्रगट जनावै, पल्लव, कली, फूल ह्वै आवै ।

### मध्या धीरा

सागराथ पिय काँ जब लहै, विग कोष के वचनन कहै ।

अगत निरुज पुंज में मोहन, तुम अति श्रमित भये पिय सोहन । ८५

दैदहु बनि ! हीं काहे वीजी, नलिनी दल विजना करि वीजी ।

रचन भाँह करेरी लहियै, सो तिय मध्या धीरा कहियै ।

### मध्या अधीरा

जागं तुम निमि प्रानपियारे, अरुन भये ये नैन हमारे ।

नपर सुवासव पिय तुम पियाँ, धूमत है यह हमरी हियाँ ।

प्रवर नपर नर लगे तिहारे, पीर होति पिय हिये हमारे । ९०

दन में श्रीफल मिलि गये तुम काँ. काम कूर मारत है हम काँ ।

वचन अविग कहै गिम भोटे, है अधीर मध्या तिय सोई ।

### मध्या धीराधीरा

प्रतिय काँ उठ नागन नहै, विग अविग वचन कछु कहै ।

अही अही मोहन मोहन पिया, नव अनुराग चुचात है हिया ।

## प्रोषितपतिका

- १३० जाकौ पति देसांतर रहै, अति संताप विरह जुर सहै ।  
दुर्बल तन, मन व्याकुल होई, प्रोषितपतिका कहियै सोई ।

## मुग्धा प्रोषितपतिका

विरह-विथा निज हिय ही सहै, सखि जन हू सौ नाहिन कहै ।  
सीतल सेज सँवारि विछावै, पौढि न सकै लाज जिय आवै ।  
गदगद कंठ रहै अकुलानी, नैनन मॉझ न आनै पानी ।  
जामिनि सँग मनसिज दुख पावै, सो मुग्धा प्रोषिता कहावै ।

## मध्या प्रोषितपतिका

- १३५ पिय बिन जवाहि मदन जुर दहै, इहि परकार सखी सौ कहै ।  
सखि हो उहै उहै कर-बलै, ऐ परि कर करिये नहि चलै ।  
बसन सोइ, कटि किकिनि सोई, छिन-छिन अधिक अधिक क्यौ होई ।  
कौन समै आयौ यह सजनी, इंदु अनल बरसै सब रजनी ।  
इहि परकार कहत जो लहियै, मध्या प्रोषितपतिका कहियै ।

## प्रौढ़ा प्रोषितपतिका

- १४० पिय परदेस धीर नहि धरै, पीर भीर कछु सुधि नहि परै ।  
तरुन अनंग तरुनि दुख बढ़्यौ, अँग अँग महा गरल जिमि चढ़्यौ ।  
विरह लहरि जब उठि मुरभावै, बाहु कौ बलय ढरकि कर आवै ।  
जनु इह बलय नाड़िका लहै, जीयति किधौ मरि गई अहै ।  
इहि परकार पेखियै जोई, प्रौढ़ा प्रोषितपतिका सोई ।

### परकीया प्रोषितपतिका

प्रान्तियाये पियहि न पेनै, मो तिय सब जग सूनी देनै । १४५  
 आन के धिंग उताम नहि लेनि, मूंदे मुंह तिहि उत्तर देहि ।  
 नपन उतासान जो कोउ नहै, परकिय विरहिनि का तब कहै ।  
 रागि जब कमल फूल पकरावै, हाथ न छुवै, निकट धरवावै ।  
 अपने कर जे विरह-जुर ताते, मति मुग्धाहि डरति तिय याते ।  
 घटा-अग्नि जिमि अंतर दहियै, परकिय प्रोषितपतिका कहियै । १५०  
 प्रेग मिटै नहि जन्म भरि, उत्तम मन की लागि ।  
 जा जुग भरि जल में रहै, मिटै न चकमक आगि ॥

### खंडिता

प्रान्तम अनत रनि नव जगे, अंग अंग रति चिन्हन पगे ।  
 भोग भयें जाके घर आवै, मो वनिता खंडिता कहावै ।

### मुग्धा खंडिता

पिय उर उरज अंक पहिचानै, कुम चिन्ह मे कछु जिय जानै । १५५  
 नय-दल छापी चितैं चकि रहै, ते प्रीतम तें पूछ्यो चहै ।  
 गिय हँसि नाहि कांठ लपटावै, मो मुग्धा खंडिता कहावै ।

### मध्या खंडिता

प्रीतम उर हूच चिन्हन चहै, जानै पर कछुवै नहि कहै ।  
 पुनि मन में नय-रेगहि देवै, मान न भरै, कनागिन देवै ।  
 चरि चंदन नै जल जो आवै, मृग धोवन मिन ताहि दुरावै । १६०  
 मन मन निमन छोड़ गिय नानी, मध्या मो खंडिता बगानी ।



### प्रौढ़ा खंडिता

भोरहि आये मोहन लाल, तिय-पद जावक अंकित भाल ।  
 नैनन-नीर नैन अवधारै, प्रात असंगल तै नहि डारै ।  
 दर्पन लै पिय आगे धरै, विग वचन बोलै, नहि डरै ।  
 १६५ ढकहु छती नख दिखियत ऐसै, रति की प्रीति कौ अंकुर जैसै ।  
 औ परि इमि दिखियत रँग भरचौ, गाढ़ालिगन टूटि है परचौ ।  
 इहि परकार कहत रिस सानी, सो प्रौढ़ा खंडिता बखानी ।

### परकीया खंडिता

पिय गर कंकन मुद्रा लहै, गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै ।  
 नमित बदन कै ठाढ़ी रहै, प्रीति भंग भय कछुव न कहै ।  
 १७० दूती पर करि नैन तरेरै, भरै उसास दुसासन डारै ।  
 टपकि टपकि दृग अँसुवाँ परै, कमल दलन जनु मोती भरै ।  
 इहि परकार प्रेम रस सानी, सो परकीया खंडिता बखानी ।  
 सब काहु सौ देखियै, लाल तिहारी प्रीति ।  
 जहँ डारौ तहँ ही बढै, अमरबेलि की रीति ॥

### कलहांतरिता

१७५ प्रथमहि पीय अनादर करै, पीछे तै पछितावै मरै ।  
 साँस भरै उर अति संताप, अरुभै, मुरभै, करै प्रलाप ।  
 सोचति, सीस धुनति जो लहियै, सो तिय कलहांतरिता कहियै ।

### सुग्धा कलहांतरिता

प्रीतम अनुनय करि कर गहै, वह लजि लपटि न तासौ रहै ।

पीछे मलय पवन जब बहै, तब पिय उर घुरि सोयी चहै ।  
मन मन नीस धनति जो लहियै, मुग्धा कलहांतरिता कहियै । १८०

### मध्या कलहांतरिता

रमन आनि अनुनय अनुनरै, रूप के गरव अनादर करै ।  
पीछे वह दुय कहति लजाई, कहे बिना हिय पीर न जाई ।  
चवित भई गहचरि सौ कहै, यात आनि अवरन मै रहै ।  
बैठि अधामून सोचै जोई, मध्या कलहांतरिता सोई ।

### प्रांढा कलहांतरिता

आये जट मोहन रंग भरे, क्या मै नैन नरेरे करे । १८५  
कल-नद गहत अनयि क्या परी, क्या कुच छुवत कलह मै करी ।  
अली नष्टि नष्ट बड़ कोई, पाई निधि जिहि कर तै खोई ।  
इति परकार प्रतापनि लहियै, प्रांढा कलहांतरिता कहियै ।

### परकीया कलहांतरिता

जाके निते पनि न मै पेये, गरये गुर हक्ये करि लेखे ।  
प्रांढ-धन मै वीन लड़ाई, नीति-सहचरी सौ बिरगाई । १९०  
लाज निनब नम नोरि ही वीनी, सरिता बाणि बूंद मम कीनी ।  
सो पिय पाउ मै अनि प्रमाने, ननि अठ विधि विकल्पै जाने ।  
रहि विनि विनपनि-प्रनयन लहियै, परकीया कलहांतरिता कहियै ।

रुनह नारिण कल रंन सौ, रुनह न कोजै काउ ।

रुनहि नौ रुनै नरे, नौ नौनी जनि जाउ ॥ १९५

## उत्कंठिता

वाँधि सकेत पीउ नहिं आवै, चिंता करि तिय अति दुख पावै ।  
 आरति करि संताप जुड़ाई, तन तोरति अरु लेति जँभाई ।  
 भरि-भरि नैन अवस्था कहे, उत्कंठिता नाइका सु है ।

## मुग्धा उत्कंठिता

२०० प्राणपिया अज हूँ नहिं आये, हौं जानी किन हीं विरमाये ।  
 लाज तै सखि कौ नाहिंन वूझै, चिंता करि मन ही मन मूझै ।  
 चकित भई घर आँगन फिरै, कौने जाइ उसासन भरै ।  
 दुख तै मुख पियरी परि आवै, मुग्धा उत्कंठिता कहावै ।

## मध्या उत्कंठिता

२०५ करै विचार मनहि मन भई, क्यों नहिं आये प्रीतम दर्ई ।  
 कै यह सखी गई नहि लैन, कै कछु डरपे पंकज-नैन ।  
 भरि आवै जब लोचन पानी, घूम परचौ तव कहै सयानी ।  
 सोचति इमि जल मोचति लहियै, मध्या उत्कंठिता सु कहियै ।

## प्रौढ़ा उत्कंठिता

२१० प्रीतम अनआये जब लहै, ठाढ़ी कुज सदन मै कहै ।  
 अहो निकुंज ! आत इत सुनि धौ, हे सखि जूथि ! बहिन मन गुनि धौ ।  
 है निसि ! मात, तात अँधियारे, पूँछति हौ तुम हितू हमारे ।  
 हो तमाल ! हो बंधु रसाल !, क्यों नहि आये मोहनलाल ।

### परकीया उत्कंठिता

जिहि मनमोहन पिय हिन माई, डकनी वन घन बसि न डराई ।  
 नाचन कवन नप मैं नहि कियो, बारिद बारि अन्हैवो लियो ।  
 मनमिज देव नेव दिड कीनी, लाज तहां मैं दछिना दीनी ।  
 नु पिय आज दृग अतिथि न भये, भोरे किन हूँ भोरे लये ।  
 यौ वन मैं मन मैं दुख पावै, परकीया उत्कंठिता कहावै ।

२१५

### विप्रलब्धा

पिय गयेत आप चलि आवै, तहें प्रीतम को नाहिन पावै ।  
 मान भरै, लानन जल भरै, पिय सहचरि सी भुकि भुकि परै ।  
 मन बैगन धरै, दुख पावै, ज्वति विप्रलब्धा नु कहावै ।

### मुग्धा विप्रलब्धा

गण्ट नोह करि करि नयि जाकी, लै आवहि निकुंज में ताकी ।  
 तहें प्रीतम को नाहिन पावै, छुनिन हीइ छवि नहि कहि आवै ।  
 नवर भोह सी मगी डरावै, मुग्धा विप्रलब्धा कहावै ।

२२०

### मध्या विप्रलब्धा

पिय सकेत आट वर वाला, पावै पियहि न रूप रसाला ।  
 आ-मृदिन नैनन चकि नहै, आधी बात बहत छवि लहै ।  
 आधी कीनी बसननि धरै, ठाटी गूट डराननि भरै ।  
 मध्य जव मन बैरागहि आवै, मध्या विप्रलब्धा कहावै ।

२२५

## प्रौढ़ा विप्रलब्धा

कुज सदन सूनी जव देखै, मखि जन हू की संग न पेखै ।  
 कुटिल कामदेव तैं उरै, वामदेव साँ विनती करै ।  
 भो सभो ! सूलिन, सिव, सकर, हर, हिमकर-धर, उग्र, भयंकर ।  
 मदन-मथन, मृड अंतरजामी, आता होहु जगत के स्वामी ।  
 २३० भरि भरि नैन विनैन मनावै, प्रौढ़ा विप्रलब्धा कहावै ।

## परकीया विप्रलब्धा

धीरज अहि के सिर पग धरै, नज्जा तरल तरंगनि तरै ।  
 तिमिर महा गज हाथन ठेलै, पति उर नाहर पाइन पेलै ।  
 इहि विधि कुज सदन चलि आवै, तहँ मनमोहन पियहि न पावै ।  
 लता कर धरै, चिता करै, साँस भरै, लोचन जल भरै ।  
 २३५ इहि परकार परखियै तिया, मु है विप्रलब्धा परकिया ।  
 धीर्ज सघन वन माँझ ह्वै, गुर डर गँवर ठेलि ।  
 पति डर नाहर पेलि पग, करै कुँवर साँ केलि ॥

## वासकसज्जा

पिय आगमन जानि वर वाला, सुरति सामग्री रचै रसाला ।  
 दूती पूछै, सखि साँ हँसै, करै मनोरथ विकसै, लसै ।  
 २४० नैननि निपट चटपटी लहियै, सो तिय वासकसज्जा कहियै ।

## सुग्धा वासकसज्जा

छिपी हार गूँथै छवि पावै, छल करि कटि किकिनी बजावै ।  
 दीप सँवारि सदन मै धरै, तिन मै तेल अधिक नहिँ करै ।

नमि कहैं मेज विछाछन मिलैं, धूपट पट गे मुसकै, चहै ।  
छिन छिन प्रीतम की मग जोई, मृगया वामकसज्जा मो है ।

### मध्या वामकसज्जा

पट्टर तार गुहि सतिहि दिखावै, कहै कि मो सम तोहि न आवै । २४५  
मिम ही मिम गट भूषन धरै, सहचरि के अभरन सौ अरै ।  
हार चित्र देनन मिम वाणा, पिय मग देखैं रूप रसाला ।  
जाके नगिन विनोकि मनोज, हँसि हँसि चूमैं वदन-सरोज ।  
छटि प्रसन्न हिय हुनमति लहियै, मध्या वासकसज्जा कहियै ।

### प्रीड़ा वासकसज्जा

प्रणटहि अंगनि अभरन मजै, सखि जन तै रचक नहि लजै । २४६  
मेज वनन नव धूपित करै, मोगम करि दुर्दिन सौ अरै ।  
नमि नौ सखै मनोग्य कहै, प्रीड़ा वामकसज्जा सु है ।

### परकीया वामकसज्जा

छन मो मुग्नि मान की स्वावै, छल ही छल गृहदीप सिरावै ।  
मोखत छल के बचन गुनावै, ना पिय की संकेत जनावै ।  
बाग बाग हँसि करवट लेइ, जोन्ह मो वदन दिखाई देइ । २४७  
मेज परौ नपर गनकावै, कर के कल कंकन खुनकावै ।  
छटि प्रसन्न नवति जो लहियै, परकीया वासकसज्जा कहियै ।

### अभिसारिका

मधै जौन पट-भूषन धरै, दिग अभिमान आप अनुमरै ।

रूप अधिक, वृधि की अधिकाई, अधिक चोप तै अधिक मुहाई ।  
 २६० उठि कै चलै पीय पै जोई, अभिसारिका कहावै सोई ।

### मुग्धा अभिसारिका

बोलन आई दूति दामिनी, चली संग सहचरी जामिनी ।  
 भूत भविष्य कौ जाननहार, कहत है वन मुभ गवन की वार ।  
 भोगुर मुख करि रटै अवारा, मंगल ह्वैहै न करि विचारा ।  
 तिया मुच मुग्धा अभिराम, अभिनर वनि जहँ सुदर स्याम ।  
 २६५ इहि विधि जाहि सखी तै आवै, मुग्धा अभिसारिका कहावै ।

### मध्या अभिसारिका

निरखि सुमुखि अभिसार की वारा, सखि संग गवनै रुचिर विहाग ।  
 तिमिर मै नील निचोल बनावै, वदन-चंद पट-ओट दुरावै ।  
 मग के सर्पन तै नहि संकै, तिन की फनि-मनि हाथन टंकै ।  
 चंद उदय चंदन तन धरै, जोन्ह सी आपुहि हँसि हँसि परै ।  
 २७० रीझ मदन जा तिय के वानै, सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै ।  
 इहि परकार जुवति जो लहियै, मध्या अभिसारिका सु कहियै ।

### प्रौढा अभिसारिका

एकाकी पिय पै अनुसरै, धनुधर मदन सहाइक करै ।  
 रजनी कौ वासर सम जानै, तामै घन जिमि दिनमनि मानै ।  
 तिमिरहि तरनि किरन सम देखै, गह्वर वन सु भवन करि लेखै ।  
 २७५ दुर्गम मगहि सुगम करि जानै, मदन मत्त डर काकौ आनै ।  
 इहि विधि मंजु कुज चलि आवै, प्रौढा अभिसारिका कहावै ।

## परकीया अभिसारिका

उरज-भार भगुन गति जाकी, परिहै दूटि लटी कटि ताकी ।  
 चनि नहि नकनि प्रेम के भारा, टारति काढ़ि मुक्ति की हारा ।  
 धमिल ग्योनि सनि कहूँ पकरावै, केनि-गमल गहि दूरि बगावै ।  
 जब अनि मिथिल होति मुकुमारा, टेकन चले वारिधर-धारा । २८०  
 जो न मनोरथ-ग्य तहें होई, क्यों पहुँचै पिय पै तिय सोई ।  
 एहि विधि मोहन पिय पै आवै, परकीय अभिसारिका कहावै ।

## स्वाधीनपतिका

जाकी पास्यं पिया नहि तजै, दिन दिन मदन-महोत्सव सजै ।  
 नव नव अंबर अभरत धरै, वन विहार रुचि पिय सँग करै ।  
 नव मनोरथ पूरत लहियै, सो स्वाधीनवल्लभा कहियै । २८५

## मुग्धा स्वाधीनपतिका

मो कटि तैनी कृग नहि भई, अग कांति कछु अनि नहि लई ।  
 उरजन नहिन गरिमता तैसी, वचन-चातुरी फुरी न वैसी ।  
 गति न मंद, नहि चननि सुहाई, नैननि नहिन वक्रिमा आई ।  
 ऐ गनि ! पिय मन मोही माही, कारन कवन मु जानत नाही ।  
 एहि विधि सनि प्रति बरनै मुधा, है स्वाधीनवल्लभा मुग्धा । २९०

## मध्या स्वाधीनपतिका

हो कछु रति-उत्पव नहि करीं, अंक धरत बरनी धनि परीं ।  
 नैग नोदन नींदी गहि रह्यो, चुंबन करत लाज जिय गहीं ।



मेरी बात अमी जिमि भावै, मोहिं गदगद गर बात न आवै ।  
तदपि न पिया पार्स्व तजि जाई, तो कहि कहा करौ री माई ।  
२९५ इहि विधि सहचरि सों कहै जोई, मध्या स्वाधीनपतिका सोई ।

### प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका

हे सखि आरन के जे पिया, बात मुनिहि सुकिया परकिया ।  
मो प्रीतम मोही की जानै, आन जुवति सपने न पिछानै ।  
इहि परकार कहै रस बोढा, मो स्वाधीनवल्लभा प्रौढ़ा ।

### परकीया स्वाधीनपतिका

प्रीतम के घर बहुत मुकीया, मांहीं सों हित मानत पीया ।  
३०० मृदु-चैनी वर वारिज-नैनी, हाम-विलास रास-रस-रैनी ।  
ऐ परि वन, पुर, अटा, अटारी, पिय की दिष्टि न मो तै न्यारी ।  
काहू सौ कछू बात न कहै, पिय की अँखियाँ संगहि लहै ।  
इहि परकार कहै जो तिया, है स्वाधीनपिया परकिया ।  
अंजन, मंजन, पट पहिरि, गर्व करौ मति कोइ ।

३०५ औरहि प्रेम सुलच्छिनी, जिहिं प्रीतम बस होइ ॥

### प्रीतमगमनी

जाकौ प्रीतम गमन्यौ चहै, भीत भई कछुवै नहिं कहै ।  
गमन विघन कहूँ मन मन सोचै, लोचन तै जल नाहिन मोचै ।  
चित ही चित चिता-रत लहियै, सो तिय प्रीतमगमनी कहियै ।

### मुग्धा प्रीतमगमनी

गमन बात पिय की जब सुनै, सुनतहि मन मै धुन ज्यौ धुनै ।

ताकी सखी गुप्त भई डोलै, कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै । ३१०  
रूप-लता सी मुरझनि लहियै, मृग्या प्रीतमगमनी कहियै ।

### मध्या प्रीतमगमनी

पिय कौ चलत जानि वर वाला, बोलै नहि कछु रूप रसाला ।  
भरै न दीर्घ सांग सयानी, नैनन माँझ न आनै पानी ।  
धरि न्हं हाथ माय के धोरै मानहुँ आयु अछर टकटोरै ।  
इहि परकार परगियै जोई, मध्या प्रीतमगमनी सोई । ३१५

### प्रौढ़ा प्रीतमगमनी

हो श्रीपति-गति पूछनि तांहीं, सत्य कहौ सदेह है मोहीं ।  
तन त्वागें ह जुवतिन कहियाँ, इह वियोग जारत की नहियो ।  
अग ये कुमुमित बोर पटीर, देत जु बंधु मरे कहूँ नीर ।  
जो परलोकहु मरल समान, क्या है देत बंधु अग्यान ।  
ऐसे कहि कै चुप ह्वै रहै, प्रौढ़ा प्रीतमगमनी सु है । ३२०

### परकीया प्रीतमगमनी

प्रानपिया कहूँ गमनन लहै, रहनि पाइ पिय माँ डमि कहै ।  
तुम हिन को दुकुन नहि किये, पत्रग फन पर मैं पग दिये ।  
पनि-द्विजदेव-मेव सब तजी, नीति तजी, कुल-लाज न लजी ।  
तिन के फल जे नरक बताये, ते सब माँ कहूँ जीविन आये ।  
तन जचता आनि तन कौ, कुंभीपाक पराभव मन कौ । ३२५  
महा जोन रंगरु जे बतायी, क्रोध रूप ह्वै नैननि आयी ।

जुगति 'आहि पिय गमनत तोहि, क्यौ न हौहि ऐसी गति' मोहि ।  
 इहि परकार कहति तिय जोई, परकिय प्रीतमगमनी सोई ।  
 चलन कहत है कालि पिय, का करिहौ मेरी आलि ।  
 ३३० बिधना ऐसै करि कछू, जैसै हौइ न कालि ॥

### नायक-भेद

नाइक बरने चारि प्रकार, प्रमदा-प्रेम बढ़ावनहार ।  
 एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन, इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन ।

### धृष्ट

करि अपराध पिया ढिँग आवै, निधरक भयौ, बात बहरावै ।  
 ताकहूँ पिया कटाछन तारै, हारन बाँधै, कमलन मारै ।  
 ३३५ मारि बिडारि द्वार पहुँचावै, सोवत जानि बहुरि फिरि आवै ।  
 चपरि सेज पै सोवै जोई, नाइक धृष्ट कहावै सोई ।

### सठ

सीस कुसुम की गूँथै माला, भालहि तिलक करै अभिवाला ।  
 भाम-भुजनि केयूर बनावै, उर बर मुकुत-माल पहिरावै ।  
 मकर-पत्रिका रचै कपोल, बोलत जाइ भावते बोल ।  
 ३४० किंकिनि-बंधन बल करि टोरै, छल करि नीबी-बंधन छोरै ।  
 इहि बिधि रमनी-रमन जो होई, कहत है कवि सठ नाइक सोई ।

### दक्षिण

जब ललना-मंडल मै आवै, अति अनुराग भरचौ छबि पावै ।  
 कहत कि ये अनेक छबि ऐना, मेरे अनगन हैं विवि नैना ।

गिन दिन इतहि निद्रेमिन कीजै, वदन वदन मुख कैसें लीजै ।  
 नैन मृदि नव निन में रहै, भीतर ही सब मुख-मुख लहै । ३४५  
 दिनियत तन रोमाञ्चित भये, मनों प्रेम नव अंकुर लये ।  
 जा नाइक में ये सुभ लच्छन, ताकां दच्छिन कहत विचच्छन ।

### अनुकूल

निज ही सिय के रस-ब्रम रहै, आन सुंदरी मुपन न चहै ।  
 करकन ठौर प्रिया जब चलै, निहि दुख ताकी हिय कलमलै ।  
 ज्यों श्री राम चले वन घन में, सिय के चलत कहत यों मन में । ३५०  
 हें अवनी ! तुम मृदु तन धरी, हो दिनकर ! तन तपत न करी ।  
 यहाँ पवन ! तुम त्रिगुन बहावी, रे नग ! मग तैं बाहिर जावी ।  
 रे दंडक वन ! नियरे आउ, चलि न सकति सिय कोमल पाउ ।  
 इहि परकार रहै रस सान्धी, सो नाइक अनुकूल ब्रवान्धी ।

### भाव

प्रेम की प्रथम अवस्था जोड़, कवि जन भाउ कहत हैं सोड़ । ३५५  
 जाके हिये भाउ सचरै, निरस वस्तु सो रसमय करै ।  
 जेमें निद्रादिक रस जिते, मधुर हीहि मधुमय मिलि तिते ।  
 भाउ बढ़ाई क्यों जानियै नोई, और वस्तु की ठौर न होई ।

### हाव

नैन बैन जब प्रगटे भाउ, ताकी मुखवि कहत हैं हाउ ।  
 मन्द-ज्योति नी लट्ठनि डोले, सब सौ वचन मनोहर बोले । ३६०

हँसै लसै, विलसे दृग-डोरे, मैन-धनुष सी भीह मरोरे ।  
इहि परकार जुवति जो लहियै, भाउ-भरी मु हाउ छवि कहियै ।

### हेला

पिय तन तनक कनखियन भाँकै, नीची कुच प्रगटै अरु ढाँकै ।  
कंदुक खेलै, सखि कहूँ ठेलै, अँग अँग भाउ उमगि छवि छेलै ।  
३६५ छिन छिन वान वनायी करै, बार बार कर दरपन वरै ।  
अति सिंगार मगन मन रहै, ताकी कवि हेला छवि कहै ।

### रति

उचित सु धाम-काम ती करै, जानै नहीं कवन अनुसरै ।  
भूख पियास सबै मिटि जाइ, गुरु जन डर कछु रंचक खाइ ।  
मन की गति पिय पै इहि ढार, समुद मिली जिमि गंगा-धार ।  
३७० तनक बात जी पिय की पावै, सी विरियाँ सुनि तृपति न आवै ।  
जदपि विघन गन आवहि भारे, ता रति-रस के मेटनहारे ।  
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै, एक रूप चित रस की गटकै ।  
स्तभ, स्वेद पुनि पुलकित अग, नैननि जलकन अरु सुरभंग ।  
तन विवरन, हिय कप जनावै, बीच बीच मुरझाई आवै ।  
३७५ इहि प्रकार जाकी तन लहियै, सो वह रग-भरी रति कहियै ।  
यह सुंदर वर 'रसमंजरी', 'नंददास' रसिकन हित करी ।  
करन-आभरन करिहै जोइ, परम प्रेम-रस पैहै सोइ ।

इहि विधि यह 'रसमंजरी', कही जथा मति 'नंद' ।

पढ़त बढ़त अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद ॥

## मानमंजरी नाममाता

नक्षत्रमणि पद्म पद्म गुरु, कृष्ण कमल-दल-नेत्र ।  
जगन्नाथ, कर्णानन्द, गोबुल जिन की ऐन ॥  
सम्भि सक्ल नहि संगकृत, जान्यो चाहत नाम ।  
निगति 'नंद', मुमति जथा, रचा नाम की दाम ॥  
गुंथति नाना नाम की, 'अमरकोश' के भांड ।  
मानवती के मान पर, मिले अर्थ सब आंड ॥

५

मान

अहंकार, मद, दर्प पुति, गर्व, स्मय, अभिमान ।  
मान राधिका कुंदरि की, सब की करत कल्याण ॥

मर्त्या

वयसा, नागिर्वा, सखी, हितू, सहचरी ग्राहि ।  
अली कुंदरि हृषिकेश की, चली मनावन ताहि ॥

१०

द्विदि

वृद्धि, भनीरा, वेमुषी, मेधा, विषना, वीय ।  
मनि नो मतो न करि चली, भनी विचच्छत तीय ॥

बानी

दासी, दाव, सरस्वती, गिरा, सारदा नाम ।  
चली नतावन भार्गवी, यवन चातुरी काम ॥

## सीघ्र

- १५ आसु, भटित, द्रुत, तूर्ण, लघु, छिप्र, सत्वर, उत्ताल ।  
तुरत चली चातुर अली, आतुर दिखि नंदलाल ॥

## घर

सदन, सकेत, निकेत, गृह, आलय, निलय, स्थान ।  
भवन भूप वृषभान के, गई सहचरी जान ॥

## कंचन

- कंचन, अर्जुन, कार्तिसुर, चामीकर, तपनीय ।  
२० अष्टापद, हाटक, पुरट, महारजत रमनीय ॥  
जातरूप के सदन सब, मानिक गच छवि देत ।  
जहाँ तहाँ नर-नारि निज, भाँई भुकि भुकि लेत ॥

## रूपा

रुक्म, रजत, दुर्वर्ण पुनि, जातरूप खजूरि ।  
रूपे की गोसाल तहँ, भूप भवन ते हरि ॥

## उज्जल

- २५ शुक्ल, शुभ्र, पांडुर, विशद, अर्जुन, सित अवदात ।  
धवल नवल ऊँचे अटा, करत घटा सौ वात ॥

## सोभा

भा, आभा, सोभा, प्रभा, सुषमा, परमा, कांति ।  
दुति न कहि परै भवन, की, सुर भूले दिखि भाँति ॥

गिरन

ग्रंथु, गमस्ति, मयूख, कर, गो, मरीच, वसु, जोति ।  
रग्नि परनि सनि-मूर की, जगमग जगमग होति ॥

३०

मोर

नीलकंठ, केकी, वरहि, मिन्वी, मिखंडी, होड ।  
मिवगुनवाहन, अहिभखी, मोर, कलापी सोड ॥  
नाचन मोर अटानि चडि, अति ही भरे अनंद ।  
छिन छिन जहें उनयो रहै, नव नीरद नैद-नंद ॥

मिह

कंठवन, पुनि केसरी, पुनि कहियै हरिजच्छ ।  
मृगपति, ह्रीषी, व्याघ्र पुनि, पंचानन, पलभच्छ ॥  
पुंडरीक, हरि, पंचमुख, कंठीरव मृगराड ।  
मिह पौरि वृषभान की, सहचरि पहुँची जाइ ॥

३५

तुरंग

बाजी, बाह. तुरंग. हय, संघव, अरव, किक्याँन ।  
तरल, तुरंगम भीर अति, नैक न पैयै जान ॥

४०

हन्ती

हन्ती, दंती, द्विख, द्विष, पक्षी, वारन, व्याल ।  
कुंजर, इन, कुंभी, करी, मन्वेरम. सुंडाल ॥



सिंधुर, अनकप, नाग, हरि, गज, सामज, मातंग ।  
इत गयंद घूमत खरे, रंजित नाना रंग ॥

### अष्टसिद्धि

४५ अनिमा, महिमा, गरिमता, लघिमा, प्राप्ति, प्रकाम ।  
वसीकरण अरु ईसता, अष्टसिद्धि के नाम ॥  
ये जु अष्ट सिद्धि कष्ट करि, सिद्धि लहै संसार ।  
सो वृषभान भुवाल के, द्वार बुहारनहार ॥

### नवनिधि

५० महापद्म, अरु पद्म पुनि, कच्छप, मकर, मुकुद ।  
संख, खर्ब अरु नील इक, अरु इक कहियै कुंद ॥  
ये नवनिधि या जगत मै, काहू विरलै दीख ।  
ते सब बल्लभराइ के, परत भिखारिन भीख ॥

### मुक्ति

५५ मुक्ति अमृत, कैवल्य पुनि, अपुनर्भव, अपवर्ग ।  
निश्च्रेयस, निर्वान पद, महासिद्धि वर-स्वर्ग ॥  
मुक्ति जु चारि प्रकार की, नहि पैयत बिन जोग ।  
ते वृषभान की पौरि भुकि, पावत पाँवर लोग ॥

### राजा

स्वामी, अधिपति, महीपति, प्रभुपति, भूपति, भूप ।  
राजा जहँ वृषभान बनि, बैठे सभा अनूप ॥

ॐ

मन्त्र, मन्त्रमन्त्र, मन्त्रीमन्त्र, मन्त्रमन्त्र, पुरदूत ।  
 कौशिक, कामव, वृषहा, मधवा, मातनि-नूत ॥ ६०  
 जिन्, पुरंदर, वज्रधन, आवंडल, रिपु-पाक ।  
 गौहैं जहैं वृषभान तहैं, को हें इंद्र वराक ॥

देवता

देव, यमर, निर्जर, विबुध, नुर, सुमन्त्र, त्रिदिवेस ।  
 वृंशरक सु विमानगति, अग्निजिह्व, अमृतेन ॥  
 विविधद, तेन्वा, वरहिमुन्व, गीर्वाण, अति आप । ६५  
 फवन देवता रंक तहैं, जहैं बैठे वनि गोप ॥

धर्म

नाम, मुधा, पीयूष, मधु, अगदराज, नुग्भोग ।  
 अमी जहाँ कान्हर-कथा, मत्त रहत सब लोग ॥

दाग

विचित्र, विकार, दाम पुनि, अनुचर, अनुग, पदाति ।  
 भृत्य किन्त जहैं मेन मे, छवि वरनी नहि जाति ॥ ७०

दागी

भुत्ता, दागी, विकरी, चोरी भरहि जु अंभ ।  
 गजन्त, मनिमय अजिन् नै, को उगवनि को रंभ ॥

## अंतहकरण

स्वांत, हृदय, मनमथ-पिता, आतम, मानस नाँउ ।  
मन मन सोचै सहचरी, भीतर किहि बिधि जाँउ ॥

## अंजन

७५ कज्जल, गज पाटल, मसी, नाग, दीपसुत सोइ ।  
लुकअंजन दृग दै चली, 'ताहि न देखै कोइ ॥

## हीरा

निष्क, पदिक, अरु बज्र पुनि, हीरा बने जु ऐन ।  
सकुचति तिन तन देखि जनु, भूप भवन के नैन ॥

## मोती

ससिगोती, मोती, गुलिक, जलज, सीपसुत नाम ।  
८० मुक्ता बंदनमाल जनु, बिहँसत सुंदर धाम ॥

## मंगल

कुज, अंगारक, भौम पुनि, लोहितांग, महिबाल ।  
मंगल से ठाँ ठाँ उदित, धरे जु दीपक लाल ॥

## सुक

उशना, भार्गव, काव्य, कवि, असुर-पुरोहित होइ ।  
गजमोती जोती जहाँ, सुक धरे जनु पोइ ॥

नछिमी

श्री, पद्मा, पद्मानया, कमला, चपला होइ । ८५  
 गिधुमुता, मग, इंदिरा, विष्णु-वल्लभा सोइ ॥  
 शाकी तेन कटाच्छ छवि, रही सब जग छाइ ।  
 सो नछिमी वृषभान घर, आपु बसी है आइ ॥

माता

अंबा, नावित्री, प्रसू, जनयत्री, मा नाम ।  
 जननी राधा कुँवरि की, वैठी मंगल धाम ॥ ८७

नमस्कार

बंदन, अभिवादन, प्रनति, नमस्कार करि ताहि ।  
 आगे चलि मुसकात अलि, जहाँ कुँवरि वर आहि ॥

सीढ़ी

आरोहन, आरोह पुनि, निश्चेती, सोपान ।  
 मनमय सीढ़ी चढ़ि चली, लखी न काह आन ॥

मुता

पुनी, दुहिता, कन्यका, ननया, तनुजा होइ । ८५  
 मुता जहाँ वृषभान की, तहाँ गई मवि सो ॥

गिज्जा

वसिष्ठ, नन्द, गिज्जा, गयन, संदेसन, मयनीय ।  
 दुग्ध-कृत नम मेल पर, वैठी नित्य रमनीय ॥

## उसीसा

- १०० उपवरहन, उपधान पुनि, कंदुक सोइ उछीर ।  
मृदुल उसीसे सौ उठँगि, बैठी मान गँभीर ॥

## कुसुम

कुसुम, सु सुमन, प्रसून पुनि, पुष्प, फलपिता नाम ।  
फूल गंद कर वर लिये, छवि सौ खेलत वाम ॥

## अलक

अलक, सिरोरुह, चिकुर, कच, कुंतल, कुटिल, सु वार ।  
लटकी ललित ललाट जनु, चंदहि गई दरार ॥

## ललाट

- १०५ मस्तक, अलिक, ललाट, पट, वैदी वनी जराइ ।  
मनहुँ भाग-मति भाल तै, बाहिर प्रगटी आइ ॥

## नेत्र

लोचन, अंवक, चक्षु, दृग, अक्षन रूप अधीन ।  
कछु रिस-राने नेन जनु, जावक भीने मीन ॥

## वनसी

- ११० वडिस, कुवेनी, मीनहा, मत्स्या-धानी नाम ।  
वेसरि सौ उरभी जु लट, मानहुँ वनसी काम ॥

## कान

श्रुति, श्रव, श्रोत्र, सु शब्द-ग्रह, कर्न खुभी छवि भीर ।  
जनु विवि रूप कमल-कली, फूली मुख-ससि तीर ॥

शोड

वसित शोट, पुनि रदतछद, अक्षर मधुर डहि भाउ ।  
जिनके नाम नृ निम्बन ही, किलक ऊख ह्वै जाउ ॥

दशत

रदन, दशन, द्विज, दंत, रद, डमि दमवान रन भीज ।  
नव नीरज में जन् जमे, गीतल उज्जल बीज ॥

११५

ग्यम

ग्याम, नील, मेचक, अगित, चिबुक-विटु छवि ऐन ।  
मनहुँ रनीले आँव की, मुहकरि मूँदी मैं ॥

वृहस्पति

धिपन, सिखडिज आगिरस, मुराचार्य, गुरु, जीव ।  
मनहुँ वृहस्पति ननि तरे, बनी निर्बारी ग्रीव ॥

१२०

मुरा

वदन, आस्य, आनन, लपन, वक्र, तुंड, छवि-भीन ।  
गुल लगी ह्वै जानि डमि, जिमि दरपन मुख-भीन ॥

कर

हस्त, दाह, भृज, पानि, कर, कबहुँ धरति कपोल ।  
कर अरविंद विछाट जनु, सोवन इंदु अडोल ॥

गोप

गन, नन, तंदर, गीव पुनि, कठ, कपोती वैन ।  
पीर-जीन जहँ भिन्नमिलन, मो छवि कीन ऐन ॥

१२५

कुच

उरज, पयोधर, कुच, स्तन, उर-मंडन, छवि-ऐन ।  
कंचन संपुट देव जनु, पूजि छिपाये मैन ॥

किकिनी

रसना, कांची, किकिनी, सूत्र, मेखला, जाल ।  
१३० छुद्रावलि जनु मदन-गृह, बाँधी वंदनमाल ॥

तूपुर

तुलाकोट, मजीर पुनि, तूपुर रनकत पाइ ।  
भक्तक उठी मनु मैन की, वीना सहज सुभाइ ॥

ग्रवर

चोल, निचोल, दुकूल, पट, असुक, वासन, चीर ।  
पिय-तन-वास जु वसन मै, छिन छिन करत अधीर ॥

सुक

१३५ खत-चंचु, सुक, कीर जब, पढन लगत पिय-नाम ।  
भुकि भहरावति मुसकि तब, अति छवि पावत वाम ॥

दर्पन

प्रतिबिंबी, आदरस पुनि, मुकुर, सु दर्पन लेति ।  
पिय-मूरति नैननि निरखि, अनखि डारि तिहिं देति ॥

वीना

तंत्री, तुंबर, बल्लकी, वीन, विपची आहि ।  
१४० जंत्र वजावति सहचरी, बहुरचौ वरजत ताहि ॥

पान

मुरा-वासन, तांबूल, द्विज, पान सखी-कर चाहि ।  
भांह अमैठनि, दितन जनु, चाप चढावत आहि ॥

गमय

सानय, समय, अनीह, वय, अनमिप, बेला, काल ।  
वड़ी बेर नी सखिन यी, देखी बाल रमाल ॥

पानी

अंबु, कमल, कीलाल, जल, पय, पुष्कर, वन, वारि । १४५  
अमृत, अर्न, जीवन, भुवन, घनरस, कुस, पापारि ॥  
मेघपुष्प, विस, सर्वमुख, कं, कबंध, रस, तोड ।  
उदक, पाय, सवर, सलिल, अप, कपीट पुनि सोइ ॥  
पानी नैन पखारि कै, अजन हांती कीय ।  
प्रगट भई पिय की सखी, निपट ससंकित हीय ॥ १५०

भय

दर, साध्वस, आतंक, भय, भीत, द्विजा पुनि त्रास ।  
डरती डरती सहचरी, गई कुंवरी के पास ॥

चरन

चरन, चलन, गतिवंत पुनि, अंत्रि, पाद, पद, पाइ ।  
पग बंदन करि कुंवरी के, ठाढ़ी सनमुख जाइ ॥



## हरदी

१५५ पीता, गौरी, काचनी, रजनी, पिंडा नाम ।  
हरदी चूनी परत ज्यौ, यौं तिहि दिखि भई भाम ॥

## क्रोध

कामानुज, आमर्ष, रुठ, रोप, मन्यु, तम होइ ।  
छोभ, क्रोध भरी की निरखि, डरी सहचरी सोइ ॥

## कुटिल

१६० वक्र, असित, कुचित, कुटिल, टेढ़ी भौहन ठौर ।  
अरुन कमल पर प्रात जनु, पंख पसारत भौर ॥

## भ्रुकुटी

भ्रू, तंद्रा, भ्रुकुटी, भ्रुकुटि, भौह सतर करि भाल ।  
बहुत काल बीते तनक, बोली बाल रसाल ॥

## कुसल (राधा-वचन)

छेम, अनामय, अभय, भव, सिव, सम, सुभ, कल्याण ।  
कित डोलति कछु कुसल है, पूछति कुँवरि सुजान ॥

## नाम (सखी-वचन)

१६५ संग्या, आह्वय, गोत्र पुनि, छेम-धाम तुव नाम ।  
अमी-वरस या दरस जिहि तौ पूरन सब काम ॥

ज्योती

स्त्री, ललना, सीमनिनी, वामा, वनिता, भाम ।  
 श्रवला, वाला, अंगना, प्रमदा, कांता, वाम ॥  
 नरनी, रमनी, मुदरी, तनूदरी पुनि सोड ।  
 सिय तोनी निहूँ लोक मै, रची बिरचि न कोइ ॥

१७०

ब्रह्मा

अज, कमलज, विद्यना, पिता, धाता, शतधृत होइ ।  
 स्रष्टा, चतुरानन, धिपन, ब्रुहिन स्वयंभू सोड ॥  
 लै लै सन सव छविन को, जिती हुती जग माभ ।  
 तो रचि बहु विधि निपुनता, बहुरची ह्वै गई बाभ ॥

सुंदर

सुभग, सुसम, बंधुर, रुचिर, कांत, कमन, कमनीय ।  
 रम्य सु पेसल, भव्य पुनि, दर्शनीय, रमनीय ॥  
 नैमै सुंदर वर कुंवर, नागर नगधर पीय ।  
 जोरि रची विधना नवल, एक प्राण तन वीय ॥

१७५

अर्जुन

जिनु धनंजय, विजयनर, फाल्गुन, क्रीटी होइ ।  
 गुडाकेश, गांडीवधर, पार्य, कपिध्वज मोड ॥  
 अर्जुन ज्यां धनुधर अवधि, तिहि सम और न वीय ।  
 निमित्तुव प्रेम अवधि मुवुधि, रची तरुनि-मनि तीय ॥

१८०

प्रिया

२१५ डप्टा, दयिता, बल्लभा, प्रिया, प्रेयसी होइ ।  
प्रिय के तांगी प्रानमा, श्रीर न देखी कोइ ॥

लता

व्रतनी, व्रिषती, बल्लरी, व्रिष्नी, लता, प्रतान ।  
अमरखेलि जिमि मूल बिन, इमि व्रिषियत तुव मान ॥

मित्र

२२० मुहद, मित्र, बल्लभ, सखा, प्रीतम परम मुजान ।  
पिय प्यारे पै जाहु बलि, न करि अकारन मान ॥

पुत्र

आत्मज, सून, अपत्य, मुत, तनुज, तनय अरु तात ।  
नंद-नंदन गोविंद सौं, न करि गर्व की बात ॥

नर

मानुष, मर्त्य, मनुष्य पुनि, मानव, मनुज, पुमान ।  
नर जिनि जानै नंद-मुन, हरि ईसुर भगवान ॥

वेद

२२५ आम्नाय, श्रुति, ब्रह्म पुनि, धर्म-मूल सब काम ।  
निगम, अगम जाकौ कहै, सो ये सुंदर स्याम ॥

ऋषि

ऋषि, भिच्छूक, तापस, जती, वृती, तपी, मुनि आहि ।  
जोगी निर्मल मन किये, नित ही खोजत ताहि ॥

भैरव

भैरव, महा अहि, नर्ग-पति, धरनी-धरन, अनंत ।  
सहन बदन करि गुन गनत, तदपि न पावत अनं॥

२३०

धर्मराज

धैरवस्वन पुनि पितरपति, संजमनीपति होइ ।  
महिषध्वज, नरदंडधर, नमवर्ती पुनि सोइ ।  
अनक, काल, कृपान, जम, जग जात डरपत ।  
सो तुव पिय भू-भंग तै, थर थर अति कापन ॥

कुवेर

पुन्यजनेस्वर, वैश्रवन, धनद, ऐलविल होइ ।  
गुह्यकपति, वंशक-सखा, राजराज पुनि सोइ ॥  
नरवाहन, किन्नरअधिप, द्रव्याधीस कुवेर ।  
सो तुव पिय-पद-परस की, पावत नाहिं मु वेर ॥

२३५

वरुन

वरुन, प्रचेता, पासपति, जलपति, जलचर-ईस ।  
सो तुव पिय के पगन पर, विसत रहत नित सीम ॥

२४०

उमा

उमा, अमर्ता, ईश्वरी, गीरी, गिरिजा होइ ।  
मृदा, चंडिका, अंबिका, भवा, भवानी सोइ ॥  
आर्या, भक्तजा, अज्ञा, सर्वमंगला नाम ।  
आरा द्रिदि आचार जन, विस्तारत है भाम ॥

## गनेस

- २४५ लंबोदर, हेरंच पुनि, द्वैमातुर, ङ्कदंत ।  
 मूपक-ब्राह्म, गज-वदन, गनपति, गिरिजान्तंत ॥  
 कोटि विनाइक जी लिखै, महि से कागद कोट ।  
 ती तेरे पिय-गुनन की, गनत न आवै टोट ॥

## धूर्त (राधा-वचन)

- व्याजी, बंचक, कुटिल, सठ, छद्मी, धूर्त, छली जु ।  
 २५० कपटी कान्हार कुंवर की, केती कहति भली जु ॥

## मृग (सखी-वचन)

ऐन, हरिन, वातय, पृषद, हरि, सारंग पुनि आहि ।  
 मृग, कुरंग से दृग लिये, बलि थोरी इतराहि ॥

## पाप

- ऐन, वृजिन, दुकृत, दुरित, अघ, मलीन, मसि, पंक ।  
 किल्बिष, कल्मष, कलुष पुनि, कस्मल, समल, कलंक ॥  
 २५५ पाप-महावन दहन-दव, जाकी रंचक नाम ।  
 ताकीं तू कपटी कहै, तोहि कहा कहीं भाम ॥

## पापान

आव, अस्म, प्रस्तर, उपल, सिला, पखान, सु भार ।  
 पानी पर पाहन तरे, जाके नाम अधार ॥

नीका

उड़प, पोत, नीका, पलव, तरि, बहित्र, जलजान ।  
नाम-नाउ चहि भव-उदधि, केने तरे अजान ॥

२६०

गधिर

श्रोतित, लोहित, रक्त पुनि, रुधिर, अशृज, छतजात ।  
लोह पीवत पृतना, पूत भई छवै गात ॥

राच्छस

कौतप, अश्रप, पुन्यजन, निकपामुत, दुनादि ।  
कर्बुर, अमुर, निसाचरा, जातुधान क्रव्याद ॥  
अघ ने राच्छस पातकी, मै देखी गति होति ।  
उजटि समानी पीय मै, परगट ताकी जोति ॥

२६५

धूरि

धूरि, धूमरी, न्वेह, रज, पांसु, सरकरा, मंद ।  
जा पद-मंकज-रेनु की, वांछत सनक सनंद ॥

गंगादेव

गंगाधर हर, सूलधर, ससिधर, संकर, वाम ।  
मर्व, संभु, शिव, भीम, भव, भर्ग, कामरिपु नाम ॥  
त्रितयन, त्र्यंबक, त्रिपुरअग्नि, ईम, उमापति होइ ।  
जटी, पिनाकी, घृजटी, रुद्र, वृषध्वज सोइ ॥  
गंगादेव ने देव बनि, जाकी धारन ध्यान ।  
नाकों त् कपटी कहति, यह धौं कौन सयान ॥

२७०

सूर्य

२७५

देव, दिवाकर, विभाकर, दिनकर, भास्कर, हंस ।  
 मिहिर, तिमिरहर, प्रभाकर, विवस्वान, तिग्मसं ॥  
 ब्रध्न, विरोचन, विभावसु, मारतंड, त्रय अंग ।  
 अंबर-मनि, दिनमनि, तरनि, सविता, सूर, पतंग ॥  
 रवि-मंडल मंडन नवल, कहत सु मुनिगन जाहि ।  
 सो यह नागर नंद कौ, क्यौ कपटी बलि आहि ॥

२८०

मिथ्या

मिथ्या, मोघ, मृपा, अनृत, वितथ, अलीक निरस्थ ।  
 ऐसे पिय सौ भूँठ बलि, क्यौ बोलियै विरस्थ ॥

निकट (राधा-वचन)

निकट, पार्श्व, अविदूर, तट, उपसमीप अभ्यास ।  
 अवसि अनादर हौइ जौ, रहै निरंतर पास ॥

चंदन

२८५

गंधसार श्रीखंड, हरि, मलयज, भद्र, पटीर ।  
 चंदन कौ ईधन करत, मलया वासी भीर ॥

मीन

सफरी, अनमिष, मत्स, तिमि, प्रथु, रोमा, पाठीन ।  
 मकर, उलूपी, अंडभव, वैसारिन, भख, मीन ॥  
 छीर समुद के नीरचर, रहत चंद ढिंग आहि ।  
 चंदहि मंद न जानही, जलचर मानत ताहि ॥

२९०

समुद्र (नगी-वचन)

सिद्ध, मन्त्रिपति, मन्त्रिलपति, अंगोनिधि, कूपार ।  
 उग्रावत, मर्नव, उदधि, कीस्तुम-अवधि, अपार ॥  
 गन्दाधर गुन-रूप की, सुन्दर गिरिधर पीय ।  
 निर्दिष्टि गिनि प्रेम कजोनिर्वै, यां न बोनिवै तीय ॥

मकुट (शवा-वचन)

वांग, मांगामूस, बलीमुख, कीस, प्लवंग, नैगूर ।  
 दानर वर वर नाग्यिर, दियी विधाता कूर ॥

२६५

मंगलस

गोहितेय, तलमद्र, बल, संकर्षण, बलराम ।  
 नीलांबर, रेवति-रमन, मुसली, पालक काम ॥  
 अथ रञ्जक जो चुप रहै, वित दैठी जिय लेति ।  
 हनि हनधर के वीर कां, किनी बड़ाई देति ॥

३००

पृथ्वी (नगी-वचन)

पृथ्वी, द्युति, द्योती, छमा, वरती, वात्री, गाड ।  
 उन्धी, गगली, वसुमती, वसुधा, सर्व-सहाड ॥  
 गन्धला, दियला, मागग, धग उग्वरा होड ।  
 गंवा, अवती, यंभिनी, मही, मेढनी सोड ॥  
 दिम्बन्तरा, वसुंधरा, दिग, कास्यपी, आदि ।  
 गता, प्रदेता, भू, इला, दिला कहत पुनि ताहि ॥

३०५



सबधर जिहि इक सीस पर, सोभित ज्यौ कन हीर ।  
क्यौ आवै तुव आँखि तर, ता हलधर की वीर ॥

वान

३१० तोमर, खग, जिल्लग, ग्रसुग, विसिख, सिलीमुख, वान ।  
सर, मार्गन, नारान, इपु, पत्री, शोपन-प्रान ॥  
साइक घाइ पिराइ पुनि, सिमिटि सरीर मिलाइ ।  
वचन-नीर की पीर बलि, मिटै न जौ जुग जाइ ॥

अग्नि

३१५ पावक, वह्नि, दहन, जलन, सिखी, धनंजय, होइ ।  
शुक्र, उपबुध, पवनमुख, वीतहोत्र पुनि सोइ ॥  
जातवेद, जलजोति-हर, चित्रभान, बृहभान ।  
ग्रनल, हुतासन, विभावमु, निर्जरजीह, कृगान ॥  
अग्नि-दग्ध जे द्रुम-लता, फिरि फूलत, फल देत ।  
वचन-दग्ध जिनके हिये, बहुरि न अकुर लेत ॥

मूर्ख (राधा-वचन)

३२० मुग्ध, मंद, जड, मूढ नर, अग्य, कटुकवद, संठ ।  
मूर्ख जन जानै कहा, मनि जैसे कपि-कंठ ॥

चतुर (सखी-वचन)

कृती, कुशल, कोविद, निपुन, छत, प्रवीन, निश्नात ।  
पटु, विदग्ध, नागर, चतुर, जानत रस की बात ॥

पयगध

अय, अगाम, हेनन अहिन, ओगुन हीइ जु पीय ।  
कन छांइ जिमि राखियै, यो न भाखियै नीय ॥

प्रेम

हादं, स्नेह, प्रियता बहुरि, प्रनय, राग, अनुराग । ३२५  
कित गां तेरी प्रेम बलि, हे भामिनि ! बड़भाग ॥

पंचंत

अग, नग, भूमृत, दर्गीभृत, भुंगी, शिखरी होइ ।  
गंत, मितोत्तय, गांत्र, हरि, अचल, अद्रि पुनि मोइ ॥  
गिर गोवर्धन वाम कर, धर्यां स्याम अभिराम ।  
तव उर नें बह धकधकी, अव लीं मिटी न वाम ॥ ३३०

पद्मग

पद्मग, नाग, भुजग, उरग, जिह्वग, भोगी, सर्प ।  
नधुक्षवा, हरि, जरीश्रव, काकोदर, गर-दर्प ॥  
शानीनिग, विषधर, कनी, मनी, विलेसय, व्याल ।  
नर्झा, दर्वा, गूडरद, लेलिह केवल काल ॥  
शानीं अहि गजन मर्म, मं शर्या गहि बांह । ३३५  
नेरनेंदन सिय प्रेम वन, पगल हुती बह माह ॥

पीड़ा

आवा, दिवरा, विशा, गज, पीड़ा, प्राग्नि, ग्लानि ।  
अव न न पगलदि पीर दर्दि, छिन्नी गीर्गी यह दानि ॥

असुर

३४०

दानव, वनज सु दैत्य पुनि, मुररिपु निपट असंत ।  
माया ह्वी रैन-चर, जेलत असुर अनंत ॥

संध्या

संध्या, निसिमुख, पितृप्रभु, सायंकाल प्रदोष ।  
साँझ परी है चलहु बलि, जिनि करि इतनी रोष ॥

वन

कानन, विगिन, अरन्ध, वन, गहन, कच्छ, कानार ।  
अटवी मै उकले दई !, मोहन नंदकुमार ॥

विस

३४५

गरल, हलाहल, गर बहुरि, कालकूट, रसमार ।  
रस मै विस जिनि घोरि बलि, चलि अब न करि अवार ॥

पपीहा

कालकंठ, दात्यूह, हरि, चातक, सारंग नाँड ।  
घन सौ रुठि पपीहरा, नहिन वनै बलि जाँड ॥

जामिनी

३५०

छनदा, छपा, तमस्विनी, तमी, तमिश्रा होइ ।  
निसि, सर्वरी, विभावरी, रात्रि, त्रिजामा सोइ ॥  
सुखद सुहाई सरद की, कैसी जामिनि जाति ।  
चलि बलि मोहनलाल पै, कित बैठी अनखाति ॥

प्राप्त

अवन, पुनरु, नम, वियत, अंतरिच्छ, घनवास ।  
 व्योम, मनन, विद्यायसी, स्व, मुरवर्त्म, अवास ॥  
 गगन जु उडगन वनि रहे, नैक चहौ तजि रोग ।  
 देवत तेरी रूप जनु, मुरतिय किये भरोख ॥

३५५

नर

कन्य, पुनभव, नगर, नर, हे रंग-भीनी भाग ! ।  
 वय को छिनिहि जु खननि बनि, नहि कछु नख सी काम ॥

नृप

नृपछ, नर, लय, नृपम, तनु, निपट कृसोदर तोर ।  
 बहि बनि एनी मान नचि, राख्यो है किहि ठोर ॥

३६०

संगम

आयोवन, रन, आगि, मृध, आहव, संख्य, समीक ।  
 गोराज, संगर, समर, संजुग, कलह, अनीक ॥  
 मुरति-गुह्र जब पीय सी, तोहि वनैगी वाम ।  
 नग नागवत वित कुंदरि, करिहै कहा प्रनाम ॥

मन्दरी

नृपा, नृपा, मन्दरी, उन्ननाभि, पुनि द्वाइ ।  
 जनु कहै मन्दरी नृप करी, पकरी विद्या नाइ ॥

३६५

मग

वर्तम, अध्वा, सरनि, पथ, संचर, पाद-बिहार ।  
 मग देखत ह्वैहै दर्ई ! आतुर नंद-कुमार ॥

कृपा

माया, दया, कृपा, घृना, अनुकंपा, अनुक्रोस ।  
 ३७० करुना करि करुनानिधे, राधे जिनि करि रोसं ॥

कृपान

रिष्ट, कुसेय, कृपान, असि, मंडलाग्र, करवाल ।  
 खर्ग जितौ तेतौ कहा, घाउ करन कह्यौ बाल ॥

दिसा

कन्या, काष्टा, ककुभ, दिसि, गो, आसा, इहि ओर ।  
 कब के चितवत है दर्ई ! नागर नंदकिसोर ॥

नदी

३७५ सरिता, धुनी, तरंगिनी, तटिनी, हृदनी, होइ ।  
 स्रोतस्वती, सु निम्नगा, अपग, बिरेफा सोइ ॥  
 सैवलिनी, स्रोतस्विनी, द्वीपावति, जल-माल ।  
 नदी नही कोउ बाट मै, सोच कहा है बाल ॥

पिता

तात, जनक, सबिता, पिता, बबा तोर गुन-धाम ।  
 ३८० तोहि पहिले नंदलाल कौ, देत हुतौ हे बाम ॥

निगम

पायन, निवेसन, पग्निपन, उदवह, विविता निवाह ।  
मात परी ज् भयी नदी, हुन बेती उहि नाह ॥

मदिरा (राग-राजन)

मत्, माद्री, मदिरा, मिरा, मुरा, वाहनी होय ।  
शायन, मद, कारवरी, हविप्रिया, मैरेय ॥  
निग, प्रगता, मुजिता, हाना, गामु-प्रगुनि ।  
मद पीये ज्यो नवरा कोउ, कदा कदाहि है हुनि ॥

३८५

गुभाउ (गरी-नवन)

प्रहल, निमर्ग, प्रनिज, गहज, निरव गुसीन गुभाउ ।  
कवच देव देही परी, सुंदर सरन कदाह ॥

श्रंगार

श्रंगार, मम, श्राव पनि, कुहर कल वीहार ।  
मो लेरे देगी कुंवार, मो मन लेन श्रंगार ॥

३८६

निटप

नारि, निटपी, अनोवह, कन, द्रुम, पावप होउ ।  
पती, दली, फली, नरति, वृन्द, गहोवह मोउ ॥  
कलावह परे कन रीन, कन के निनका पीय ।  
नदी न मेक दया वृद्धे, उपहनि निन्दन होय ॥

पत्र

३६५ पत्र, पर्त, दन, छदन, छद, खरकत जय तर पात ।  
तुव आगम भ्रम चाँकि पिय, उठि उठि उत लीं जात ॥

पवन

श्वसन, सदागति, मरुत, हरि, भारुन, जगत परान ।  
अनिल, प्रभंजन, गंधवह, नभश्वान, पवमान ॥  
तुव तन परिमल परसि जय, गमनत धीर समीर ।  
४०० तार्का बहु सनमान करि, परिरंभत बलवीर ॥

सब्द

नाद, निनद, निश्वन, सवद, सुखर, मुखर, रव, राउ ।  
वै वंसी में कहत पिय, हे प्रानेस्वरि आउ ॥

आग्या

वय, आदेस, निदेस पुनि, आग्या, सासन जोग ।  
आयसु है अव जाउँ फिरि, लहैं सु प्रीतम लोग ॥

अति

४०५ अतिसय, भ्रस, अतिबेल, अल, अधिक, अत्यंत, अनंत ।  
अति सर्वत्र भली नहीं, कहि गये संत अनंत ॥

समूह

निकर, प्रकर, निकुरंब, व्रज, पूर, पूग, चय, व्यूह ।  
कंदल, जाल, कलाप, कुल, निवह, निचय, समूह ॥

चक्र, अनंत, कदंब, गन, गाम, तोम वह वृंद ।  
मे प्रनेय दाने कही, भई तये की बुद ॥ ४१०

चरण

दर, स्तोत्र, दीपद, अल्प, रंचक, मंद, मनाक ।  
तव पिय-महचरि तन चितै, मुसकी कुँवरि तनाक ॥

दुग्ध

कदम, विधुर, मंकट, तुदन, दहन, वृजित पुनि आहि ।  
दुग्ध जनि दै अय जान दै, कत बैठी अनखाहि ॥

अर्द्धरात्रि (राधा-वचन)

निनि, निनीय पुनि महानिसि, हीन लगी अधरात । ४१५  
कान् चनै, नखि मोड रहि, जैहै उठि परभात ॥

वज्र (मन्जी-वचन)

असनि, कुलिस, निर्वात, पवि, वज्र नु तेरे नाहि ।  
परै तुरे के वाम पर, विरन करै रस माहि ॥

नज्जा

ही, ब्रीज, लज्जा, वपा, सकुच न करि विन काज । ४२०  
अनि दनि प्यारे पियहि मिलि, आपधि खात न लाज ॥

पादपान

पादपान, उपानहा, पादपीठ मृदु भाड ।  
पनही मनही भावती, आगे बरी बनाड ॥



## उच्चधाम

सौध, हर्म्य, प्रासाद तें, चली जु तिय गति मंद ।  
सोभित मुख, जनु गगन तें, ग्रवनी उत्तरत चंद ॥

## चंद्रिका

४२५ जोतिस्ना पुनि कौमुदी, बहुरि चंद्रिका नाँउ ।  
जोन्ह सी पसरति वदन तें, थोरी हँसि, बलि जाँउ ॥

## वीथी

पुन्य, प्रतोली, वीथिका, रथ्या कहियँ ताहि ।  
इहि वीथी चलि, जाउँ बलि, निपट निकट पिय आहि ॥

## बाग

कृत्रिम वन उद्यान पुनि, उपवन सोइ आराम ।  
४३० यह बृंदावन बाग तुव, दिखि बलि छवि कौ धाम ॥

## वसंत

कुसुमाकर, रितुराज, मधु, माधव, सुरभि, वसंत ।  
माली जिमि जुगवत सदा, यातँ अधिक लसंत ॥

## खग

द्विज, संकुत, पंछी, सकुनि, अंडज, विहग, विहंग ।  
वियग, पतत्री, पत्ररथ, पत्री, पतग, पतंग ॥  
४३५ रटत विहंगम, रँग भरे, कोमल कंठ सु जात ।  
जनु तुव आगम मुदित द्रुम, करत परस्पर बात ॥

पीपल

चलदल, पीपल, गजग्रमत, बाँव-बृच्छ, अस्वत्थ ।  
पीपल देवलि दाहिने, जोरि हृत्थ धरि मत्थ ॥

पाडर

थाली, पाटलि, फलग्हा, म्यामा, वामा नाम ।  
अंबुवान, मधुदूति यह, पाडर करति प्रनाम ॥ ४४०

आम

पिक-बल्लभ, कामाग पुनि, मदिरा-सख, सहकार ।  
यह रसाल की डार बलि, नै जु रही फलभार ॥

चंपा

चांपेय, चंपक, गुरभि, हेमपुष्प सुकुमार ।  
यह चंपा पा परनि बलि, लिये पटुप उपहार ॥

मधूक

माधव, मधुद्रुम, मधुश्रुवा, मधुष्ठील, गुडफूल ।  
या मधूक के फूल बलि, कछु तुव गंडन तूल ॥ ४४५

शङ्खिम

रक्तवर्ज, शानिक, करक, मुक-प्रिय, कुन्दिम, मार ।  
ये शङ्खिम इत देवि बलि, कछु तुव दमन अवार ॥

कदली

रना, सोन्ग, गजवमा, भानुफला मुकुमार ।  
ये कदली जिन में कछु, तव ऊरु उनहार ॥ ४५०

बेल

सुरभि, सिलूखी, सदाफल, ताल, विल्व, मालूर ।  
ये श्रीफल तुव कुचन सम, कहत बहुत कवि कूर ॥

तमाल

कालकंध, तापिच्छ पुनि, तिद्रुक सहज तमाल ।  
वैठे हे जहँ काल्ह बलि, तुम अरु मोहनलाल ॥

कदंब

४५५ नीप, तूल, प्रीयक बहुरि, मदिरा-गंध सु बाह ।  
यह कदंब बलि कान्ह जिहि, चढ़ि कूदे दह माह ॥

पलास

बातपोथ पुनि / ब्रह्मद्रुम, किसुक, पर्न, पलास ।  
केसू विरही जनन कौ, नाहर नहन विलास ॥

बहेरा

४६० अक्ष, विभीतक, कर्षफल, सवर्तक, कलिवृक्ष ।  
भूताबास बहेर तरु, जिनि चलयै मृग-अक्ष ॥

नारियर

बानरमुख, लागूल पुनि, नारिकेल सुभकाम ।  
अहो नारि वर नारियर, बलि तोहि करत प्रनाम ॥

सुपारी

घोंटा, क्रमुक, गुवाक पुनि, पूग, सुपारी आहि ।  
वारी वारी कहत बलि, रंचक इन तन चाहि ॥

कंछ

कोलिवल्लिका, कपिलता, विसर, श्रेयसी नाउ । ४६५  
कंछ करति यह अंग मे, कंछ न छू, बलि जाउ ॥

मरिच

निन्ता, उन्ता, कोलका, कृष्णफला पुनि नाउ ।  
मरिच लता पां परि कहति, भनी करी बलि जाउ ॥

पीपरि

कोला, कृष्णा, मागधी, तिग्म, तंदुला होइ ।  
वैदेही, स्यामा, कना, मुडी कहियै सोइ ॥ ४७०  
यह पीपरि बलि पग गहै, कहति बहुत परकार ।  
अब तै इतनी करि कुंवरी, प्रीतम प्रान-अधार ॥

हरा

अभया, पथ्या, अव्यथा, अमृता, चेतकि होइ ।  
कायस्थ्या पुनि पूतना, निवा श्रेयनी सोइ ॥  
यह हरीनकी पग गहति, हरति उदर के रोग । ४७५  
ज्यों तू गिरिधर लाल के, बाल सकल नुख जोग ॥

मोट

चिन्दा, नागर, जगभिषक, महा आंघवी नाउ ।  
यह मुंटी लूटि पगल नर, कहत कि बलि बनि जाउ ॥

## अनेकार्थमंजरी

५

जु प्रभु जोति-मय, जगत-मय, कारन, करन, अभेव ।  
विघन-हरन, सब सुभ-करन, नमो नमो तिहि देव ॥  
एकै वस्तु अनेक ह्वै, जगमगात जग-धाम ।  
जिमि कंचन तै किंकिनी, कंकन, कुंडल नाम ॥  
उचरि सकत नहि संसकृत, अरु समुक्त असमर्थ ।  
तिन हित 'नंद' सुमति जया, भाख्यी 'अनेका अर्थ' ॥

गो

गो इंद्री, दिव, वाक, जल, स्वर्ग, वज्र, खग, छंद ।  
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो-पालक गोविंद ॥

सुरभी

१०

सुरभी चंदन, सुरभि मृग, सुरभी बहुरि वसंत ।  
सुरभी चारत वन सुने, जो जग कमला-कंत ॥

मधु

मधु वसंत, मधु चैत्र, नभ, मधु मदिरा मकरंद ।  
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधुसूदन गोविंद ॥

कलि

कलि कलेस, कलि सूरमा, कलि निखंग, संग्राम ।  
कलि कलिजुग तहँ अवर नहि, केवल केसव नाम ॥

आत्मा

मन बुनि चित्त गुभाउ तन, धर्म जीउ ग्रहेंकार । १५  
ये सब कहियँ आनगा, परमात्मा आधार ॥

धनजय

अग्नि धनंजय बहूत कधि, पवन धनंजय आहि ।  
अर्जुन बहुरयो धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि ॥

अर्जुन

अर्जुन द्रुम, अर्जुन बदल, सहसाअर्जुन अथ्य ।  
अर्जुन मद्धिम पंडु मुत, हरि खेले जिहि सथ्य ॥ २०

पत्र

पत्र परन, श्री पत्र न्य, बाहन पत्र मुचित्त ।  
पत्र पत्र द्विधि नहि दये, उड़ि मिलिते हरि मित ॥

पत्नी

पत्नी नर, पत्नी वमल, पत्नी बहुरि विहंग ।  
पत्नी नर कर चित्त जिमि, उमि सेवहु श्री रंग ॥

बग्ही

बग्ही द्रुम, बग्ही अगिति, बग्ही कुक्कुट नाम । २५  
बग्ही मोर किलोर के, चंद बरे सिर स्याम ॥

धाम

धाम तेज श्री धाम तन, धाम विरन, गृह धाम ।  
धाम जोगि जो ब्रह्म गो, धनीभूत हरि स्याम ॥

काम

३०

काम भोग, अभिलाष पुनि, मनमय कहियै काम ।  
काम काज जिनि भूनि मन, भजि लै हरि अभिराम ॥

वाम

वाम कुटिल अरु वाम सिव, वाम काम कर वाम ।  
वाम मनोहर कौ कहत, जैसैं मुदर स्याम ॥

भव

भव संकर, संसार भव, भव कहिये कल्याण ।  
भव जु जन्म जग मुफल तव, जव भजियै भगवान ॥

क

३५

कं सुख, कं जल, कं अमल, कं सिर, कं पुनि काम ।  
कं कंचन सी प्रीति जस, अस करि रे हरि नाम ॥

खं

खं नभ, खं गृह, खं नखत, खं रंघन कौ नाम ।  
खं इद्री दुख देति है, दया करौ घनस्याम ॥

कल्प

४०

कल्प जु विधि दिव, कल्प सम, कल्प समर्थ जु कोइ ।  
कल्प कपट तजि हरि भजौ, कल्पवृच्छ सम सोइ ॥

कर

कर गज-पुष्कर, हुस्त कर, कर जु किरन, कर दान ।  
कर विष सम तजि विषय मन, भजि हरि अमी निधान ॥

दर

एन ज कहत कवि संप की, दर ईषद की नाम ।  
दर उर नै रागहु कुंदनि, गिम्बिर सुंदर स्याग ॥

वर

वर सुंदर, वर धेठ पुनि, वर जु देवता देत । ४५  
वर ह्वह से पान्द निन, जज तिय हिय हरि लेत ॥

वृग

वृग गुरगति, वृग वर्न पुनि, वृख जु वृराभ, वृस काम ।  
वृग गु धर्म करि हरि भजी, जी चाही सुख धाम ॥

पतंग

तरनि पतंग, पतंग रग, पावक बहुरि पतंग ।  
सब जग रग पतंग की, हरि एकै नवरंग ॥ ५०

दर

दर बहिय नृप की कटक, दर पत्रन की नाम ।  
जग बरही के चंद सिर, धरे स्याम अभिराम ॥

पल

एन प्रामिय ती कहत कवि, नवट उन्नास पल होइ ।  
पल जु नवफ, हनि विन पने, गोपिन जुग सत सोइ ॥

दर

दर दोन्ज, दोन्ज बहुरि, दर नृप-नृप की नाम । ५५  
दर नाहन, सरा देस पुनि, दर जहिय दलराम ॥



अल

अल अत्यर्थ, समर्थ अल, अल पूरन की नाम ।  
अल प्रभरन, अल अलसतजि, भजि मनमोहन स्याम ॥

वय

६०

वय विहग की कहत कवि, वय कहियै पुनि काल ।  
वय जु वहिक्रम जाति है, भजि लै मदन गुपाल ॥

जीव

जीव वृहस्पति की कहत, जीव कहावत चंद ।  
जीव आत्मा नित जियै, जिय के जिय नंद-नंद ॥

मार

मार मृतक, विख मार पुनि, मार कहावै काम ।  
मार अमृत हूँ तैं सरस, सुंदर गिरिवर स्याम ॥

सार

६५

सार बीज, धीरज, धरम, सार वज्र, घृत सार ।  
सार सवन की साँवरी, मही परची संसार ॥

कलभ

कलभ कहत करि-सावकहि, कलभ बहुरि उताल ।  
कलभ कलुष कलिकाल तैं, काढहु कृष्ण कृपाल ॥

नभ

७०

नभ आश्रय, नभ भाद्रपद, नभ सावन कौ मास ।  
नभ अकास, नभ निकट ही, घट-घट रमानिवास ॥

वग्नु

प्रष्ट अमर वग्नु, बग्नि वग्नु, वग्नु जु किरन. वग्नु नीर ।  
वग्नु धन जग में सो धनी, वन जाके बलवीर ॥

पटु

पटु तीछन की कहत कवि, पटु आरोग्य कहंत ।  
पटु प्रवीन सो जगत में, रमै जु एकमिनि-कंत ॥

तुरंग, कुरंग

गरुड़ तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग ।  
दरिन कुरंग, कुरंग सो, रँग्यो न हरि रस रंग ॥

७५

आत्मज

आत्मज कहियै रुधिर अरु, आत्मज कहियै काम ।  
आत्मज पूत सपूत सो, भजै जु सुंदर स्याम ॥

कवंच

दिन सिर कहत कवंच कवि, है कवंच पुनि नीर ।  
राच्छस एक कवंच तिहि, दीनी गति रघुवीर ॥

८०

हंस

हंस तुरगम, हंस रवि, हंस मराल नु छंद ।  
हंस जीव कहैं कहत कवि, परम हंस गोविंद ॥

पयोधर, भूधर

भेष, अर्क, कुच, पैल, द्रुम, ये जु पयोधर आहि ।  
नूतन गिनि, भूधर नृपति, भूधर आदि बराहि ॥

वान

८५ वान कहावै बलि-तनय, विसिख आहि पुनि वान ।  
वान कहत कवि स्वर्ग कहँ, श्री हरि पद निर्वान ॥

वरुन

वरुन कहत कवि नीर कहँ, वरुन स्यार की नाम ।  
वरुन हरे जव नंद तव, कैसे धाये स्याम ॥

गोत्र

६० गोत्र नाम की कहत कवि, गोत्र सैल सुनियंत ।  
गोत्र वंस सो धन्य जहँ, गोविंद गुन गुनियंत ॥

तनु

तनु सरीर, विस्तार तनु, तनु सूक्ष्म, तनु तात ।  
तनु विरली कोउ जगत मै, जानै हरि रस वात ॥

वाल

वाल सिरोरुह, वाल सिसु, मूक कहावै वाल ।  
वाल अग्य सोइ जगत मै, भजै न वाल गुपाल ॥

जाल

६५ जाल भरोखा, जाल गन, जाल दंभ अरु मंद ।  
जाल भगर-विद्या जगत, दिखि न भूलि नंद-नंद ॥

काल

काल असित, अरु काल बय, धर्मराज पुनि काल ।  
काल व्याल के काल हरि, मोहन मदन गुपाल ॥

नाल

ताल नाल, हरिताल पुनि, द्विभुजस्फालन ताल ।  
ताल वृष्ट फल खाइ कै, देख्य हृत्यो नंदनाल ॥

१००

व्याल

व्याल कूर नर, व्याल गज, तानर अंत जु व्याल ।  
व्याल सर्प सिर चढ़ि नचे, नटवर अपु नंदलाल ॥

जलज

जलज भीन, मोती जलज, जलज रांस अरु चंद ।  
जलज जु कमरा फिरावते, ब्रज आवत नंद-नंद ॥

गुन

गुन राजस, गुन मूत्र पुनि, गुन कोढेड की जेह ।  
गुन चरित्र गोविंद के, गावहु हिय भरि नेह ॥

१०५

तम

तम तामन गुन, राहु तम. तम जु निर्मिर, तम क्रोव ।  
तम प्रग्यानहि हरहु हरि, उर धरि दीप प्रबोध ॥

अवि

अवि परवत, अवि मेघ पुनि, अवि सद्रिता की नाम ।  
अधिराज नर जगत की, एकै मुंदर स्याम ॥

११०

वन

वन यनी ठां कहन कवि, वन चरित्र की जाल ।  
वन बालन ते मुग्धि भैंग, शायन मदन गुपाल ॥

घन

घन दिढ़, घन विस्तार पुनि, घन जिहि गढत लुहार ।  
घन अंबुद, घन सघन अरु, चिदघन नंदकुमार ॥

वरन

११५ वरन स्तुति, अच्छर वरन, वरन द्विजादिक चारि ।  
वरन अरुन, सित, पीत हैं, अवरन एक मुरारि ॥

पोत

पोत कहावै निपट सिसु, पोत जु पत्र अनूप ।  
पोत नाउ जग-जलधि में, कृष्ण नाम सुख रूप ॥

बुध

१२० बुध पंडित कौ कहत कवि, बुध ससि-सुवन बखान ।  
बुध हरि की अवतार इक, बोध भयी जिहि ग्यान ॥

अनंत

गगन अनंत कहंत कवि, बहुरि अनंत अनेक ।  
सेस अनंत कहंत बुध, हरि अनंत अरु एक ॥

छय

छय निवास कौ कहत कवि, छय कहियै छय रोग ।  
छय परलै मधि हरि विषै, लीन होत सब लोग ॥

राजिव

१२५ राजिव ससि, राजिव सलिल, राजिव मुक्ता, मीन ।  
राजिव नाभि गुबिद की, जहँ विधि से अलि लीन ॥

लोक

लोक व्याकरण, लोक जन, लोक देह रसमूलि ।  
तीनि लोक सुत उदर त्रिखि, रही जगोमति भूलि ॥

सुक

सुक बीज, अरु अग्नि पुनि, सुक जेठ की मास ।  
सुक अजहुँ बावनहि प्रति, बलि हित भरत उसास ॥ १३०

खग

खग रवि, खग मसि, खग पवन, खग अंबुद, खग देव ।  
खग विहंग हरि-मुक्त भजि, तजि जड़ सेमर मेव ॥

ब्रह्म

ब्रह्म ब्रह्म कुल, ब्रह्म विधि, ब्रह्म वेद अरु जीव ।  
ब्रह्म नंद के मदन मै, ताहि नचावति तीव ॥

कलाप

गुन कलाप, तूनीर पुनि, अभरण आहि कलाप ।  
वरुनी-चंद कलाप पुनि, हरि विनु जीव कलाप ॥ १३५

उड़, उड़प

उड़ विहंग, उड़ नखत गन, उड़ कैवर्तिक आहि ।  
उड़प चंद, नीका उड़प, उड़प गरुड़ वर बाहि ॥

मंद

मंद मनीचर, मंद खल, मंद अल्प, अथ मंद ।  
मंद मूढ़ नर ते जगन, जे न भजै नंदनंद ॥ १४०

## विरोचन

- १७० वह्नि विरोचन, सूर्ज पुनि, चंद विरोचन गात ।  
दैत्य विरोचन धन्य सो, जाके वलि सी तात ॥

## वलि

वलि लहरी, वलि जूगरी, वलि भोजन वलि भाग ।  
वलि राजा की जाउँ वलि, जा हिय हरि अनुराग ॥

## वृक

वृक पावक कौ कहत कवि, वृक भिड़हा कौ नाम ।  
वृक दानव दलि, देव सिव, राखे सुंदर स्याम ॥

## रज

- १७५ रज राजस, आरक्त रज, रज जुवती मै होइ ।  
रज धूली, रज पाप कौ, हरि निर्मल जल धोइ ॥

## कुस

कुस सीता-सुत, दर्भ कुस, कुस कहियै पुनि नीर ।  
कुस दानव दलि द्वारिका, जहाँ वसे वलवीर ॥

## कंबु, भुवन

- १८० कंबु संख औ कंबु गज, कंबु इष्ट कौ नाम ।  
भुवन गगन, औ भुवन जल, त्रिभुवन-नाइक स्याम ॥

## कूट

कूट बहुत, अरु कूट गिरि, अहरनि कूट कहंत ।  
कूट कपट कौ निपट तजि, भजि लै मन भगवंत ॥

खर

खर राच्छन, खर, खान खर, खर तीछन कौ नाम ।  
खर गदहा सम ते जगत, जे न भजे हरि स्याम ॥

कुज, जम

कुज मंगल, कुज अन्न, कुम, कुज भीमासुर नाम । १८५  
जम जूग, जम जमराज ते, राखहु सुंदर स्याम ॥

हरिनी

हरिनी प्रतिमा हेम की, हरिनी मृग की तीय ।  
हरिनी जूयी जानु की, फूल-माल हरि हीय ॥

धात्री

धात्री कहिये आंवरी, धात्री बाइ बखान ।  
धात्री बरनी नेन पर, मोहत तिल परमान ॥ १८०

निवा

निवा संभु की सुंदरी, निवा स्यार की भाम ।  
निवा हरद जिमि रोग-हर, डमि अघ-हर हरि नाम ॥

रसना

रसना पांजी कहन कवि, रसना बहुरी दाम ।  
रसना जिह्वा का मुनस, कहीं न नेत हरि नाम ॥

रेना

रेना उरिये अपनग, रेना कदनी नाम । १८५  
रेना गोखल गाइ-शुनि, जिहि मोहे हरि स्याम ॥



माया

माया छल, माया दया, माया नेह कहंत ।  
माया मोहनलाल की, जिहि मोहे सत्र जंत ॥

इला

२००

इला मही, बुध-तिय इला, इला उमा अभिराम ।  
इला सरसुती सो भली, जामैं हरि की नाम ॥

जोति

जोति नखत गन, जोति दुति, जोति नेत्र अरु आगि ।  
जोति ब्रह्म सो नंद घर, रह्यौ अनंदहि लागि ॥

सुमना

सुमना कहियै मालती, सुमना मुदिता तीय ।  
सुमना रति, सो कान्हू सी, करि लै लंपट जीय ॥

इडा

२०५

इडा कहत नभ देवता, इडा भूमि अभिराम ।  
इडा अंविका मातु मोहिं, रति दीजै हरि नाम ॥

निसा, अजा

निसा जामिनी कौ कहत, निसा हरिद्रा नाम ।  
अजा छाग, माया अजा, जिहि मोहे अज, वाम ॥

विधि

२१०

विधि बेधा, विधि दैव पुनि, विधि कहियै जु विधान ।  
विधि विधि जोई हरि रची, सोई विधि परमान ॥

जिह्वा

जिह्वा अन्नस करि बलित नर, जिह्वा कहावै मूढ ।  
जिह्वा काट तजि हरि भजौ, घट घट परगट गुड़ ॥

हस्त

हस्त कहत गज मुंड कौं, हस्त नछत्र नु भाड ।  
हस्त हाथ नैं छारि जनि, नर हीरा तन पाड ॥

कृतांत

आगम, सास्त्र कृतान सब, पुनि कृतांत सिद्धांत ।  
जम कृतान की त्रास तैं, त्राता कमला-कांत ॥

२१५

मित्र

मित्र भानु कौं कहत कवि, मित्र अग्नि कौं नाम ।  
मित्र मीन सब जगत के, एकै सुंदर स्याम ॥

गान्ग

गन्धि, सन्धि, द्रव्य, गज, गगन, गिरि, केहरि, कुंज, कुरंग ।  
जातक, वादुर, दीप, अलि, ये कहियै सारंग ॥

२२०

हरि

ऐंद्र, चंद्र, अरवि, अग्नि, कपि, केहरि, किंक्याण ।  
कवच, काम, कुरंग, दन, धन, कुटुंड, नम, भान ॥  
दन्ती, पावक, पवन, पय, गिरि, गज, नाग, तन्दि ।  
ये हरि नाने सुन्दरानि, हरि ऐश्वर्य गोविंद ॥

ध्रुव

२२५

ध्रुव निश्चल, ध्रुव जोग पुनि, ध्रुव जु ध्रुपद, ध्रुव ताल ।  
ध्रुव तारे जिमि ते अटल, गुनहि जु गुन गोपाल ॥

मुमनस

मुमनस सुर, मुमनस पुहुप, सुमनस बहुरि वसंत ।  
मुमनस ते जिन मन बसै, कोमल कमलाकंत ॥

बिटप

२३०

बिटप अंग, पल्लव बिटप, बिटप कहत विस्तार ।  
बिटप वृच्छ की डार गहि, ठाढ़े नंदकुमार ॥

दान

दान द्विजन कौ दीजियै, गज मद कहियै दान ।  
दान साँवरौ लेत बन, गोपी प्रेम निधान ॥

रस

रस नव, रस घृत, रस अमृत, रस विष, अरु रस नीर ।  
सब रस कौ रस प्रेम-रस, जाके बस बलबीर ॥

सनेह

२३५

तैल सनेह, सनेह घृत, बहुरचौ प्रेम सनेहु ।  
सो निज चरनन गिरधरन ! 'नंददास' कौं देहु ॥  
जो 'अनेक अर्थहि' सदा, पढ़ै, सुनै नर कोइ ।  
सो अनेक अर्थहि लहै, पुनि परमारथ होइ ॥

## स्याससगाई

एक दिन गधे कुंवरी, नंद-घर खेलत आई ।  
 चंचल पीर विनिव दैति, जनुमति मन भाई ॥  
 नंद-महि मन मै कछी, देखि हर की रास ।  
 यह कन्या मो न्याम कौं, गोविंद पुजवै प्राण ॥  
 नि जोरी सोहनी ॥

५

जनुमति मन्ना प्रवीन, एक द्विज-नारि बुलाई ।  
 नीली निकट बिठाउ, मरम की बात मुनाई ॥  
 बार कही वृषभान नां, करिया बहु मनुहारि ।  
 यह कन्या मै ग्यान कौं, मांगी गोद पसारि ॥  
 कि जोरी सोहनी ॥

१०

द्विज-नारी उठि चली, बेगि बरगाने आई ।  
 गधे गधे की मार बैठि तहें दान चलाई ॥  
 जनुमति रागी नंद जी, जिन पठई तुम पान ।  
 रहन भाति वदन रानी, बहुनहि करि अरगन ॥  
 कृपा करि दीजिये ॥

१५

नीकी राखे कुंवरी, स्याम मेरी अति नीकी ।  
 तुम किरपा करि करी, लाल मेरे को टीकी ॥  
 सबै भांति सुख होइगी, हम-तुम बाढ़े प्रीति ।  
 और न कछु मन मै चहौ, यही जगत की रीति ॥

२०

परस्पर कीजियै ॥

कीरति उत्तर द्यौ, नु हीं नहि करी मगाई ॥  
 सूधी राखे कुंवरी, स्याम है अति चरवाई ।  
 नैद-ढोटा लंगर महा, दबि-भाखन की चौर ।  
 कहत-सुनत लज्जा नही, करै और तै और ॥

२५

कि लरिका अचपली ॥

द्विज-नारी फिरि आइ, महरि सौ बात कही सब ।  
 सुनि करि कै करतूति, मनहि मन सोचि रही तब ॥  
 अतरजामी साँवरी, तिही बेर गयी आइ ।  
 बूझन लाग्यो माइ तै, क्या जु रही सिर नाइ ॥

३०

बात मो सौ कहौ ॥

मैया लाल सौ कहै, पूत ! हौं नाकै आई ।  
 जहँ करियत तो बात, तहो तेरी होति बुराई ॥  
 मैं पठई वृषभान कै, करन सगाई तोइ ।  
 उनहूँ वहि उत्तर दियौ, यातै चिता मोइ ॥

३५

कहौ कैसी करौं ॥

भैया ते मुनकाउ, बहल यी नद-हुलारी ।  
 नाहिन करिहो व्याह, करी जिनि लाइ हमारी ॥  
 जो मुमरे इच्छा वही, उन ही की हम लैहि ।  
 नो मं सोटा नद कौ, पाज्ज परि परि दैहि ॥  
 मोच नहि कीजियै ॥

४०

गोन्चद्विज धारि, मु नदवर भेष बनाई ।  
 बरगाने के बागहि, मोहन बैठे जाई ॥  
 नव मगियन के भुइ में, देवन चली गोपान ।  
 अन्न-पन्न दोऊ भये, कुंवरि किसोरी लाल ॥  
 मनहि फूले फिरै ॥

४५

नन हरि नीनी स्याम, परी राधे मुरझाई ।  
 भई मिथिल राव देह, बात कछु कही न जाई ॥  
 दोरि सखी कुंजन चली, नैनन डारति नीर ।  
 श्रीदीन ! बछ जनन करि, हिरदै धरनि न धीर ॥  
 हरची मनमोहता ॥

५०

गन्धिग्न जैवे वैन कहे, पै कुंवरि न दोलै ।  
 पुंदरि विविध प्रवार, नईती नैन न खोलै ॥  
 दूरी देन बीती जवै, तव मुधि आई नैक ।  
 'न्याम ! न्याम ! नदिये लगी, एकहि वार जु कैक ॥  
 बदनि ज्यों बावरी ॥

५५

कौन बाइगी, सुनै ताहि, किन मोहिं बतायौ ।  
 परपंचिनि तुम ग्वाल, भूठ ही मोहिं बुलायौ ॥  
 को राजा वृषभान है? कित वरसानौ गाम? ।  
 कौन तुम्हारी-कुँवरि है? हौ जानत नहि नाम ॥

१०० कान्ह उत्तर दयौ ॥

सुनौ नंद के लाल ! साँवरे कुँवर कन्हाई ।  
 बरसानौ वह गाँउ, जहाँ तुम मुरलि बजाई ॥  
 नटवर भेष बनाइ कै, बैठे आसन मारि ।  
 धुनि सुनि मोही राधिका, औ ब्रज की सिंग नारि ॥

१०५ मनौ टौना करचौ ॥

अहो महरि के पूत ! समौ मुकरन कौ नाही ।  
 जौ न चलौगे बेगि, कुँवरि जीवैगी नाही ॥  
 काली नाग जु नाथियौ, तुम सम और न कोइ ।  
 बृंदावन मै साँवरे, कहा सिखावत मोइ ॥

११० बात जानत सबै ॥

वह राजा वृषभान, एक ही डोल गढ़ावै ।  
 मोहि राधे बैठारि, सखिन पै भोंटा द्यावै ॥  
 अरथ-द्रव्य च्छा नही, पान-पात नहि लैउँ ।  
 जौ इतनौ कारज करै, तौ कुँवरि भली करि दैउँ ॥

११५ बात एती अहै ॥

जो मांगी सां लेउ, सांवरें कुंवर कन्हैया ।  
 दिन मांगे ही देहि, तुम्हें राधा की मैया ॥  
 गह नुनि गुदर नांवरें, लीने सज्जा बुलाइ ।  
 सिध पौनि वृषभान की, ततछन पहुँचे जाइ ॥  
 लगन है नेह की ॥

१२०

तब रानी उठि दीरि, पीरि तें मोहन लाई ।  
 निघासन बैठाइ, हाथ गहि कुंवरि दिखाई ॥  
 दरस-फूंक दै विष हरचौ, निज सनमुख बैठाइ ।  
 बहु धन वागति है सखी, मुदित कुंवरि की माइ ॥  
 धन है इह घरी ॥

१२५

नुनत वचन ततकाल, लइंती नैन उधारे ।  
 निरखत ही घनस्याम, वदन तें केस सँवारे ॥  
 सब अपने घर निरखि कै, पुनि निरखी ढिँग माइ ।  
 अचरा डारयो वदन पै, मन दीनी मुसकाइ ॥  
 सकृच मन मैं बड़ी ॥

१३०

झेति दोउन की प्रेम, जु कीरनि मन मुसकाई ।  
 जोरी जुग जुग जियो, विधाता भली बनाई ॥  
 सपी नहं जुरि विप्र सीं पहुँचत तें वनमाल ।  
 राधे के कर छाडि कै, गर मेली नैदलाल ॥  
 बात आछी बनी ॥

१३५



सुनत सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले ।  
 नाचत-गावत चले, प्रेम-रस मैं अनुकूले ॥  
 जसुमति रानी घर सज्यौ, मोतिन चौक पुराइ ।  
 बटत बधाई नंद के, 'नंददास' बलि जाइ ॥  
 कि जोरी सोहनी ॥



## भँवरगीत

ऊर्षी काँ उपदेन, मुनी ब्रजनागरी ।  
 रूप, सील, लावन्य, सब गुन आगरी ॥  
 प्रेमगुजा, रसहपिनी, उपजावनि सुख-पुज ।  
 मुदर स्वाम विलासिनी, नय वृंदावन-कुज ॥  
 मुनी ब्रजनागरी ॥

५

गहरी स्याम संदेस एक, मैं तुम पै लायी ।  
 बहग नमै नकेत, कहूँ श्रीसर नहिँ पायी ॥  
 मोचत ही मन में रखी, कब पाऊँ इक ठाउँ ।  
 कहि नैरेस नंदलाल की, बहुरि मधुपुरी जाउँ ॥  
 गुनी ब्रजवासिनी ॥

१०

गुनन न्याम की नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली ।  
 भरि आनंद-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली ॥  
 पन्क्ति रोम सद ब्रैग भये, भरि आवे जल नैन ।  
 गेट घटे गदगद गिरा, बोले जान न वैन ॥  
 विवस्त्रा प्रेम की ॥

१५

अर्घासन            वैठारि, और परिकर्मा दीनी ।  
 स्याम सखा निज जानि, बहुरि सेवा बहु कीनी ॥  
 बूझत सुधि नंदनाल की, विहसित-मुख ब्रजवाल ।  
 नीके है बलवीर जू, बोलति वचन रसाल ॥  
 सखा सुनि स्याम के ॥

२०

कुसल स्याम अरु राम, कुसल संगी सब उन के ।  
 जडुकुल सगरे कुसल, परम आनंद सवन के ॥  
 बूझत ब्रज-कुसलात कां, हां आयी तुम तीर ।  
 मिलिहैं थोरे दीस मैं, जिनि जिय हीहु अधीर ॥  
 सुनौ ब्रजवासिनी ॥

२५

सुनि            मोहन-संदेश, रूप सुमिरन हैं आयी ।  
 पुलकित आनन अलक, अग आवेस जनायी ॥  
 विह्वल हैं धरनी परी, ब्रजवनिता मुरझाइ ।  
 दै जल-छोट प्रबोधही, ऊधौ वात बनाइ ॥  
 सुनौ ब्रजवासिनी ॥

३०

वे तुम तैं नहिं दूरि, ग्यान की आँखिन देखौ ।  
 अखिल बिस्व भरपूरि, ब्रह्म सब रूप बिसेखौ ॥  
 लौह, दारु, पाषाण मैं, जल-थल माहि अकास ।  
 सचर, अचर वरतत सबै, जोति ब्रह्म परकास ॥  
 सुनौ ब्रजवासिनी ॥

३५

जान ब्रह्म की ज्ञानि ? ग्यान कारी कही ऊची ? ।  
 हमारे मंदन त्याग, प्रेम की मारण सूची ॥  
 नैन, वैन, धुनि, नासिका, मोहन-रूप दिखाड ।  
 मुधि-बधि सब मुरली हरी, प्रेम-उगीरी लाइ ॥  
 मन्वा मुनि त्याम के ॥

४०

बह सब नगुन उपाधि, रूप निर्गुन है उन की ।  
 निरधिकार निर्लेप, नगत नहि तीनी गुन की ॥  
 हाथ न पांड, न नासिका, नैन, वैन, नहि कान ।  
 अन्युन-ज्ञानि प्रकास है, सकल विस्व की प्राण ॥  
 मुनी ब्रजवासिनी ॥

४१

जी मुख नाहिन हती, कही किन माग्यन गायी ? ।  
 पाडन विन गोनंग, कही को वन वन धायी ? ॥  
 आगिन में अजन दियो, गोवर्धन निरी हाथ ।  
 मंद-जगोदा पूत है, कुंवर कान्हू ब्रजनाथ ॥  
 सखा मुनि त्याम के ॥

४०

माहि कही तुम कान्हू, ताहि कोउ पिता न माना ।  
 अगिन में ब्रह्मंड, विस्व उन ही न जाना ॥  
 लाला-लून अन्तारि न, धरि आये तन त्याम ।  
 जोग-जगनि ही पार्य, परब्रह्म - पुर - धाम ॥  
 मुनी ब्रजवासिनी ॥

४१

ताहि बतावहु जोग, जोग ऊधौ जेहि पावौ ।  
 प्रेम-सहित हम पास, नंद-नंदन-गुन गावौ ॥  
 नैन, बैन, मन, प्रान मै, मोहन-गुन भरपूरि ।  
 प्रेम-पियूषै छोड़ि कै, कौन समेटै धूरि ॥

६०

सखा सुनि स्याम के ॥

धूरि बुरी जौ होइ, ईस क्यौ सीस चढावै ।  
 धूरि-छेत्र मै आइ, कर्म करि हरि-पद पावै ॥  
 धूरिहि तै यह तन भयौ, धूरिहि तै ब्रह्मंड ।  
 लोक चतुर्दस धूरि तै, सप्त दीप, नव खंड ॥

६५

सुनौ ब्रजवासिनी ॥

कर्म धर्म की बात, कर्म अधिकारी जानै ।  
 कर्म-धूरि कौ आनि, प्रेम-अमृत मै सानै ॥  
 तब ही लौ सब कर्म है, जब लौ हरि उर नाहि ।  
 कर्मबंध सब बिस्व के, जीव बिमुख ह्वै जाहि ॥

७०

सखा सुनि स्याम के ॥

।  
 कर्महि निदौ कहा, कर्म तै सदगति होई ।  
 कर्म रूप तै बली, नाहि त्रिभुवन मै कोई ॥  
 कर्महि तैं उतपत्ति है, कर्महि तैं है नास ।  
 कर्म किये तैं मुक्ति है, परब्रह्म-पुर वास ॥

७५

सुनौ ब्रजवासिनी ॥

कर्म पाप अर पुन्य, लीह नीने की बेरी ।  
 पायन वंवन दोउ, कोउ मानी बहतेरी ॥  
 ऊँच कर्म तैं स्वर्ग है, नीच कर्म तैं भोग ।  
 प्रेम दिना नव पचि मरे, विषय-वासना-रांग ॥  
 गन्वा मुनि स्याम के ॥

८०

कर्म बुरे जी हौहि, जोग काहे कोउ धार ।  
 पद्मासन नय द्वार रोकि, डंढिन की मार ॥  
 ब्रह्म-प्रणि जरि सुद्ध है, सिद्धि-समाधि लगाड ।  
 नील हीड नायुज्य में, जोनिहि जोति समाड ॥  
 मुनी ब्रजवासिनी ॥

८१

जोगी जोतिहि भजे, भक्त निज रूपहि जानें ।  
 प्रेम-पियूष प्रगट, स्यामसुंदर उर आनैं ॥  
 निर्गुन गुन जो पायै, लोग कहै यह नाहि ।  
 घर आयी नाग न पूजही, बाँधी पूजन जाहि ॥  
 गन्वा मुनि स्याम के ॥

८०

जी उन के गुन हौहि, वेद क्यौ नेति बतावैं ।  
 निर्गुन भगुन आत्मा, रचि उपनिषद जु गावैं ॥  
 वेद-प्रगटन खोजि के, नहि पायी गुन एक ।  
 गन ह के गुन हौहि जो, कही प्रग्यान किहि टेक ॥  
 मुनी ब्रजवासिनी ॥

८१

जी उन के गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ तैं ।  
 बीज बिना तरु जमै, मोहि तुम कहाँ कहाँ तैं ॥  
 वा गुन की परछाँह री, माया-दर्पन वीच ।  
 गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि कीच ॥

१००

सखा सुनि स्याम के ॥

माया के गुन और, और हरि के गुन जानी ।  
 वा गुन कौ इन माँझ, आनि काहे कौं सानी ॥  
 जाके गुन अरु रूप कौ, जानि न पायौ भेद ।  
 तातै निर्गुन ब्रह्म कौं, वदत उपनिषद-वेद ॥

१०५

सुनौ ब्रजनागरी ॥

वेदहु हरि के रूप, स्वास मुख तैं जो निसरै ।  
 कर्म, क्रिया, आसक्ति, सबै पिछली सुधि विसरै ॥  
 कर्म-मध्य दूढै सबै, किनहुँ न पायौ देख ।  
 कर्म-रहित ही पाइयै, तातै प्रेम विसेख ॥

११०

सखा सुनि स्याम के ॥

प्रेमहि कोऊ वस्तु-रूप, देखत लौ लागै ।  
 वस्तु-दृष्टि विन कहौ, कहा प्रेमी अनुरागै ॥  
 तरनि चंद्र के रूप कौ, गुन नहि पायौ जान ।  
 तौ उन कौ कहा जानियै, गुनातीत भगवान ॥

११५

सुनौ ब्रजवासिनी ॥

नरनि अकास प्रगान, तेजमय रह्यो दुगई ।  
 दिव्य-दृष्टि बिन कही, कौन पै देख्यो जाई ॥  
 जिन के ये आंखें नहीं, क्यों देखे वह रूप ।  
 निन्दे विस्वाम क्यों ऊपजै, परे कर्म के कूप ॥

सखा सुनि स्याम के ॥

१२७

जब करिय नित-कर्म, भक्ति हू तामें आई ।  
 तम लप तैं कही, कौन पै छूट्यो जाई ॥  
 कर्म करम कर्महि किये, कर्म नास हूँ जाहि ।  
 तब प्राणम निहकर्म हूँ, निर्गुन ब्रह्म गमाहि ॥

मुनी ब्रजवामिनी ॥

१२८

जो हरि के नाहि कर्म, कर्म बंधन हूँ आवै ।  
 नी निर्गुन हूँ वस्तु-भाव, परमान व्तावै ॥  
 जो उन के परमान है, ती अभुता कछु नाहि ।  
 निर्गुन भये अनात के, मगुन सकल जग माहि ॥

सखा सुनि स्याम के ॥

१२९

जो गुन पावै दृष्टि माँग, नस्वर है सारे ।  
 इन नदहित हैं वानुदेव, अच्युत हैं न्यारे ॥  
 उन्ही दृष्टि बियार नै, रहत अयोधज जानि ।  
 मुदु-मन्त्री ग्यान की, प्रापति तिन को होति ॥

मुनी ब्रजवामिनी ॥

१३०



नास्तिक जे है लोग, कहा जानै हित रूपै ।  
 प्रगट भानु कौ छाँड़ि, गहै परछाही धूपै ॥  
 हमरे बिन वह रूप ही, और न कछू सुहाइ ।  
 ज्यौ करतल आमलक के, कोटिक ब्रह्म दिखाइ ॥

१४०

सखा सुनि स्याम के ॥

ऐसै मै नंदलाल रूप, नैनन के आगे ।  
 आइ गये छवि छाई, बने वीरे अरु बागे ॥  
 ऊधौ सौ मुख मोरि कै, तिन ही सौ कहै बात ।  
 प्रेम-अमृत मुख तै श्रवत, अबुज-नैन चुचात ॥

१४५

तरक रसरीति की ॥

अहो नाथ, अहो रमानाथ, जदुनाथ गुसाई ।  
 नंद-नदन बिडराति फिरति, तुम बिन बन गाई ॥  
 काहे न फेरि कृपाल त्वै, गो-नवालन सुधि लेहु ।  
 दुख-जलनिधि हम बूझी, कर अवलबन देहु ॥

१५०

निटुर त्वै कहँ रहे ॥

कोउ कहै अहो दरस देहु, पुनि बेनु बजावौ ।  
 दुरि दुरि बन की ओट, कहा हिय लौन लगावौ ॥  
 हम कौ पिय तुम एक हौ, तुम कौ हम सी कोरि ।  
 बहुत पाइ कै रावरे, प्रीति न डारौ तोरि ॥

१५५

एक ही बार जी ॥

कोउ कहै अहो दरम देत, फिरि लेत दुराई ।  
 यह छलबिद्या कहौ कौन पिय तुमहिं सिखाई ॥  
 हम सब नम-आधीन है, तार्त बोलत दीन ।  
 जल बिन कहौ कौनै जियै, पराधीन जो मीन ॥  
 विचारी राखरे ॥

१६०

कोउ कहै अहो स्याम, कहा इतराड गये हो ।  
 मयुग की अधिकार पाड, महाराज भये हो ॥  
 ऐंगी कछू प्रभुता अहो, जानत कोऊ नाहि ।  
 अदना-अध नुनि डरि गये, बड़े बली जग माहि ॥  
 पराक्रम जानि कै ॥

१६५

कोउ कहै अहो स्याम, चहत मारन जी ऐमें ।  
 गिरि गोवर्धन धारि, करी नच्छा नुम कैसे ॥  
 व्यान, अनन, विष-ज्वालनै, राखि लई सब ठौर ।  
 विरह-प्रनन अब रहत ही, हँसि हँसि नंदकिमोर ॥  
 चोरि चिन लै गये ॥

१७०

कोउ कहै ये निठुर, उन्हें पातक नाहि व्यापै ।  
 पाद-नृत्य के कर्नहार, ये ही हैं आपै ॥  
 ल के निदंय नय मै, नाहित कोऊ चित्र ।  
 कल-नयन जानत हरे, पूतना बाल चरित्र ॥  
 मित्र ये कौन के ॥

१७५

कोउ कहै री आज नाहि, आगे चलि आई ।  
 रामचंद्र के रूप, धर्म मै ही निठुराई ॥  
 जग्य करावन जात हे, बिस्वामित्र समीप ।  
 मग मै मारी ताड़का, रघुवंसी-कुल-दीप ॥

१८०

बाल ही रीति यह ॥

कोउ कहै ये परम धर्म, इस्त्रीजित पूरे ।  
 लच्छ लच्छ संधान धरे, आयुध के सूरे ॥  
 सीता जू के कहे तै, सूपनखा पै कोप ।  
 छेदि अग विरूप करि, नोगन लज्जा लोप ॥

१८५

कहा ताकी कथा ॥

कोउ कहै री सुनौ ओर, इन के गुन आली ।  
 बलि राजा पै गये, भूमि माँगन बनमाली ॥  
 माँगत वामन रूप धरि, परबत भये अकाइ ।  
 सत्य धर्म सब छोंडि कै, धरचौ पीठि पै पाइ ॥

१९०

लोभ की नाउ ये ॥

कोउ कहै री कहा, हिरनकस्यप पै विगरचौ ।  
 परम ढीठ प्रह्लाद, पिता-सनमुख ह्वै भगरचौ ॥  
 सुत अपने कौ देत हो, सिच्छा दंड बँधाइ ।  
 इन बपु धरि नरसिध कौ, नखन बिदारचौ जाइ ॥

१९५

बिना अपराध ही ॥

कोउ कहै इन परचुराम है, माता भारी ।  
 फग्या कांधे धारि, भूमि छनित संवारी ॥  
 ध्यानित-कुंड भराउ कै, पोखे अपने पित्र ।  
 इन के निर्दय रूप में, नाहित कोउ चित्र ॥  
 बिलग कहा मानियै ॥

२००

कोउ कहै री कहा दोष सिसुपाल नरेसै ।  
 व्याह करन को गयी, नृपति भीषम के देसै ॥  
 बल-बल जोरि बरन को, ठाडी हो छवि बाढि ।  
 उन छल करि दुलही हरी, छुधित आस मुग्न बाढि ॥  
 आपने स्वारथी ॥

२०५

हि विधि है आवेस, परम प्रेमहि अनुरागी ।  
 गौर रूप पिय-चरित, तहाँ कछु सोचन नागी ॥  
 रोस रोस रहे व्यापि कै, जिन के नोहन आइ ।  
 निन के भूत भविष्य की, जानत कोउ न दुराइ ॥  
 रंगीनी प्रेम की ॥

२१०

देखत उन को प्रेम, नम ऊधी को भाज्यी ।  
 निमिर भाउ आवेस, बहुत अपने मन लाज्यी ॥  
 मन नं कही गइ पाउ कै, नै माये निज धारि ।  
 परम वृत्तांत्य है रक्षी, विभुवन आनंद वारि ॥  
 वंदना जांग ये ॥

२१५

कोउ कहै रे मधुप, कौन तुम कहै मधुकारी ।  
 लिये फिरत मुख जोग-गाँठि प्रेमी वधुकारी ॥  
 रुधिर पान कियौ बहुत कै, अधर अरुन रँग रात ।  
 अब ब्रज मै आये कहा, करन कौन की घात ॥

२६०

जात किन पातकी ॥

कोउ कहै रे मधुप प्रेम पटपद पसु देख्यौ ।  
 अब लौं इहि ब्रज देस माहिं, कोउ नाहिं विसेख्यौ ॥  
 दोइ सिंग मुख पर जमै, कारी-पीरी गात ।  
 खल अमृत सम मानही, अमृत देखि डरात ॥

२६५

वादि यह रसिकता ॥

कोउ कहै रे मधुप, ग्यान उलटी लै आयौ ।  
 मुक्ति परे जे रसिक, तिन्है फिरि कर्म बतायौ ॥  
 वेद पुरानन-सार जे, मोहन-गुन गहि लेत ।  
 तिन कौ आतम सिद्धि की, फिरि फिरि संथा देत ॥

२७०

जोग चटसार मै ॥

कोउ कहै अहो मधुप, निगुन-निरनै बहु जानौ ।  
 तर्क-वितर्कन जुक्ति, सास्त्र हू तैं बहु आनौ ॥  
 पै इतनौ नहि जानही, वस्तु बिना गुन नाहिं ।  
 निर्गुन सक्ति जु स्याम की, लिये सगुन ता माहिं ॥

२७५

जोति जल-बिंब मै ॥

कोउ कहै रे मधुप, तुम्हें लाजो नहि आवै ।  
 स्वामी तुम्हरी स्वाम, कूवरीनाथ कहावै ॥  
 ह्यो नीची पदवी हुती, गोपीनाथ कहाइ ।  
 अब जदुकुल पावन भयी दासी जूठन खाइ ॥  
 मरत कह बोल की ॥

२८०

कोउ कहै अहो मधुप, न्याम जोगी तुम चेला ।  
 कूवजानीरथ जाइ, करौ इंद्रिन की मेला ॥  
 मधुवन सिधि फेनाइ कै, आवे गोकुल माहि ।  
 इत सब प्रेमी लोग है गाहक तुमरे नाहि ॥  
 पधारी रावरे ॥

२८१

कोउ कहै अहो मधुप, साधु मधुवन के ऐसे ।  
 और तहा के मित्र लोग, लैंहै धी कंस ॥  
 अवगत गुन गहि लेत हैं, गुन का चरत भेदि ।  
 मोहन निर्गुन क्यों न होहि, तुम साधुन की भेदि ॥  
 गाठि की खांड कै ॥

२८२

कोउ कहै रे मधुप हीहि तुम मे जी संगी ।  
 म्यां न हीहि नन न्याम, सकल वानन चतुरंगी ॥  
 गोकुल में जोगी कोऊ, पाई नाहि मुगारि ।  
 मदन प्रियंगी आप है, करी प्रियंगी नारि ॥  
 क्यभुन-नील की ॥

२८५

कै हौ ह्वै रहौ गुल्म लता, वेली वन माही ।  
 आवत-जात सुभाज, परै मो पै परछाहीं ॥  
 सोऊ मेरे बस नही, जो कछु करौ उपाइ ।  
 मोहन हौहि प्रसन्न जी, यह वर माँगी जाइ ॥  
 ३४० कृपा करि दैहि जी ॥

ऐसै मन अभिलाष करत, मथुरा फिरि आयौ ।  
 गदगद पुलकित रोम, अंग आवेस जनायौ ॥  
 गोपी-गुन गावन लग्यौ, मोहन-गुन गयी भूलि ।  
 जीवन कौ लै का करै, पायौ जीवनमूलि ॥  
 ३४५ भक्ति कौ सार यह ॥

ऐसै सोचत जहाँ स्याम, तहँ धायौ आयौ ।  
 परिकर्मा दंडौत, प्रेम सो बहुत जनायौ ॥  
 कछु निर्दयता स्याम की, करि क्रोधित दोउ नैन ।  
 कछु ब्रजवनिता प्रेम की, बोलत रस-भरे बैन ॥  
 ३५० सुनौ नंद-लाड़िले ॥

करुनामय है रसिकता, तुम्हरी सब भूठी ।  
 तब ही लौ लहै लाख, जबहिं लौ बाँधी मूठी ॥  
 मै जान्यौ ब्रज जाइ कै, निर्दय तुम्हरी रूप ।  
 जो तुम की अवलंबही, तिन कौ मेलौ कूप ॥  
 ३५५ कौन यह धर्म है ॥

पूनि पूनि कहाँ, अहो चली, जाऊ वृंदावन रहिये ।  
 परम प्रेम को पूज, जहाँ गोपिन मँग रहिये ॥  
 घोर काम सब छड़ि के, उन लोगन मुन देह ।  
 नानक टूट्यो जान है, अब ही नेह सनेह ॥  
 करीगे ती कहा ॥

३६०

गुनत भगवत के बँत, नैन भनि आये दोऊ ।  
 विषम प्रेम प्रावेस, रही नाही मुधि कोऊ ॥  
 रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही सावरे गान ।  
 कल्पतरावर सावरी, ब्रज-वनिता भई पान ॥  
 उलहि अंग अंग तै ॥

३६१

ह्वै सचेत कही भले सखा पठये मुधि-न्यावन ।  
 आंगन तमरे आनि तहाँ नै लगे दत्तावन ॥  
 माँ मैं उन मैं अनरौ, एकी छिन भनि नाहि ।  
 ज्यों देखों माँ मान के, त्यों मैं उन ही माहि ॥  
 तरंगनि वारि ज्यों ॥

३६०

गोपी आन दिवाट, एक करि कै बनवारी ।  
 उर्वी भग्न निवागि, छारि माया की जारी ॥  
 कजरी मय दिवाट के, लीनी बहूनि दुगड ।  
 'नन्दान' पावन भयो, मुन यह लीला गार ॥  
 प्रेमग्न पुजिनी ॥

३६१



## रुक्मिणी मंगल

- श्री गुरुचरन-प्रताप, सदा आनंद बढै उर ।  
 कृष्ण-कृपा तै कथा कहौ, पावत सुख सुर-नर ॥  
 रुक्मिनि-हरन पुनीत, चित्त दै मुनै-मुनावै ।  
 जाहि मिटै जम-त्रास, वास हरि के पद पावै ॥
- ५ सिसुपालहि दई रुक्म, रुक्मिनी बात सुनी जव ।  
 चित्र लिखी सी रही, दई यह कहा भई अब ॥  
 चकित चहौ दिसि चाहति, बिछुरि मनु मृगी माल तै ।  
 भयी है वदन कछु मलिन, नलिन जनु गलित नाल तै ॥  
 भरि आये जल नैन, प्रेम-रस ऐन सुहाये ।
- १० जनु सुदर अरविद, अनिन-दल बैठि हलाये ॥  
 अलि पूछति बलि बात, कहौ क्यौ नैननि पानी ।  
 पुहुप-रेनु उडि परी, कहति तिन सौ मधु बानी ॥  
 काहू के ढिँग कुँवरि, बड़े बड़े स्वास न लेई ।  
 कहत बात, मुख मूँदि मूँदि, उत्तर तिहि देई ॥
- १५ जो कोउ तपत उसास, उदास वदन तै लहिहै ।  
 कन्या बिरहिनि, बिरह-दुख का का सौ कहिहै ॥  
 सुसम कुसम के हार, उदार सखी गुहि लावै ।  
 कर सौ कुँवरि न परसै, अर सौ निकट धरावै ॥

अपने कर जु विरह-जुर जानति प्रति हो नाते ।  
 मति मुरझाए सो माना, बाला डरपति याते ॥ २०  
 मिट्टी भूख अग प्यास, पास कोउ और न भावै ।  
 कोने जाउ उमास भरे, दुख कहत न आवै ॥  
 दुरी न रहति पिय आगनि, प्रगटहि देति दिखार्ई ।  
 पुलकि अग, स्वर-भंग, न्वेद, कबहुँ जड़नार्ई ॥  
 उर घर धर धर कंपत, चिंतत कुँवर कन्हार्ई । २५  
 कबहुँ टकी लागि जाउ, कबहुँ आवत मुरझार्ई ॥  
 हँ गयी कछु विद्वरन नन, छाजत यो छवि छार्ई ।  
 रूप अनूपम बेलि, ननक मनु घाम मै छार्ई ॥  
 मंगल दुंदुभि मृते, धुने धुन ज्याँ मन माही ।  
 निगखि निगखि कर-कंकन, दृग जल भरि भरि आही ॥ ३०  
 टप टप छत्रिले नैनन ह नै अमुवा डरही ।  
 मनु नव नील कमल-दल तै भल मोतिया भरही ॥  
 गह्वरे मन मन मोचन, मोचन स्वाम डरारे ।  
 मोहन मोहन न्याम, न हँदे पाय हमारे ॥  
 उपजि विरह-दुख-दवा, अवा-उर ताप नये है । ३५  
 कोउ कोउ हार के मोतिया, नचि नचि लाल भये है ॥  
 करन विचार मतहि मन, अय धी कैसी कीजै ।  
 नौराज, कुलकानि विचै, मोहि नरवम छीजै ॥  
 ज्यो पिय हनि अनुगरी, करी मोउ जतन, धरी हट ।  
 गत, गत अग भान, बधुजन नये पगी भठ ॥ ४०

आगि लागि जरि जाहु लाज, जो काज बिगारै ।  
 सुदर नंद-कुँवर . नगधर सौ अंतर पारै ॥  
 पति परिहरि, हरि भजत भई, गोकुल की गोपी ।  
 तिनहुँ सबै विधि लोपी, परम प्रेम-रस-ओपी ॥

४५

तिन के चरन-कमल-रज, अज से वांछन लागे ।  
 सनक, सनंदन, सिव, सारद, नारद अनुरागे ॥  
 इहि विधि धरि मन धीर, चीर अँसुवन सिराइ कै ।  
 लिख्यौ पत्र सु बिचित्र, चित्र नाना वनाइ कै ॥  
 तब इक द्विज बर बोलि, खोलि निज बात कही सब ।

५०

अहो देव, द्विजदेव ! पिया पै तुरत जाहु अब ॥  
 यह पाती मो नाथ-हाथ, ही मै तुम दीजौ ।  
 काहू नाहि पतीजौ, बलि बलि एती कीजौ ॥  
 द्विज न गयौ फिरि भवन, गवन कियौ धरि जु पवन-गति ।  
 आरति निरखि रुक्मिनी, अरु उत कृष्ण-दरस-रति ॥

५५

पुरी परम माधुरी, चाहि कै चकित भयौ चित ।  
 श्रीनिवास कौ निज निवास, छवि को कहियै तित ॥  
 वन-उपवन के रूख, भूख भाजै तिहिं देखै ।  
 अमृत-फरन करि फरे, ढरे सुर-द्रुमन विसेखै ॥  
 ललित लतनि की फूलनि, भूलनि अति छवि छाजै ।

६०

तिन पर अलि-रव राजै, मधुरे जंत्र से बाजै ॥  
 सुक, पिक, चातक सबद, सु मीठी धुनि अस रटही ।  
 मनौ मार-चटसार, सुढार चटा-गन पढ़ही ॥

और विहंगम रंग भरे, बोनत हिय हरही ।  
 जन तरवर रस भरे, परस्पर वार्ता बगही ॥  
 गुनग गुग्गुं सरावर, निर्गुण मुनि-मन जैने । ६५  
 प्रफुलित बरुई छंदु, सरावर राजत तंसै ॥  
 फुज कुंज प्रति, पुंज, भेंवर, गुंजत अनुहारे ।  
 मनीं रवि-उर तम भजै, तजै, रोवन है वारे ॥  
 उज्ज्वल मनिमय अटा, घटा सौ वार्ता करई ।  
 जगमग जगमग जोति होति, रवि-मसि नीं अरई ॥ ७०  
 चपल पताका फरकै, अरकै अरक-किरन जहै ।  
 घाम न कयहूँ परसै, नित ही छांह रहत तहै ॥  
 जाल-रंघ्र-मग अग-धूम, जनीं जल-धर धुरवा ।  
 आनंद भरि भरि उगवा, नाचत मधुरे मुरवा ॥  
 दगन बगर नव नगर, उड़ी नभ गुड़ी बनी छवि । ७५  
 मनीं गगन में अगन, चीखुटे चंद रहे फवि ॥  
 तमैं देव विमाननि चढ़ि, द्वागवति आये ।  
 देवि देवि हिय हरखै, बरखै सुमन मुहाये ॥  
 वृत्त-भायनी पुरी निगति, द्विज हृष भयी अग ।  
 जगत-हृंद तै निकनि, ब्रह्म-आनंद मिल्यो जस ॥ ८०  
 निहोरी छवि गोरी रही, न कही बनि आवै ।  
 अथै, बमै, अरु काम, मोक्ष, जिहि निरखत पावै ॥  
 नहै यत्नेक परचार, मार नै बनि बनि टाढ़े ।  
 कृष्ण-रत्नतर मुंजर, नीतन छांह के वाढ़े ॥

- ८५ ब्रह्म, रुद्र, अमरेंद्रवृंद की भीर भुलावै ।  
भीतर जान सो पावै, जिहि हरिदेव बुलावै ॥  
चल्यो गयी तहँ विप्र छिप्र गति, कितहुँ न अटय्यो ।  
प्रभू जानि ब्रह्मन्व, पीरिया पाइनि लटक्यो ॥  
जदु पुरुषन के मध्य, देखि जदुपति सुख पायो ।  
९० जनु उडपति उड-मंडल तै महि-मंडल आयो ॥  
किधौ कमल-मंडल मै, अमल दिनेस विराजै ।  
कंकन, किंकिनि, कुडल, किरन महा छवि छाजै ॥  
ताहि दूरि तै निरखि, परखि, हरि हर्षित होई ।  
प्रिय संदेस कहैया है, यह द्विज वर कोई ॥  
९५ उठि नंद-नदन, जग-वंदन, पद-वंदन करि कै ।  
लै चले घर द्विज वर कौं, हरि कर पै कर धरि कै ॥  
दुग्ध-फैत सम सैन, रमा-मन ऐन सुहाई ।  
ता ऊपर बैठाइ, पाइ धोये जदुराई ॥  
अष्टगंध उज्जोदक सौ, अस्नान कराये ।  
१०० मंजुल मृदुल महीन, नवीन सु पट पहिराये ॥  
खान-पान बहु मान, पान निज पानि खवाये ।  
कही कहाँ तै आये, बोलौ वचन सुहाये ॥  
तव रुक्मिनि कौ कागर, नागर नेह नवीनी ।  
वसन-छोर तैं छोरि, विप्र श्रीधर-कर दीनी ॥  
१०५ मुद्रा खोलि गोविंद-चंद, जव वाँचन आँचे ।  
परम प्रेम-रस साँचे, अच्छर परत न वाँचे ॥

श्री हरि हियो गिरायन, लावन नै नै छाती ।  
 दिखी विरह के हावन, पाती अजहँ तानी ॥  
 लिये नाच, सचु पाच, बहिरि द्विज वर कीं दीनी ।  
 नमिमनि प्रेमुवन भीती, पुनि हरि अंगुवन भीनी ॥ ११०  
 पदन लखी द्विज गनी, भविगनी-वचन सुहाये ।  
 नव हरि के मन-नैन, तिमिटि नव भवननि आये ॥  
 स्वस्ति न्वस्ति, श्री श्री-निबान, श्रुति-वात, सहाइक ।  
 मूर, नर, मुनि, गवध, जच्छ किन्नर, विधि-नाइक ॥  
 नृप विदर्भ की कन्या, रक्षिमनि अनुचरि गनियँ । १११  
 नानी प्रथम प्रनाम बाधि, पुनि विनती सुनियँ ॥  
 विनय नार्तिनै गनियँ, जनियँ अपनी करि कै ।  
 मग्न होत दुग-जलनिधि में, उद्धरी कर धरि कै ॥  
 जन तै तुम्हरे गुन-नाज, मुनिजन नारद गाये ।  
 तव तै श्रीर न भाये, अनृत तै अधिक सुहाये ॥ ११२  
 मैं तुम मन करि बरे, कँवर गिरिवरन पियारे ।  
 ही भरी तुम परचार, नाव तुम भये हमारे ॥  
 अब दिवन्द नगि कराँ, बरी विभुवन-पति सुदर ।  
 तात परम गुण-भाग, नवान् मुख-भोग-पुरदर ॥  
 श्रीर लखी दुख-भरने, दरे अंतर ही अंतर । ११३  
 तात लाल से लरे, परे छिन ही छिन तंतर ॥  
 श्रमत के नव गोरें, नव नव पानित धारें ।  
 हार लज नहि आवै, जछपि उज्जल ओरें ॥

निन नै ५० सिमुपाल, नाहि मोहि देत रुक्म राठ ।

नाहनात पनि हारें, होत नहि सो चट तें गठ ॥

अनि हीड गो करिये, करत नाज नाहि मरिये ।

वाग्न-मृद-विदारत ! अलि गोमाय न डरिये ॥

गला हंत, जदुवंस, वीर जू बलहि विचारो ।

है तुमरी यह भाग, काग सिमुपाल विदारो ॥

परत परेवा नभ तें, पर कर देखत याकी ।

तुम सब लाइक अछत, छुवै सिमुपाल छिया कां ॥

जी नगधर नंदलाल, मोहि नहि करिही दासी ।

ती पावक परि जरिही, करिही तन की कासी ॥

मरि मरि, धरि धरि देहन, पैही सुंदर हरि वर ।

पै यह कवहुं न हीड, स्याल सिमुपाल छुवै कर ॥

मुनि रुक्मिनि की पाती, छाती पनि लगाइ कै ।

सारथि तें रथ मांग्यो, रुक्म पै अति रिसाइ कै ॥

तुरत चढे, छवि-बढे, चढत वानक वनि आयो ।

अरवर मैं खसि परचौ, पीतपट, द्विज पकरायो ॥

करत विप्र सौ वात, लसत, विकसत सुंदर मुख ।

जनु कुमुदिनि घर चलयो, चंद्रमा दैन परम सुख ॥

अहो द्विज ! सब दल दलमलि, लाऊँ रुक्मिनि ऐसे ।

दारु मथन करि सार, अग्नि-कन काढत जैसे ॥

जानि प्रिया की आरति, हरि अरवर सौ धाये ।

मन की सी गति करे, चले कुंदनपुर आये ॥'

उसी वृन्दार नरफरत, फिरत घर आगत ऐसै ।

मद-नर तपन करी मछरी, थोरै जय जैन ॥

चढ़ि चढ़ि यदति, भारोत्थति, भाँकति तबत किसोरी ।

बड़-उदें ज्यौं नाहन, आरत तृपित चकोरी ॥

याम भुजा लगी फारवान, कान्बुकी बँध लगे तरकन ।

१५५

दिय तैं मूल लगी गरकन, उर-प्रनर लगी धरकन ॥

ताही छित बह द्विज वर, चलि अनहपुर आयी ।

रगन उहउछी देनि, कछु मन धोरन पायी ॥

पँछि न सकै नुय वान, दर्ड यह कहा कहँगौ ।

गिरी अमृत नौ नीति, कियो विष देह दहँगौ ॥

१६०

निकनि प्रान निय-तन तै, द्विज के दचनति आये ।

उय कहाँ 'श्री हरि आये', मतहुँ बहुरयी फिरि आये ॥

दिया नहँ कछु द्विजहि, नही देवै निहि लाइक ।

तब उठि पावनि परी, भरी आनंद महा इक ॥

नुर-नर जाकीं मेवन, मेवन ह नहि लहियै ।

१६५

मो नछिमो जिहि पाइ परी, नाकी कहा कहियै ॥

पर के लोगन मुनी, कि श्री सुंदर वर आये ।

जहो तहो न आये, देनि हरि विम्मय पाये ॥

कोटि काम-नावन-प्रान, अँग साँवरे पिय के ।

जे जे जाती दृष्टि परे, ते भये तिन ही के ॥

१७०

कोउ जो चनक छवि उगने, मन हूँ नाहिन नुरके ।

नावन नटपटी पगिया, नहि नकि तहँ नहँ नुरके ॥



- देखन छवि-छल अपने वर की आरति उलही ।  
 निरखत निरपति सगरे, उरपति नैंक न दुलही ॥
- २२० घूँघट-पट कियो हाँती, सोभित वदन डहडह्यी ।  
 जनों अंवुद तैं अब ही, निवस्यी चंद गहगह्यी ॥  
 सोभा-सदन वदन मै, रदन-छवि राजत ऐसै ।  
 अरुन बदल मै दमकत, दामिनि-अंकुर जैमै ॥  
 श्रवननि सुंदर खुभी, चुभी सब के मन ऐसै ।  
 काम-कलभ की अब ही, उलही दैंतिया जैसै ॥
- २२५ अली अंस भुज दिये, निहारति, अलक सुधारति ।  
 सर-कटाच्छ रस-भरे, सुतकितकि भूपन मारति ॥  
 परे जहाँ तहाँ मुरझि, भूप सब उरझि उरेझा ।  
 पाँचवान-सर साधि, करे मनमथ के वेझा ॥  
 दृष्टि परे जब मोहन सोहन, कुंवर कन्हाई ।
- २३० तिहि छिन दुलहिनि-दसा, नाहि कछु वरनी जाई ॥  
 अरवराइ, मुरझाई, कछु न बसाइ तिया पै ।  
 पंख नाहि तन बने, नतर उड़ि जाइ पिया पै ॥  
 हुरै हुरै पग धरै, हरी रुक्मिनि नियराई ।  
 टक टक सब नृप लखै, मनी ठग मूरी खाई ॥
- २३५ कछु रुक्मिनि चलि आई, हरि लै रय बैठाई ।  
 घन तैं बिछुरी बिजुरी, मनौ घन मै फिरि आई ॥  
 लै चले नागर नगधर, नवल तिया की ऐसै ।  
 मोंखिन आँखिन धूरि पूरि, मधुहा मधु जैसै ॥

गगन हरी जिमि गुया, दर्प सब गगन की हरि ।  
 तेमैं हरि नै चले, आपनो सहज खेल करि ॥ २४०  
 सुंदर साविरे पिय संग, अति ही आभा भानी ।  
 जनु नव नीन्द्र निषट, चार चंद्रिका प्रकाशी ॥  
 हरी हरी यो दुलहिति, कहि सब लोग पुकारे ।  
 कित गये वे सब भूप, जूप लागे वजमारे ॥  
 जरागंध दे आदि, नृपति सजि सजि कै वीरे । २४५  
 महा सिंह के पाछे, कूबन कूकर वीरे ॥  
 देवे रिपु-न्य भारे, तब बलदेव सम्हारे ।  
 मद गज ज्यों नर पैठि, कमल से दलमलि डारे ॥  
 भरत तै अधिक जु मान-भंग, मागव दुख पायी ।  
 जहूँ दूगह सिनुपाल, तहाँ मन राखन आर्य ॥ २५०  
 दुख पै दुख भयी दूनी, कर-कंकन दुख दीन्ही ।  
 चपरि चयन के काजर, पति मुग्य कारी कीन्ही ॥  
 तब निवस्यौ नृप न्यम, धरे मिर कंचन कुलही ।  
 रंजक तुम ठहगहु, आनि देहुं तुमरी दुलही ॥  
 यह कहि निन भरि धायी, आयी हरि पै ऐमै । २५५  
 दुरजन चंग पतंग, प्रबल पावक मै जैनै ॥  
 जो कोऊ मतिनंद, चंद्र की धरि उड़ावै ।  
 उनटि दृगनि जय परै, मृद की तब मुधि आवै ॥  
 जितक छोड़ हरि हिये हुनौ, तेनी नहि कीनी ।  
 मूढ़ नृपि नत च्छटिया नाखि, निहि छाड़ि है दीनी ॥ २६०

इहि विधि सव रन जीति, हरी रुक्मिनि लै आये ।  
 विधिवत कियी विवाह, तिहँ पुर मंगल गाये ॥  
 जो यह मंगल गावै, चित दै सुनै-सुनावै ।  
 सो सव मंगल पावै, हरि-रुक्मिनि मन भावै ॥  
 २६५. हरि-रुक्मिनि मन भावै, सो सव के मन भावै ।  
 'नंददास' अपने प्रभु की यह मंगल गावै ॥

---

## रासपंचाध्यायी

### प्रथम अध्याय

वंदन नर्ग कृपानिधान, श्री मुक्त सुभकारी ।  
 नृद्ध जेतिमय नन्द, मदा सुन्दर, अविकारी ॥  
 हरि-लीला-रंग-मन्त, मुदित, निन विचरत जग में ।  
 अद्भुत गति, कहैं नहिंन अटक, ह्वै निकसत नग में ॥  
 नीलोत्तल-वल स्याम ग्रंग, नव जोवन भ्राजै ।  
 कटिन अन्क मुख-कमल, मनी अलि-प्रवलि विराजै ॥  
 ललित, विसाल सुभान, दिपत मनी निकर-निसाकर ।  
 कृष्ण - भक्ति - प्रतिविद्य, निमिर कोंकोटि दिवाकर ॥  
 कृष्ण - रंग - रस - अयन, नयन राजत रतनारे ।  
 कृष्ण - रसामव - पान, अलस, कछु घूम घुमारे ॥  
 अयन कृष्ण - रंग - भवत, गंड-मंडल भल दरसै ।  
 देनानंद मिली नु मंद नुमकति मधु वरसै ॥  
 उग्रन नासा, अवर-विव, मुक्त की छवि छीनी ।  
 निन विच अद्भुत भाति, सरत कछु डक मसि भीनी ॥  
 पद्-कंठ की रेख देखि हरि-वर्म प्रकासै ।  
 काम, क्रोध, नन्द, लोभ, मोह जिहि निरखत नासै ॥

५

१०

१५

तिन-मधि इक जु कल्पतरु, लागि रही जगमग जोनी ।  
 पत्र-मूल, फल-फूल, सकल हीरा-मनि-मोती ॥  
 तिन-मधि तिन के गव-लुब्ध अम गान करत अलि ।  
 वर किन्नर-गंधर्व, अप्सरा, तिन पर गई वनि ॥  
 ६५ अमृत-फुही, सुख-गुही, अति गुही, परत रहत निन ।  
 रास-रसिक, सुदर पिय को अम दूरि करन हिन ॥  
 तिहि सुरतरु-मधि, अवर एक अद्भुत छवि छाज ।  
 साखा, दल, फल-फूलनि, हरि-प्रतिबिम्ब विराज ॥  
 तान्तर कोमल कनक-भूमि, मनिमय मोहति मन ।  
 ७० देखियत सब प्रतिबिम्ब, मनी धर में दुसरी वन ॥  
 थलज-जलज भलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावै ।  
 उड़ि उड़ि परत पराग, कछु छवि कहत न आवै ॥  
 श्री जमुना अति प्रेम-भरी, तट बहत जु गहरी ।  
 मनि-मंडित महि माहि, दीरि जनु परसत लहरो ॥  
 ७५ तहँ इक मनिमय, इक, वितस्ति कौ संकु सुभग अति ।  
 तापर पोड़पदल-सरोज, अद्भुत चक्राकृति ॥  
 मधि कमनीय करनिका, सब सुख-कदर, सुंदर ।  
 तहँ राजत ब्रजराज-कुँवर, वर रसिक-पुरंदर ॥  
 निकर विभाकर दुति मेढत, सुभ कौस्तुभ मनि अस ।  
 ८० हरि जू के उर रुचिर विपै, लागति सो उड़ जस ॥  
 मोहन अद्भुत रूप, कहि न आवै छवि ताकी ।  
 अखिल, अंड-व्यापी जु ब्रह्म, आभा है जाकी ॥

परमात्मा परब्रह्म, सबन के अंतर्जामी ।

नाराइन भगवान, धर्म करि सब के स्वामी ॥

बाल - कुमार - पीगंड, धर्म-आक्रांत ललित तन ।

५५

धर्मी. नित्य बिसोर, कान्ह मोहन सब की मन ॥

मृदु, उज्जल, स्वामल सुअंग, अद्भुत सिंगार किय ।

नय बिसोर, जे मोर-चट्रिका मुभग सीस दिय ॥

कंठ मुवतन की माल, ललित वनमाल धरे गिय ।

मंद मधुर हँसि, पीत वसन फरकत, करखत हिय ॥

६०

यस प्रभू गोपाल बाल, सब काल बसत जहँ ।

याही नै वैकुण्ठ-विभी कुण्डित लागत तहँ ॥

जदपि सहज माधुरी विपिन, सब दिन सुखदाई ।

तदपि रंगीली सरद समै मिलि अति छवि पाई ॥

ज्याँ अरोल नग जगमगान. सुंदर जराइ सँग ।

६५

स्वयंत, गुनवंत, बहुरि भूपन-भूपित अँग ॥

रानी-मुख-मुख देखि, ललित प्रफुलित जु मालती ।

ज्याँ नद जीवन पाइ, लगति गुनवती बाल ती ॥

छवि नौ फूले अबर फूल, अन्न लगति लुनाई ।

मनहुँ नरद की छात्र छरीली, बिहँसति आई ॥

१००

नाही छिन उडगज उदित, रस रास महाडक ।

कुंकुम-मंडित प्रिया-अदन्त, जनु नागर नाइक ॥

लामल किरन-अरनिमा, वन में व्यापि रही यो ।

मननिज खेल्नो फाग, घुमड़ि घुरि रह्यो गुलाल ज्याँ ॥

- १०५ फटिक-छटा सी किरन, कुंज-रंघ्रनि जब आई ।  
 मानहुँ बितन वितान, सुदेस तनाव तनाई ॥  
 मंद मंद चलि चारु चंद्रमा, अस छवि पाई ।  
 उभकत है जनु रमारमन पिय-कौतुक आई ॥  
 तव लीनी कर-कमल, जोगमाया सी मुरली ।
- ११० अघटित घटना चतुर, वहुरि अधरासव जुरली ॥  
 जाकी धुनि तै निगम अगम प्रगटे बड़ नागर ।  
 नाद-ब्रह्म की जननि, मोहिनी, सब सुख-सागर ॥  
 पुनि मोहन सौ मिली, कछुक कल-गान कियौ अस ।  
 वाम-विलोचन वाल-तियन, मनहरन हौइ जस ॥
- ११५ मोहन मुरली-नाद, श्रवन जु सुन्यौ सब किन ही ।  
 जथा जथा विधि रूप, तथा विधि परस्यौ तिन ही ॥  
 तरनि-किरन ज्यौ मनि, पखान, सवहिन कौ परसै ।  
 सुरजकाति-मनि बिना, नही कहूँ पावक दरसै ॥  
 सुनत चली ब्रज-वधू, गीत-धुनि कौ मारग गहि ।
- १२० भवन-भीति, द्रुम-कुंज-पुज, कितहूँ अटकी नहि ॥  
 नाद-अमृत कौ पंथ, रंगीलौ, सूच्छम भारी ।  
 तिहि मग ब्रज-तिय चली, आन कोउ नहि अधिकारी ॥  
 सुद्ध प्रेममय रूप, पंचभौतिक तै न्यारी ।  
 तिनाहि कहा कोउ गहै, जोति सी जग उजियारी ॥
- १२५ जे रुकि गई घर, अति अधीर गुनमय सरीर बस ।  
 पुन्य-पाप प्रारब्ध सच्यौ, तिन नाहि पच्यौ रस ॥

परम दुसह श्री कृष्ण-विरह-दुख व्याप्यो जिन मैं ।  
 कोटि वरम लागि नरक-भोग-अघ भुगते छिन मैं ॥  
 पुनि रंचक धरि ध्यान, पियहि परिरंभ दियो जव ।  
 कोटि स्वर्ग-सुख भुगति, छीन कीने मंगल सब ॥ १३०  
 पितल-भात्र पाहनहि परसि, कंचन ह्वै सोहै ।  
 नंद-गुवन साँ परम प्रेम, यह अचरिज को है ॥  
 ते पुनि तिहि मग चली, रंगीली तजि गृह-संगम ।  
 जनु पिँजरन तैं छुटे, घुटे नव प्रेम-विहंगम ॥  
 कोउक तरुनि गुनमय सरीर, तिन-संग चली दुकि । १३५  
 मात, पिता, पति, बंधु रहे भुकि, नहिंन रही रुकि ॥  
 सावन-सरिता रुकै, करै जी जतन कोऊ अति ।  
 कृष्ण हरे जिन के मन, ते क्यौ रुकहिं, अगम गति ॥  
 चलन अधिक छवि फवत, श्रवन मनि-कुंडल झलकै ।  
 नंकित लोचन चपल, ललित छवि-विलुलित अलकैं ॥ १४०  
 जन्मि कहूँ के कहूँ वधुन आभरन बनाये ।  
 हनि पिय पै अनुसरत, जहाँ के तहूँ चलि आये ॥  
 कहूँ देखियत कहूँ नाहिं, वधू वन-बीच बनी यी ।  
 विजुरित के से टूक, सघनवन-माँझ चलत ज्यौ ॥  
 आड उमग साँ मिली, रंगीली गोप-वधू अस । १४५  
 नंद-मुदन नुदर सागर साँ, प्रेम नदी जस ॥  
 परम भागवत-रत्न रसिक, जु परीच्छित राजा ।  
 प्रग्न करी रम-भुष्ट-करन, निज सुख के काजा ॥



- श्री भागवत कौ पात्र जानि जग कौ हितकारी ।  
 १५० उदर-दरी मै करी कान्ह जाकी रखवारी ॥  
 जाकौ सुदर स्याम-कथा, छिन छिन नई लागै ।  
 ज्यौ लंपट पर-जुवति-वात सुनि अति अनुरागै ॥  
 हो मुनि ! क्यों गुनमय सरीर परिहरि पाये हरि ।  
 जानि भजे कमनीय कान्ह, नहि ब्रह्म भाउ करि ॥
- १५५ तव कही श्री सुकदेव देव यह अचरिज नाही ।  
 सर्व भाउ भगवान कान्ह जिन के मन माही ॥  
 परम दुष्ट सिसुपाल, बालपन तै निंदक अति ।  
 जोगिन कौ जो दुर्लभ, सुलभहि पाई सो गति ॥  
 ये हरि-रस-ओपी गोपी, सब तियन तै न्यारी ।
- १६० कमल-नयन गोविंदचंद की प्रानपियारी ॥  
 तिन के नूपुर-नाद, सुने जव परम सुहाये ।  
 तव हरि के मन-नैन, सिमिटि सब श्रवनि आये ॥  
 रनुक भुनुक पुनि छविली भाँति, सब प्रगट भई जव ।  
 पिय के अँग-अँग सिमिटि, मिले छविले नैननि तव ॥
- १६५ कुजन कुजन निकसत, सोभित वर आनन अस ।  
 तम कौने तै निकरि, लसत राका-मयंक जस ॥  
 सब के मुख अवलोकत, पिय के नैन वनै यौ ।  
 बहुत सरद ससि-मोक्ष, अरवरे द्वै चकोर ज्यौ ॥  
 अति आदर करि लई, भई चहुँ दिसि ठाढ़ी अनु ।
- १७० छविली छटनि मिलि छेकी, मंजुल घन-मूरति जनु ॥

नागर वर नैद-नंद-चंद, हँसि मंद मंद तव ।  
 बोलने बाँके बैन, प्रेम के, परम ऐन सब ॥  
 उज्ज्वल रस की यह सुभाउ, वंकहि छवि पावै ।  
 वक कहनि, अरु चहनि वंक, अति रसहि बढ़ावै ॥  
 ये सब नवलकिसोरी, गोरी, भरी प्रेम-रस । १७५  
 तानें समुक्ति न परी, करी पिय परम प्रेम-वस ॥  
 ज्यों नाइक सब गुननिधि, अरु सुंदर जु महा है ।  
 सब गुन माटी होइ, नंक जो वंक न चाहै ॥  
 कैउक वचन कहे नरम, कहे कैऊ रस वर कर ।  
 कैउक कहे त्रिय-धरम, भरम-भेदक सुंदर वर ॥ १८०  
 नाल रसाल के व्यंग वचन सुनि थकित भई यौ ।  
 बाल-मृगिनि की पाँति, सवन वन भूलि परी ज्यौ ॥  
 मंद परस्पर हसी, लसी तिरछी अँखियन अस ।  
 रूप-उदधि इतराति, रँगोली मीन-पाँति जस ॥  
 जब पिय कह्यौ घर जाहु, अधिक चित चिंता बाढ़ी । १८५  
 पुतरिन की सी पाँति, रहि गई इक-टक ठाढ़ी ॥  
 दृष्ट के ब्रान्त, छवि-सीव ग्रीव, नै चली नाल सी ।  
 मलक-अनित के भार, नमित मनु कमल-माल सी ॥  
 दिय भरि विरह-हुतास, उत्तासनि-सँग आवत भर ।  
 चने कछू मुरझाइ, मधु-भरे अधर-विव वर ॥ १९०  
 तब बानी ब्रज-बाल, लाल मोहन अनुरागी ।  
 सुंदर गदगद गिरा, गिरिधरहि मधुरी लागी ॥

अहो मोहन! अहो प्राननाथ! सुंदर सुखदाइक ।  
 क्रूर वचन जिनि कहौ, नहि न ये तुम्हरे लाइक ॥  
 जब कोउ पूछै धर्म, तवहि तासौ कहियै पिय ।  
 बिन ही पूछे धर्म, कितहि कहियै, दहियै हिय ॥  
 धर्म, नेम, जप, तप, व्रत, सब कोउ फलहि बतावै ।  
 यह कहूँ नाहि न सुनी, जु फल फिरि धर्म सिखावै ॥  
 अरु तुम्हरौ यह रूप, धर्म के धर्महि मोहै ।  
 घर मै कौ तिय-धर्म भर्म, या आगे को है ॥  
 तैसिय पिय की मुरली, जुरली अधर-सुधारस ।  
 सुनि निज धर्म न तजै, तरुनि त्रिभुवन मै को अस ॥  
 नगन कौ धर्म न रह्यौ, पुलकि-तन चले ठौर तै ।  
 खग, मृग, गो-वछ, मच्छ-कच्छ ते रहे कौर तै ॥  
 सुंदर पिय कौ वदन निरखि, अस को नहि भूल्यौ ।  
 रूप - सरोवर - माँझ, सरस अंबुज जनु फूल्यौ ॥  
 कुटिल अलक मुख-कमल, मनौ मधुकर मतवारे ।  
 तिन-मधि मिलि रहे लाल, नैन चंचल जु हमारे ॥  
 चितवनि मोहन-मंत्र, भौह जनु मनमथ-फाँसी ।  
 निपट ठगौरी आहि, मंद-मृदु, मादक हाँसी ॥  
 अधर-सुधा के लोभ, भई हम दासी तिहारी ।  
 ज्यौ लुब्धी पद-कमलन, कमला चंचल नारी ॥  
 जौ न देहौ अधरामृत, तौ सुनि हो मोहन हरि ।  
 करिहैं यह तन भस्म, विरह-पावक मै कुदि परि ॥

१९५

२००

२०५

२१०

- नर त्रिपु-नदनी घाट, क्षुरि वसिहें सुंदर भोग । २१५  
 निभरक हें पथगगत पीहें, पुनि फिरिहें नंग ॥  
 मुनि गोपिन के प्रेम-वचन, याच री लागी जिय ।  
 लारि चर्चा नदन-नित योन नवगीत-सदस हिय ॥  
 निनि मिनि नंदलाल, निरनि कजवाग विरह-वग ।  
 जदधि प्रान्तागग, गगत भय परम प्रेम-रस ॥ २२०  
 विहग्न विविन विहार, उदार, नदल नंदन-दल ।  
 नर कुतुम पनमार जान कानित तन चंदन ॥  
 यदुत नागत नंग, क्यो यदुत पीतावर ।  
 मरुट धरे सिमान, प्रेम-अंगर छोटे हरि ॥  
 विनयित उर-वनमाल, लाल जव चलत चाख वर । २२५  
 लोटि मदन की भीर उठति, पुनि लुठति चरत-नर ॥  
 गोरोजन - गत - रोहित, मोहनलाल दन यो ।  
 चपनी दुति के उदगत, उदपति घन खेलत ज्यो ॥  
 कुजनि कुंजनि डोलति, जनु घन न घन आयति ।  
 मोहन नृपित चकोरन के चित चोप बढावनि ॥ २३०  
 नृभग मग्नि के तीर, धीर वनवीर गये तहें ।  
 ओमल मलय समीर, छविन की महा भीर जहें ॥  
 नृम-भूरि ध्वरी कुंज, छवि पुजन छार्ति ।  
 मंजत मंज अविद, वीन जनु वजत मुद्गार्ति ॥  
 जत महवति माग्नी चारु चंगल चित चंगल । २३५  
 जत पनमार-भुगत मिली नंदार भगोन्न ॥

- इत लवंग, नव रंग एलची भेलि रही रस ।  
 उत कुरवक, केवरी, केतकी गंध-बंध-वस ॥
- इत तुलसी, छवि-हुलसी, छाड़ति परिमल लपटें ।  
 २४० उत कमोद आमोद गोद भरि, सुख की दपटें ॥
- फूलन माल बनाइ, लाल पहिरत-पहिरावत ।  
 सुमन सरोज सुंघावत, ओज मनोज बढ़ावत ॥
- उज्ज्वल मृदु बालुका, पुनिन अति सरस सुहाई ।  
 जमुना जू निज कर तरंग करि आप बनाई ॥
- २४५ विलसत विविधि विलास, हास नीवी-कुच परसत ।  
 सरसत प्रेम अनग, रंग नव घन ज्यौ वरसत ॥
- तव आयौ वह काम, पंचसर-कर है जाके ।  
 ब्रह्मादिक की जीति, बढि रह्यौ अति मद ताके ॥
- निरखि ब्रज-बधू संग, रंग-भीने, कितोर तन ।  
 २५० हरि मन-मथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ कौ मन ॥
- मुरझि परचौ तहँ मेन, कहूँ धनु, कहूँ विसिख वर ।  
 रति दिखि पिय की दसा भीत भई, मारति उर कर ॥
- पुनि पीयहि आलिंगति, रोवति अति अनुरागी ।  
 मदन के वदन चुवाइ अमृत, भुज भरि लै भागी ॥
- २५५ अस अद्भुत मोहन पिय सौ मिलि गोप-हुलारी ।  
 अचरज नहि जौ गरव करै, गिरिधर की प्यारी ॥
- रूप-भरी, गुन-भरी, भरी पुनि परम प्रेम-रस ।  
 क्यौ न करहि अभिमान, कान्हू भगवान जिन के बस ॥

जहाँ नदी-नौर गंगान, तहाँ भंवरी मन पस्ती ।  
 छिनछिन गलिल न परै, परं तो छवि नहि करही ॥  
 प्रेम-मुंज-वर्धन के काज, द्रजराज-कुंवर पिय ।  
 मज्ज गंज में तनक दुरे, अति प्रेम भरे हिय ॥

२६०

## द्वितीय अध्याय

भरवन्तु जो खात निरंतर, मुग ती भारी ।  
 बीच बीच कट-ग्रस्त-निवन, अतिनय कचिकारी ॥  
 ज्यों पट पट के दिये, निपट ही परत सरस रँग ।  
 तंगे ही रंचक दिव्ह, प्रेम के पुज नइत अँग ॥  
 दिन की नैन-निमेष-ओट, कौटिक जुग जाही ।  
 दिन की गृह-वन, कुंज-ओट, दुख-गानना नाही ॥  
 उगां तो रहीं वज्रवाल, लाल गिरिधर पिय दिन यी ।

२६५

नियन महा धन पाट, तबहिं ज्यों जाड, भई त्यों ॥  
 हँ गई विरह विरल मन, ब्रूमन द्रुम-वेली वन ।  
 को गड़ को नैनन्य, कछु न जानन विरही जन ॥  
 हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! मुनि हित दं चित ।  
 मान-हरन, मन-हरन लाल गिरिधरन लहे इत ॥  
 हे वेलिक ! इत नै चितये, कितहूँ गिय मूने ।  
 शिथी नैद-नंदन नद मुसकि, तुम्हरे मन मूने ॥  
 हे मुक्ताकल वेलि ! धरे मुक्ताफल-माना ।  
 डरे है नैन विसाल, मोहना नंद के लागी ॥

२७०

२७५

- हे मंदार ! उदार, वीर करवीर ! महामति ।  
 २८० देखे कहूँ बलवीर धीर, मन-हरन, धीर-नाति ॥  
 हे चंदन ! दुख-चंदन, सब की जरनि जुड़ावहु ।  
 नंद-नंदन, जग-चंदन, चंदन हमहि बतावहु ॥  
 पूछहु री इन लतन, फूल रही फूलन जोई ।  
 सुंदर पिय-कर-परस बिना अस फूल न होई ॥  
 २८५ हे सखि ये मृग-वधू, इनहिं किन पूछहु अनुसरि ।  
 डहडहे इन के नैन, अर्वाह कहूँ देखे है हरि ॥  
 अहो मुभग वन-सुगंध पवन ! नैसुक थिर है चलि ।  
 सुख के भवन, दुख-ववन रवन, कहूँ इत चितये बलि ॥  
 अहो कदंब ! अहो अंब-निच ! क्यों रहे मौन गहि ।  
 २९० अहो बट तुग, सुरंग वीर ! कहूँ तै इत-उत लहि ॥  
 अहो असोक ! हरि सोक, लोक-मनि पियहि बतावहु ।  
 अहो पनस सुभ-भासन, प्यासन अमृत जु प्यावहु ॥  
 जमुना निकट के बिटप पूँछि, भई निपट उदासी ।  
 क्यों कहिहै सखि महा कठिन ये तीरथ-वासी ! ॥  
 २९५ अहो कमल ! सुभ-वरन, कहौ तुम कहूँ हरि निरखे ।  
 कमल-माल वनमाल, कमल-कर अति ही हरखे ॥  
 हे अवनी, नवनीत-चोर, चित-चोर हमारे ।  
 राखे कितहि दुराइ, बताइ धौ प्रानपियारे ॥  
 हे तुलसी ! कल्यानि, सदा गोविंद-पद-प्यारी ।  
 ३०० क्यों न कहति तू नंद-सुवन सौ दसा हमारी ॥

इहै रावत नम-गुज, कुंज गह्वर तर-छाही ।  
 अपने मन-चाहने चनति, नुंदरि निहि माही ॥  
 उरि विधि वन घन हँदि, बुझि उनमत की नाई ।  
 नमन लगीं नम-हरन, लाल-लीला मन-भाई ॥  
 मोहन-लाल, रमाल की लीला इन ही सोहै ।  
 केवल नमनय भई, कछु न जानति हम को है ॥  
 हरि की मी चलनि, बिलोचनि, हरि की मी हेगनि ।  
 हरि की मी गाइन घेरनि-टेगनि, वह पट-फेरनि ॥  
 हनि की मी वन न आवनि, गावनि अनि रग-रगी ।  
 हरि की मी कंदुक रचनि, नचनि ह्वै ललित त्रिभंगी ॥  
 कोड गिरिवर अंबर की, कर धनि बाँधति है तव ।  
 निधरन उहि तर रही, गोप-गोपी-गोधन राव ॥  
 भुंगी-भय नै भुंग हीड, वह कीट महा जड़ ।  
 कृष्ण-प्रेम नै कृष्ण होइ, कछु नहि अचरज बड़ ॥  
 तव पायी पिय-मद-सरोज की खोज लचिर तहँ ।  
 अरिदर, अंकुश, कुलिन, कामल अनि जगमगात जहँ ॥  
 जो रज सिंद-अज खोजत, जोजत जांगी-जन हिय ।  
 मो रज बंदन करत लगी, सिर धरत लगी तिय ॥  
 पुनि निरखे डिंग जगमगात, पिय-प्यारी के पन ।  
 चित्त परस्पर चकित भई, जुरि चली निही मग ॥  
 चटन भई मद्र कहति, जान यह बड़भागिनि अन ।  
 गरम कांत एकांत पाइ, पीवन जु अवर-रग ॥

३०५

३१०

३१५

३२०



- आगे चलि इक अवलोकी, नव पल्लव-सैनी ।  
 जहँ पिय सुसम कुसम लै कै कर गूँथी वैनी ॥
- ३२५ तहँ पायौ इक मंजु मुकुर, मनि-जटित विलोलै ।  
 तिहि पूछै ब्रजवाल, बिरह-भरचौ सोउ न बोलै ॥  
 तरक करहि आपुस मै, कहौ यह क्यौ कर लीनौ ।  
 तिन मै कोउ तिन के हिय की, जिन उत्तर दीनौ ॥  
 वैनी गूँथन समै, छैल पाछे बैठे जब ।
- ३३० सुंदर वदन-विलोकन-सुख कौ अंत भयौ तब ॥  
 तातै मंजुल मुकर सुकर लै वाल दिखायौ ।  
 श्रीमुख कौ प्रतिबिंब सखी तब सनमुख आयौ ॥  
 धन्य कहत भई ताहि, नाहि कछु मन मै कोपी ।  
 निरमत्सर जे संत, तिन की चूड़ामनि गोपी ॥
- ३३५ इन नीके आराधे, हरि ईसुर वर जोई ।  
 तातै अधर-सुधा-रस, निधरक पीवत सोई ॥  
 पुनि आगे चलि तनक दूरि, देखी सोई ठाढ़ी ।  
 जासौ सुंदर नंद-कुंवर पिय, अति रति वाढ़ी ॥  
 गोरे तन की जोति, छूटि छवि छाइ रही धर ।
- ३४० मानौ ठाढ़ी कुंवरि, सुभग कंचन-अवनी पर ॥  
 जनु घन तै बिछुरी बिजुरी, मानिनि - तन - काछे ।  
 किधौ चंद सौ रूसि, चंद्रिका रहि गई पाछे ॥  
 नैनन तै जल-धार, हार-धोवत धर धावत ।  
 भँवर उड़ाइ न सकति, वास-वस मुख-ढिँग आवत ॥

क्यामि क्वामि ! पिय महाबाहु ! इमि बढति अकेली । ३४५  
 महा विग्गह को धुनि नुनि, रोवत खग, मृग, बेली ॥  
 ता सुंदरि की दसा देखि, कछु कहत न आवै ।  
 विरह-भरी, पूतरी होइ ज्याँ, अति छवि पावै ॥  
 धार भुजन भरि लई, सवन लँ लँ उर लाई ।  
 मनहुँ महा निधि खोइ, मध्य आधी निधि पाई ॥ ३५०  
 कोउ नूवत मूल-कमल, कोउ भुज, भाल, सुअलकै ।  
 तामे पिय-तंगम केँ, सुंदर श्रम-कन भलकै ॥  
 पौछति अपने अचल, रुचिर दृगंचल तिय के ।  
 पीक-भरे मु कपोल लोल, रद-छद जहँ पिय के ॥  
 निहिँ नै तहँ तैं अहुरि-बहुरि जमुना-तट आई । ३५५  
 जहँ नैद-नंदन जग-वंदन पिय लाइ लड़ाई ॥

### तृतीय अध्याय

कहत लगी अहो कुंवर कान्ह ! ब्रज प्रगटे जब तैं ।  
 अवधि-भन इंद्रिअ अनंकुत ह्वै रही तब तैं ॥  
 नय कीं नय मुख बरसन, ससि ज्याँ बढत निहारी ।  
 निन में पुनि ये गोप-बधू, पिय निपट तिहारी ॥ ३६०  
 नैन-सुँदिवाँ महा अरव, लँ हाँसी-फाँसी ।  
 नागन हो तत मुरतनाम, बिन मोल की दामी ॥  
 विद-जल नै, व्याल तैं, अनल तैं, दामिनि-भर तैं ।  
 क्याँ गायी, नाहू नरन बडेँ, नागर नगधर तैं ॥

कोउ पिय-भुजन सौ लपटी, मटकी नाहि नवेली ।  
 जनु सुंदर सिगार-विटप, तपटी छदि-वेली ॥  
 कोउ कोमल पद-कमल, कुचन-विच राति रही री ।

४१०

महा कृपन धन पाइ, छती सौ लाइ रहत ज्यौ ॥  
 कोउ पिय रूप-नयन भरि, उर में धरि धरि आवन ।  
 मधु माखी ज्यौ देखि, दसौ दिसि अति छवि पावन ॥  
 कोउ दसनन दिये अघर-विच गोविंदहि ताडति ।  
 कोउ इक नैन-चकोर, चार मुख-चंद निहारति ॥

४१५

कहुँ काजर, कहुँ कुकुम, कहुँ इक पीक लगी वर ।  
 तहुँ राजत नंद-नंद-चंद, कंदर्प - दर्प - हर ॥  
 बैठे पुनि तिहि पुलिन, परम आनंद भयो है ।  
 छविलिन अपनी छादन, छवि सौ विछाड़ दयो है ॥  
 एक एव हरि देव, सब आसन पर बैसै ।

४२०

किये मनोरथ पूरन, जाके उपजे जैसे ॥  
 ज्यौ अनेक जोगेस्वर, हिय में ध्यान धरत है ।  
 इकहि बेर इक मूरति, सब कौं सुख वितरत है ॥  
 जोगी-जन वन जाइ, जतन करिकोटी जनम पचि ।  
 अति निर्मल करि राखत, हिय में आसन रचि रचि ॥

४२५

कहुँ छिनक नहि जात, नवल नागर नगधर हरि ।  
 ब्रज-जुवतिन के अंबर पर, बैठे अति रुचि करि ॥  
 कोटि कोटि ब्रह्मांड, जदपि इकली ठकुराई ।  
 ब्रज-देविन की सभा, साँवरे अति छवि पाई ॥

नव नुंदरि के ननमुग, नुंदरि स्याम विगजै ।  
 ज्यो नव दन-मंडल मे, कनक-कनिका धाजै ॥ ४३०  
 दूधन नगी नवल दाग, नंद-जाल पियहि नद ।  
 प्रीति-रौति की बात, मन मे मस्तवाति जानि सव ॥  
 एक भजने को भजै, एक दिन-भजते भजही ।  
 कहहु कान्त नै कवन चाहि, जे दुहुवन तजही ॥  
 जदपि जगन-गुरु नागर नगधर नंद-दुलारे । ४३५  
 तदपि गोपिन के प्रेम-विवर, अपने मुग हारे ॥  
 तब बोले बजगज-कुमार, हो रीति तुम्हारी ।  
 अपने मन नै दूरि करी, वह दोष हगारी ॥  
 कोटि लक्ष लगि तुम प्रति, प्रति-उपकार करी जो ।  
 हे नवहरनी नरनी, अरिनी नहि न होउ ती ॥ ४४०  
 नयन छिद्र यत्रयम करि, सो माया मोहति है ।  
 प्रेम-मर्द तुम्हरी माया नो मोहि मोहति है ॥  
 तुम जाँ करी नो होउ न करै, गुनि नवल कितोरी ।  
 लो-छेद की मुद्द नृपला तुन नम तोरी ॥

### पंचम अध्याय

गुनि मि के नम-वचन, नवन रिम छाँड़ि क्या है । ४४५  
 होनि होनि अपने कठनि, लाल लगाइ क्या है ॥  
 कलकल जड़, मुनिपत यह चिन्तन-फल-दाज ।  
 यह रजगज-कुमार, सबहि मुच-दाजक नाजक ॥

इहि विधि विविधि विलास विलासि मुख कुंज सदन के ।  
 नने जमुन-जल क्रीडन, क्रीडन कोटि मदन के ॥  
 उगनि मरगजी-भाल, चाल मद गज ली मल्लकत ।

५४०

धूमत रग-भरे नैन, गँडस्थल श्रम-कन भलकत ॥  
 जाइ जमुन-जल धौमे, लसे छवि जात न वरनी ।  
 विहरत जनु गजराज, संग लिये तरुनी करिनी ॥

तियन के तन जल-मगन, वदन जब यौ छवि छाये ।  
 फूलि रहे जनु जमुन, कनक के कमल सुहाये ॥

५४५

मुख-अरविदन आगे, जल-अरविद लगै अस ।  
 भोर भये भवनन के दीपक, मंद परत जस ॥  
 मजुल अंजुलि भरि भरि, पियकौ तिय जल मेलहिं ।  
 जनु अलि सौ अरविद-वृद, मकरंदन खेलहिं ॥  
 छिरकत है छवि छैल, जमुन-जल अंजुलि भरि भरि ।

५५०

अरुन कमल-मंडली, फाग खेलत जनु रँग करि ॥  
 रुचिर दृगंचल चंचल, अचल मै भलकत अस ।  
 सरस कनक के कंजन, खंजन जाल परत जस ॥  
 जमुना जल मै दुरि-मुरि, कामिनि करत कलोलै ।  
 मानहुँ नव घन मध्य, दामिनी दमकति डोलै ॥

५५५

कमलन तजि तजि अलि-गन मुख-कमलनि आवत जब ।  
 छवि सौ छविली बाल, छिपत जल मै बुड़कनि तब ॥  
 कवहुँक मिलि सब बाल, लाल छवि सौ छिरकत अस ।  
 मनसिज पायी राज, आज अभिषेक होत जस ॥

निर्गता मूर जोति गीत मनमोहन नाथ ।

धन धन की छवि, वनि पै लख नखन न आवै ॥

५६०

गीते मनन नन नगदि निषट छवि कदा कही है ।

मेहन के नहिं येन, येन के नैन नहीं है ॥

गीत निनोन्नत जगति, देगि प्रवीर भये ननु ।

गन-विद्वत्त की पीर, गीत रोयत प्रेमुदन जनु ॥

नव नव नन नन निर, कुंवर वर प्राग्या दीनी ।

५६१

निरगन अंतर-भूत, नित नहै दग्गा कीनी ॥

अगनी अगनी रवि के, पहिरे दग्गन वनी छवि ।

जग में जे मोहन आप, तिनही वज-निय मोहनि सब ॥

ऐसे मन्द की जेनिक, परम मनाहर राती ।

मेहन नान रमिल पिय, प्रति छिन नई नई भांती ॥

५७०

अन नहयत कुंवर कान्ह वर वर आवे जन ।

गोपन अगनी गोरी, अगने टिंग मानी नव ॥

निरम नान रमनीय, निरम गोरीजन-वल्लभ ।

निरम निरम या कहत, नित नव नन प्रति दुर्लभ ॥

अन नहयत नन नान, वहत कान्ह कहि नहि आवै ।

५७१

मेहन नहयत नन नान, अज हूँ अज न पारै ॥

निरम नन ही मन छन्द, वाह नहि जनादै ।

नान, ननदन, नानद, नानद अति ही भावै ॥

अन नहयत नन नान, अज हूँ नहि पारै तिन ॥

नन नन नन नन, नन हूँ नहि पारै तिन ॥

अज अज हूँ रज बाछत, सुदर वृंदावन की ।  
 सो तनकहु नहिं पावन, सूल मिटत नहिं मन की ॥  
 बिन अधिकारी भये, नहिन वृंदावन सूझै ।  
 रेनु कहाँ तै सूझै, जब लगि वस्तु न बूझै ॥

५८५

निपट निकट ज्यौ घट में अंतरजामी आही ।  
 विषय-विदूषित इंद्री, पकरि सकै नहिं ताही ॥  
 जो यह लीला गावै, चित दै मुनै-सुनावै ।  
 प्रेम-भक्ति सो पावै, अरु सब के जिय भावै ॥  
 हीन-श्रद्ध, निदक, नास्तिक, हरि - धर्म - बहिर्मुख ।

५८०

तिन सौ कवहुँ न कहै, कहै तो नहिन लहै सुख ॥  
 भक्त जनन सौ कहै, जिन के भागवत-धर्म-बल ।  
 ज्यौ जमुना के मीन, लीन नित रहत जमुन-जल ॥  
 जदपि सप्त-निधि भेदनि, जमुना निगम बखानै ।  
 ते तिहि धारहि धार रमत, जल छुवत न आनै ॥

५८५

रसिक जनन सौ संग करै, हरि-लीला गावै ।  
 परम कात एकात, परम रस तबही पावै ॥  
 यह उज्जल रस-माला, कोटि जतन करि पोई ।  
 सावधान ह्वै पहिरौ, इहि तोरौ मति कोई ॥  
 श्रवन - कीर्तन - सार, सार सुमिरन कौ है पुनि ।

कव

मर्ना

ग्यान-सार, हरि-ध्यान-सार, श्रुति-सार गुथी गुनि ॥  
 अध-हरनी, मन-हरनी, सुदर प्रेम-वितरनी ।  
 नंददास' के कंठ बसौ, नित मंगल-करनी ॥

